।। श्री वीतरागाय नमः ।।

श्री रविषेणाचार्य विरचित 'पद्मपुराण' पर आधारित

जैन रामायण

: वरदहस्त आशीर्वाद :

प. पू. सद्धर्मप्रवर्तक आचार्यरत्न

१०८ श्री बाहुबलीजी मुनि महाराज

: कृतिकार :

प. पू. गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न

१०५ श्री जिनदेवी माताजी

आशीर्वाद :

प. पू. सद्धर्मप्रवर्तक आचार्यरत्न १०८ श्री बाहुबलीजी मुनि महाराज

कृतिकार :

प. पू. गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न १०५ श्री जिनदेवी माताजी

सहयोग :

क्षु. १०५ श्री मंगलमति माताजी, बा. ब्र. स्नेहादीदी

प्रति : २००० प्रथम संस्करण – सन २०२१

दातार :

१. ध. श्री. शांतिनाथ नीलकंठ कित्तूर
सौ. पद्मश्री शांतिनाथ कित्तूर, कोल्हापूर

२. ध. श्रीमान् महेन्द्रकुमार जैन धर्मपत्नी श्रीमती उषाजी जैन स्मरणार्थ
सुपुत्र ध. श्री. योगेश जैन, निवेदिता जैन, अशोक विहार १–दिल्ली

३. धर्मानुरागी स्व. श्री. व सौ. श्रीमंती रामू बोरगावे, शिरढोण–इचलकरंजी
इनके स्मरणार्थ ध. श्री. व सौ. माणिक महावीर बोरगावे, ध. श्री. व सौ.
सरिता रावसाहेब बोरगावे, ध. श्री. व सौ. सुजाता अशोक बोरगावे

४. ध. श्री. कुमार शेषाप्पा वळवाडे, सौ. सुनीता कुमार वळवाडे
सुपुत्र ध. श्री. शशांक एवं ध. श्री. श्रेणिक बस्तवाड,
ता. शिरोळ, जि. कोल्हापूर

मुद्रक :

समय क्रिएशन्स्,

हातकणंगले, जि. कोल्हापूर मो. नं. ९९७५४३८९७८

प्राक्कथन

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है । जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुडी की तरह ही प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं । जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणीमात्र का कल्याण करने में समर्थ है । जिनवचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है ।

जिनागम का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं ।

पद मक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेहि सु णिद्दिट्ठं ।

सेसं रोचंतो वि हु मिच्छा दिट्ठि मुणेयव्वा ।। मूलाचार ।।

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है ।

प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में त्रेसठ शलाका महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है । उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बन्ध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ इनका वर्णन है ।

पद्मपुराण की रचना करके श्री रविषेणाचार्य ने जन-जन का बहुत कल्याण किया है । अष्टम बलभद्र श्री रामचन्द्रजी 'पद्म' नाम से प्रसिद्ध थे । उन्हीं के नाम से 'पद्मपुराण' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ है । रामचन्द्रजी के भाई लक्ष्मण तीन खण्ड के अधिपति, अष्टम् नारायण थे । नारायण बलभद्र का स्नेह जगत्प्रसिद्ध है । बीसवें तीर्थंकर भ. मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में इन महान पुण्य पुरुषों ने अयोध्या में जन्म लेकर भारतभूमि को अलंकृत किया था । सुदीर्घ काल व्यतीत हो जाने पर भी ये प्रत्येक भारतीय की श्रद्धा के पात्र हैं ।

श्री रामचन्द्रजी का जीवन अलौकिक घटनाओं से भरा हुआ है । वे एक मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में पूजे जाते हैं । राजा दशरथ के वे परम आज्ञाकारी सुपुत्र थे । कैकयी माता के वर की पूर्ति और पिताजी के वचन पालन करना पुत्र का कर्तव्य है ऐसा समझकर वे बिना किसी प्रतिक्रिया के वन को चल देते हैं । मेरे रहते

हुए भरत का राज्य वृद्धिंगत नहीं हो सकेगा इसलिए उन्होंने वनवास करना ही श्रेयस्कर समझा था । पतिभक्ता सीता और भ्रातृस्नेह से परिपूर्ण लक्ष्मण ये दो ही उनके वनवास में साथी थे । वनवास के समय उन्होंने अनेक दीन हीन राजाओं का संरक्षण किया । लक्ष्मण भ्रातृस्नेह की मूर्ति थे । सीता भारतीय नारी के सहज अलंकार पातिव्रत्य धर्म की प्रतिकृति थी ।

लंकाधिपति रावण ने दण्डक वन में सीता का अपहरण किया था । रामचन्द्रजी ने उसे वापस प्राप्त करने के लिए रावण से धर्म युद्ध किया था । इस धर्म युद्ध में रावण के अनुज विभीषण, वानर वंश के प्रमुख सुग्रीव, तथा हनुमान और विराधित आदि विद्याधरों ने राम को पूर्ण सहयोग किया था । भूमिगोचरी राम–लक्ष्मण द्वारा गगनगामी विद्याधरों के साथ युद्ध कर विजय प्राप्त करना, यह उनके अलौकिक आत्मबल का परिचायक है ।

रावण का मरण होने पर रामचन्द्रजी ने उनके परिवार से आत्मीयवत् व्यवहार किया । उन्होंने उद्‌घोष किया था कि, मुझे अन्याय का प्रतिकार करने के लिए ही रावण से युद्ध करना पड़ा । युद्ध के समाप्त होने पर उन्होंने रावण की रानियों तथा भ्रातृवियोग से विह्वल विभीषण के लिए जो सान्त्वना दी थी वह उनकी उदात्त भावना को प्रकट करने वाली है ।

प्राचीन संस्कृति के संरक्षण के लिए उन्होंने कतिपय लोगों के द्वारा अवर्णवाद प्रस्तुत किये जाने पर गर्भवती सीता का भयावह अटवी में छुड़वाया था ।सीता का पुण्योदय ही समझना चाहिए कि उस निर्जन अटवी में भी उन्हें सुरक्षा के साधन समुपलब्ध हुए । जिस सीता की प्राप्ति के लिए उन्होंने रावण से भयंकर युद्ध किया था, संस्कृति संरक्षण की भावना से उसी सीता का परित्याग करते हुए उन्हें रंचमात्र भी संकोच नहीं हुआ ।

सीता ने अनंगलवण, मदनांकुश युगल चरमशरीरी पुत्रों को जन्म दिया । सिद्धार्थ नामक क्षुल्लकजी से दोनों पुत्रों ने विद्याध्ययन की तथा दोनों ने एक दिन रामचन्द्र व लक्ष्मण के बारे में वार्ता सुनकर माँ से पूर्व हाल ज्ञात किया । तब उन्होंने अपने (राम–लक्ष्मण) पिता व चाचा से युद्ध किया जिसमें राम–लक्ष्मण पराजित हुए । तब नारद ने उन्हें राम–लक्ष्मण से मिलाया । सीता की शीलपरीक्षा हेतु रामचन्द्र ने उसे अग्निपरीक्षा के लिए कहा । सीता के शील माहात्म्य से अग्निकुण्ड जलकुण्ड

बन गया । सीता ने संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर आर्यिका पृथ्वीमति माताजी के पास आर्यिका दीक्षा ले ली । पुन: तप साधना व समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई ।

लक्ष्मण की मृत्यु से वैराग्य व प्रतिबोध को प्राप्त कर सोलह हजार राजाओं के साथ श्रीराम ने दिगम्बर मुनि दीक्षा को अंगीकार किया । सीता का जीव प्रतीन्द्र ने राम के अनुरागवश राम मुनिश्री पर उपसर्ग किया । पर उन्होंने शुक्ल ध्यान द्वारा समस्त घातिया व अघातिया कर्मों का नाश कर सिद्धावस्था मोक्ष सुख को प्राप्त किया ।

श्री रामचन्द्रजी की सीता सहित आठ हजार रानियाँ थी । शरीर की ऊँचाई सोलह धनुष प्रमाण थी, आयु सतरह हजार वर्ष की थी ।

जैन साहित्य में राम चरित्र के दो रूप मिलते हैं । पद्मपुराण श्री रविषेणाचार्य विरचित के अनुसार सीता जनक की पुत्री थी । भामण्डल व सीता का जन्म युगल रूप से जनक के घर ही हुआ था । द्वितीय मतानुसार श्री गुणभद्राचार्य के उत्तर पुराण के अनुसार सीता रावण की पुत्री थी; किन्तु राजा जनक ने उसका पालन पोषण किया था । दोनों आचार्यों की बातें हमारे लिए प्रमाण हैं । आचार्य सोमसेन स्वामी विरचित राम चरित्र में भी सीता रावण की पुत्री थी ।

पूर्वाचार्य प्रणीत पुनीत वाक्यों पर जिनवाणी पर श्रद्धा करना भी सम्यक्त्व का कारण है । अस्तु ।

अक्खर पयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ।।

'श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण' के आधार से 'जैन रामायण' कृति संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास है । उद्देश यही है कि स्व-पर कल्याण हो, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग मन एकाग्र हो ।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में जो महानुभाव सहयोगी हो गये उन सभी के लिए आत्मकल्याण हेतु सद्धर्मवृद्धि शुभाशीर्वाद ।

ॐ नम: ।

-प. पू. गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न
१०५ श्री जिनदेवी माताजी

मनोगत

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

अज्ञान अंधकार को दूर कर ज्ञान की ज्योति जगाने वाले एवं मोक्षमार्ग पर चलने की सतत प्रेरणा देने वाले इस दुनिया में गुरु से बढ़कर कोई नहीं है । गुरुदेव के गुणों का वर्णन करना मानो सूरज को दीपक दिखाने जैसा कार्य है ।

गुरुदेव दीर्घ तपस्वी प. पू. आचार्यरत्न १०८ श्री बाहुबलीजी महाराज श्री का सहज स्वाभाविक कार्य था कि वृक्ष की भांति प्रत्येक प्राणी को धर्म की शीतल छाया प्रदान करना, वर्षा के जलसदृश सभी को ज्ञानगंगा से अभिसींचित करना तथा औषधि के समान सभी को आरोग्यता प्रदान करना । पूज्य आचार्यश्री की ही पदानुगामी, उन्हीं की ही परछाई, उन्हीं की ही पट्टशिष्या प. पू. गणिनी प्रमुख आर्यिकारत्न १०५ श्री जिनदेवी माताजी हैं, जो प्रत्येक कार्य आगमानुकूल, शांतिपूर्वक, पूरी तन्मयता के साथ परिपूर्ण करती हैं । पूज्य माताजी का पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए, अपने मूलगुणों का पालन करते हुए जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है । पूज्या माताजी की लेखनी अत्यन्त प्रभावी, ओजपूर्ण एवं सारगर्भित रही है । उनका सृजनात्मक मस्तिष्क धर्मप्रभावना के नये-नये आयामों को साकार धरातल देते हुए सदैव उत्साहपूर्ण होकर पठन-पाठन, लेखन में ही दत्तचित्त रहता है ।

साधना के ३७ वर्षों में मोक्षपथ संचलन में पूज्या माताजी ने तीर्थों व मन्दिरों के संरक्षण, सुरक्षा व जीर्णोद्धार की प्रेरणा दी, पञ्चकल्याणकों के माध्यम से जैन मन्दिररूपी धरोहर के अस्तित्व का संवर्धन किया, द्वादशांग जिनवाणी प्रणीत धर्मप्रभावना करवायी, विविध रचनात्मक गतिविधियों द्वारा धर्म व संस्कृति को जीवन्त बनाया, साहित्य सृजन द्वारा जिनवाणी का प्रसार किया ।

गणिनी आर्यिका श्री जिनदेवी माताजी अपने उदार विचारों तथा अध्ययन में संलग्न रहते हुए अपने चिन्तन की कुशलता, हृदय की विशालता, व्यक्तित्व की भव्यता एवं व्यवहार की मधुरता से महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश,

हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली आदि प्रान्तों की रज को चन्दन बनाती हुई जन-जन का कल्याण कर रही हैं । गुणज्ञता और गुणवत्ता के दुर्लभ मणिकांचन संयोग का ही अमृतफल है कि माताजी ने अपनी पावन लेखनी से अद्यतन २० कृति हिन्दी में और २१ कृति मराठी में रचकर, माँ भारती के कोष को अलंकृत कर चुकी हैं ।

सर्व विदित है कि, श्रीराम के चरित्र की सौरभ से भारत की धरती का कण-कण सुरभित हुआ है । प्रत्येक भारतीय के रोम-रोम में राम कथा बसी हुयी है । कोरोना काल सन २०२० में जब दुबारा से टीव्ही पर रामायण दिखाई जाने लगी तो पूज्या माताजी के हृदय में जन-जन तक जैन रामायण को पहुँचाने की भावना प्रबल हो उठी । फलस्वरूप माताजी ने श्री रविषेणाचार्य विरचित 'पद्मपुराण' को संक्षिप्त में मोबाइल के माध्यम से व्हाट्सॲप पर अपने प्रवचनों द्वारा पहुँचाने का प्रयास किया । फिर सन २०२१ में लॉकडाउन के समय जैन रामायण को संक्षिप्त में अपनी लेखनी द्वारा लिखा है । पूज्या माताजी कहती हैं कि, भले ही यह कृति साहित्यिक आनन्द न दे परन्तु जैन रामायण से तो आपको परिचित करायेगी ही ।

इस जैन रामायण कृति में इन विषयों को प्रतिपादित किया गया है यथा- वंश उत्पत्ति का वर्णन- इक्ष्वाकु वंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, विद्याधरवंश के अन्तर्गत राक्षसवंश और वानरवंश, दशानन का परिचय, दशानन मन्दोदरी का विवाह, रावण का दिग्विजय, बालि और सुग्रीव का परिचय, खरदूषण द्वारा चन्द्रनखा का अपहरण, विराधित का जन्म, बालि का रावण के साथ संघर्ष व बालि का दीक्षाग्रहण, सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा का रावण के साथ विवाह, बालि मुनिराज द्वारा कैलास पर्वत पर स्थित जिनमन्दिरों की रक्षा, रावण को प्रभु भक्ति से प्राप्त हुई अमोघविजया शक्ति, सुतारा सुग्रीव का विवाह, रावण के गुण-स्वदारा संतोष, श्री अनन्तबल केवली के चरणों में रावण का व्रतधारण, महासति अञ्जना एवं पवनञ्जय, हनुमान का जन्म, हनुमान का विवाह, दशरथ का विवाह, दशरथ की सभा में नारद का आगमन, जनक राजा की रानी विदेहा से सीता और भामण्डल का युगल जन्म, भामण्डल का अपहरण, दशरथ का परिचय, राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न का जन्म, राम के साथ सीता का विवाह, भामण्डल समागम, दशरथ का वैराग्य, राम का वनवास, दशरथ की दीक्षा, भरत का राज्याभिषेक, लक्ष्मण के साथ वनमाला का विवाह,

देशभूषण व कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग निवारण, सीता हरण, मायावी सुग्रीव (साहसगति) की मृत्यु, लक्ष्मण का कोटिशिला उठाना, हनुमान का लंका जाना, राक्षस और वानरवंशियों के युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना, विशल्या के प्रभाव से लक्ष्मण का शक्ति से मुक्त होना, रावण का बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करना, नारायण लक्ष्मण के द्वारा प्रतिनारायण रावण की मृत्यु, राम का लंका प्रवेश, सीता सहित राम का अयोध्या में वापस आना, शत्रुघ्न का मथुरा जीतना, राजा मधु का वैराग्य, लोक अपवाद के कारण राम द्वारा सीता का परित्याग करना, लव-कुश (अनंगलवण-मदनांकुश) का जन्म, लव-कुश का राम-लक्ष्मण से युद्ध, सीता की अग्निपरीक्षा, पृथ्वीमति आर्यिका के पास सीता का दीक्षा लेना, सीता का सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र होना, राम का दिगम्बर दीक्षा लेना, सीता के जीव (स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र) का राम मुनि पर उपसर्ग करना, दुर्द्धर तपस्या करके राम मुनि को कैवल्य प्राप्ति, केवली राम द्वारा दशरथ, लक्ष्मण आदि के भवों का कथन, स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र द्वारा नरक में लक्ष्मण, रावण आदि को उद्‌बोधन देना, राम केवली का मोक्षगमन इत्यादि विषयों का वर्णन है ।

लोक प्रचलित रामायण में बहुत कुछ साम्य होने पर भी जैन रामायण की कुछ अपनी विशेषतायें हैं, जो लोगों के मन को छू लेने वाली भी हैं । जैन रामायण में दशरथ राजा की तीन नहीं चार रानियाँ थी । केकई ने राजा दशरथ से दो नहीं अपितु एक ही वर माँगा था कि भरत को राजसिंहासन पर बिठाया जाए क्योंकि भरत की वैराग्य भावना थी । भरत दीक्षा न ले इसलिए पुत्र मोह के कारण केकई ने भरत के लिए राज्य माँगा । हनुमान वानर नहीं अपितु वानरवंशी सर्वांग सुन्दर विद्याधर राजा थे, कामदेव थे, तद्‌भव मोक्षगामी महापुरुष थे । हनुमान के समान ही सुग्रीवादि भी बन्दर नहीं बल्कि विद्याधर राजा थे । जैन रामायण का रावण राक्षस नहीं, राक्षसवंशी सर्वांग सुन्दर विद्याधर हैं । इसी प्रकार कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि युद्ध में नहीं मारे गये अपितु जिनदीक्षा लेकर कर्मों का नाश कर के मोक्ष गये हैं । लोक प्रचलित रामायण में कथन है कि राम जब वन में सीता के लिए सोने का मृग पकड़ने गये तब रावण ने सीता का अपहरण किया बल्कि जैन रामायणानुसार राम-लक्ष्मण का खरदूषण के साथ युद्ध चल रहा था तब पीछे से रावण ने सीता का

अपहरण किया था ।

जैन रामायण में रावण को राम ने नहीं बल्कि लक्ष्मण ने मारा है क्योंकि यह नियोग ही रहता है कि नारायण के द्वारा प्रतिनारायण की मृत्यु होती है ।

प्रस्तुत कृति 'जैन रामायण' का अध्ययन कर, आबाल वृद्ध अपने लक्ष्य को पहचाने और जीवन की वास्तविकता से परिचित होकर सन्मार्ग पर अपने कदम बढ़ाये, यही भावना है ।

स्व-पर कल्याण में रत पूज्या माताजी! दीर्घायु हो, उनके स्वास्थ्य, रत्नत्रय की अभिवृद्धि होती रहे । माताजी के चरणकमल में बारम्बार कोटि-कोटि वंदामि! वंदामि! वंदामि!

क्षु. श्री मंगलमति माताजी
बा. ब्र. स्नेहा

शलाका पुरुष

तीर्थंकरादि प्रसिद्ध पुण्य पुरुषों को शलाका पुरुष कहते हैं । त्रेसठ शलाका पुरुष इस प्रकार हैं– २४ तीर्थंकर, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र और १२ चक्रवर्ती ।

अथवा

१६९ शलाका पुण्य पुरुष– २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, २४ तीर्थंकरों के २४ माता, २४ पिता, ९ नारद, ११ रुद्र, २४ कामदेव और १४ कुलंकर ।

शलाका पुरुषों का परस्पर मिलाप नहीं होता जैसे तीर्थंकर–तीर्थंकरों का, चक्रवर्ती–चक्रवर्तियों का, बलभद्र–बलभद्रों का, नारायण–नारायणों का, प्रतिनारायण–प्रतिनारायणों का परस्पर मिलाप नहीं होता । इनको वज्रवृषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, तद्भव या एक दो भव में मोक्ष होता है ।

त्रेसठ शलाका पुरुषों का नाम–

२४ तीर्थंकर– १) वृषभ, २) अजित, ३) संभव, ४) अभिनंदन, ५) सुमति, ६) पद्मप्रभ, ७) सुपार्श्व, ८) चंद्रप्रभ, ९) पुष्पदंत, १०) शीतल, ११) श्रेयांस, १२) वासुपुज्य, १३) विमल, १४) अनंत, १५) धर्म, १६) शांति, १७) कुंथु, १८) अर, १९) मल्लि, २०) मुनिसुव्रत, २१) नमि, २२) नेमि, २३) पार्श्वनाथ और २४) महावीर ।

१२ चक्रवर्ती– १) भरत, २) सगर, ३) मघवा, ४) सनत्कुमार, ५) शांतिनाथ, ६) कुन्थुनाथ, ७) अरनाथ, ८) सुभौम, ९) पद्म, १०) हरिषेण, ११) जयसेन और १२) ब्रह्मदत्त ।

९ बलभद्र–बलदेव– १) विजय, २) अचल, ३) धर्म, ४) सुप्रभ, ५) सुदर्शन, ६) नन्दिषेण, ७) नन्दिमित्र, ८) राम और ९) बलराम ।

९ नारायण– १) त्रिपृष्ठ, २) द्विपृष्ठ, ३) स्वयम्भू, ४) पुरुषोत्तम, ५) पुरुषसिंह, ६) पुरुषपुंडरीक, ७) दत्त, ८) लक्ष्मण और ९) कृष्ण ।

९ प्रतिनारायण– १) अश्वग्रीव, २) तारक, ३) मेरक, ४) मधुकैटभ, ५)

निशुम्भ, ६) बलि, ७) प्रहरण, ८) रावण और ९) जरासन्ध ।

९ नारद– १) भीम, २) महाभीम, ३) रुद्र, ४) महारुद्र, ५) काल, ६) महाकाल, ७) दुर्मुख, ८) नरकमुख और ९) अधोमुख ।

जैन रामायण के संक्षिप्त विशेष पात्र परिचय–

१. बलभद्र– नारायण के ज्येष्ठ बन्धु को बलभद्र कहते हैं ।

देह का परिचय– वज्रवृषभ नाराच संहनन सहित, समचतुरस्र संस्थान, स्वर्णसम रंग, दाढ़ी मूछरहित पर सिर पर बाल होते हैं । आहार है पर निहार नहीं ।

वैभव– अपराजित नामक हलायुध, अमोघ नाम के तीक्ष्ण बाण, कोमुदी नाम की गदा और रत्नावंतसिका नाम की माला ये चार महारत्न होते हैं । इन रत्नों की एक एक हजार देव रक्षा करते हैं ।

आठवे बलभद्र रामचन्द्रजी का उपर्युक्त वैभव था ।

जन्मभूमि– अयोध्या, माता– कौशल्या (अपराजिता) ।

पिताजी– दशरथजी, शरीर की ऊंचाई– सोलह धनुष प्रमाण, आयु– सतरह हजार वर्ष, पत्नी– सीतासहित आठ हजार रानियाँ । भ. मुनिसुव्रत तीर्थंकर के काल में जन्म हुआ । मोक्षस्थान– मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र ।

२. सीता–

जन्मभूमि– मिथिलापुरी, माता– विदेहा रानी, पिता– जनक राजा, बन्धु– भामण्डल और सीता का युगल जन्म, विवाह– स्वयंवर में राम के गले में वरमाला डाली, वनवास– तीन बार : १. राम के साथ चौदह वर्ष, २. लोकापवाद के कारण राम ने सीता को वन में छुड़वा दिया, ३. दीक्षा लेने के बाद वन में तपस्या । रावण द्वारा अपहरण ।

पुत्र– अनंगलवण और मदनांकुश, सीता की अग्निपरीक्षा

दीक्षा– आर्यिका पृथ्वीमति माताजी से दीक्षा धारण ।

बासठ वर्ष तक कठिन तपस्या कर समाधिमरण, सोलहवें स्वर्ग में गमन ।

३. अर्द्धचक्री नारायण– जो दक्षिण दिशा के अर्ध भरत क्षेत्र–तीन खण्ड के अधिपति स्वामी होते हैं उनको नारायण कहते हैं । अपरनाम वासुदेव ।

नारायण के देह– वज्रवृषभ नाराच संहनन सहित समचतुरस्र संस्थान, स्वर्णसम रंग, (महापुराण में लक्ष्मण का कृष्ण नील वर्ण) दाढ़ी मूछरहित पर सिर पर बाल होते हैं।

बलभद्र के छोटे भाई नारायण वासुदेव होते हैं । सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी । रानियाँ– सोलह हजार रानियाँ ।

सात आयुधों के नाम– १) सुदर्शनचक्र, २) कौमुदी गदा, ३) सोनन्द खड्ग, ४) अमोघमुखी शक्ति, ५) शार्ग नामक धनुष्य, ६) पाँच मुख का पांचजन्य शंख और ७) कौस्तुभ महामणि । इन रत्नों की सदा एकेक हजार यक्ष देव रक्षा करते हैं ।

आठवे नारायण लक्ष्मण का उपर्युक्त वैभव रहता है ।

माता– सुमित्रा, पिताजी– दशरथ, जन्मभूमि– अयोध्या,

शरीर की ऊँचाई– सोलह धनुष्य, आयु– बारह हजार वर्ष (कुमार काल एक सौ वर्ष+मांडलिक पद में तीन सौ वर्ष+दिग्विजय में चालीस वर्ष+नारायण पद में ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष राज्य किया ।)

रानियाँ– विशल्या सहित सोलह हजार रानियाँ । संयम नहीं, तृतीय नरक में गमन ।

४. प्रतिनारायण– नारायण के शत्रु को प्रतिनारायण कहते हैं । इनका अपर नाम प्रतिवासुदेव, प्रतिहरि । ९ प्रतिनारायण होते हैं । वज्रवृषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, तीन खण्ड के अधिपति । आठवे प्रतिनारायण का नाम दशानन–रावण । जन्मभूमि– अलंकारपुर, पाताल लंका ।

माता– केकसी, पिताजी– रत्नश्रवा । शरीर की ऊंचाई– सोलह धनुष्य ।

आयु– बारह हजार वर्ष, नारायण द्वारा मृत्यु, संयम नहीं, तीसरे नरक में गमन ।

५. हनुमान कामदेव– जन्मस्थान– जंगल पर्यंक गुफा, समय– रात्रि, माता– अञ्जना, पिताजी– पवनञ्जय ।

रात्रि जन्म के समय गुफा के पास सिंह आया था तो गन्धर्वदेव ने विक्रिया से अष्टापद का रूप बनाकर सिंह से बचाया था । हनुमान का दूसरा नाम– श्रीशैल । हनुमान का पालन पोषण अञ्जना माता के साथ हनुरूह द्वीप में मामा प्रतिसूर्य के घर हुआ । हनुमान वानर नहीं थे, वानरवंशी, सुन्दर विद्याधर राजा थे । तद्भव मोक्षगामी थे । विवाह– एक हजार रानियाँ ।

पुराण– त्रेसठ शलाका पुण्य पुरुषों के जीवन चरित्र वर्णन को पुराण कहते हैं, जैसे पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण आदि ।

चरित्र– एकेक पुण्य पुरुषों के जीवन चरित्र को चरित्र कहते हैं, जैसे प्रद्युम्न चरित्र, श्रेणिक चरित्र आदि ।

***

: अनुक्रमणिका :

वंश उत्पत्ति का वर्णन–३, विद्याधर वंश–३, राक्षस वंश– ४, वानरवंश– ४, दशानन का परिचय– ५, दशानन मंदोदरी का विवाह– ६, बालि और सुग्रीव का परिचय– ७, खरदूषण द्वारा चन्द्रनखा का अपहरण– ८, विराधित का जन्म– ९, बालि का रावण के साथ संघर्ष व बालि का दीक्षा ग्रहण– ९, बालि मुनिराज द्वारा कैलास पर्वत पर स्थित जिनमंदिरों की रक्षा, रावण ने की प्रभु भक्ति, प्राप्त हुयी अमोघ शक्ति– ११, सुतारा सुग्रीव का विवाह– १३, नलकुवर के साथ रावण का युद्ध और रावणद्वारा इन्द्र का पराजय– १४, श्री अनंतबल केवली के चरणों में रावण का व्रत धारण– १५.

महासती अंजना–पवनंजय का विवाह– १६, विवाह के पश्चात् अंजना का त्याग– १७, रावण के सहायतार्थ पवन का प्रस्थान– १७, अंजना पवनंजय का मिलाप– १८, अंजना का गर्भ प्रकट, सास द्वारा अंजना को घर से निकालना– १९, मायके में भी अंजना को आश्रय नहीं मिला– १९, वन में अमितगति मुनिराज का दर्शन एवं उपदेश– २०, अपवाद का कारण पूर्वकृत कर्म– २१, हनुमान का जन्म, मामा प्रतिसूर्य राजा का आश्रय– २२, हनुमान का विवाह– २४.

दशरथ का परिचय– २४, दशरथ की सभा में नारद का आगमन– २५, दशानन की मृत्यु का निमित्त सुन कर बिभीषण द्वारा दशरथ और जनक के पुतलों का सिर काटना– २६, राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत का जन्म– २८, सीता व भामण्डल के पूर्व भवों का कथन– २८, भामण्डल व सीता का जन्म– ३०, नारद का सीता के महल में आगमन– ३०, नारद द्वारा सीता का चित्रपट बना के रथनुपुर उद्यान में रखना और भामण्डल का मोहित होना– ३१, विद्याधर चन्द्रगति अश्वरूप द्वारा जनक को रथनुपुर लाना– ३२, सीता स्वयंवर– ३४, राम ने वज्रावर्त धनुष को चढा दिया, सीता का राम के गले में वरमाला– ३५, भामंडल को जातिस्मरण तथा सद्बोध– ३७, महेन्द्र उद्यान में सर्वभूतहित मुनिश्री द्वारा वृत्तान्त– ३९, राजा जनक और भामण्डल का मिलाप– ४०, कैकयी ने एक ही वर मांगा–भरत को राज्य

क्योंकि भरत को दीक्षा से रोकने के लिए- ४०, राम ने स्वयं वनवास स्वीकारा कारण राज्य में राम रहने से भरत की यशकीर्ति नहीं- ४२, राम वनवास- ४२, दशरथ की दीक्षा- ४३, भरत का राम से जाकर मिलना- ४३.

श्रीराम का मालवदेश चित्रकूट प्रवास- ४४, लक्ष्मण को वनमाला की प्राप्ति- ४७, राजा अतिवीर्य का पराभव एवं दीक्षा- ४८, जितपद्मा और लक्ष्मण का विवाह- ५०, श्री देशभूषण, कुलभूषण मुनीश्री का उपसर्ग निवारण और केवलज्ञान प्राप्ति- ५०, केवलि भगवान द्वारा पूर्व भवों का वर्णन- ५२, राम ने वंशगिरी पर हजारों प्रतिमायें बनवायी अत: रामगिरी- ५४, दण्डक वन, दण्डक राजा, जटायु का भव- ५५, लक्ष्मण को सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति और शंभुकुमार की मृत्यु- ५८, चन्द्रनखा का मायाचार- ५९, खरदूषण लक्ष्मण का युद्ध- ६१.

रावण द्वारा कपटपूर्वक सिंहनाद और सीतापहरण- ६१, राम का शोक- ६३, रावण द्वारा सीता को वश करने का प्रयास- ६५, मन्दोदरी द्वारा सीता को वश करने का प्रयास- ६७, बिभीषण का दशानन को समझाना- ६९, राम और सुग्रीव का मिलन- ७०, राम और सुग्रीव की प्रतिज्ञा- ७३, राम द्वारा मायावी सुग्रीव साहसगति की मृत्यु- ७३, सुग्रीव द्वारा सीता की खोज- ७५, सीता का रावण द्वारा हरण का पता चलना। लंका और रावण के बल की जानकारी राम को देना- ७५.

लक्ष्मण का कोटिशिला उठाना- ७७, सुग्रीव ने हनुमान को बुलाने दूत भेजा- ७८, राम और हनुमान का मिलन- ७९, हनुमान का लंका की ओर प्रस्थान- ७९, हनुमान द्वारा मुनिराज का उपसर्ग निवारण- ८०, हनुमान द्वारा लंका के मायामयी कोट का नष्ट करना- ८१, हनुमान का लंका में प्रवेश, लंका सुन्दरी से युद्ध तथा मोहित होना, बिभीषण से मिलना- ८२, हनुमान का प्रमद उद्यान में जाना, सीता को राम की अंगुठी और सन्देश देना- ८३, सीता द्वारा मन्दोदरी को फटकार- ८४, ग्यारहवे दिन हनुमान द्वारा राम का सन्देश सुनकर सीता ने अन्न-जल ग्रहण किया- ८५, हनुमान द्वारा प्रमद वन और लंका को उजाड़ना- ८५, हनुमान द्वारा राम को सीता का समाचार प्राप्त होना- ८७.

राम-लक्ष्मण का सेनासहित लंका पर चढ़ाई करना- ८७, बिभीषण, इंद्रजित, रावण का संवाद- ८८, बिभीषण का राम के धर्म पक्ष में आना- ८९,

अक्षौहिणी का प्रमाण- ९०, राक्षस व वानर वंशियों का युद्ध- ९१, रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना- ९४, चंद्रप्रतिम द्वारा विशल्या (अनंगसरा) का परिचय- ९७, चन्द्रप्रतिम द्वारा लक्ष्मण के शक्ति निवारण का उपाय- १००, विशल्या द्वारा लक्ष्मण की शक्ति का निवारण- १०१, रावण को बहुरूपिणी विद्या सिद्धि- १०४, बहुरुपिणी विद्या द्वारा अनर्थ नहीं हो अत: रावण की साधना में विघ्न लाना- १०५, मन्दोदरी द्वारा रावण को सम्बोधन; परन्तु रावण का क्रोधित होना- १०९, रावण का राम लक्ष्मण से युद्ध, प्रस्थान में अपशकुन- ११०, लक्ष्मण के हाथों रावण की मृत्यु- ११२, पद्म सरोवर पर रावण का अन्त्यसंस्कार- ११४, रावण की मृत्यु के बाद अनन्तवीर्य मुनिश्री का लंका में आगमन- ११५, इन्द्रजीत, मेघवाहन, कुम्भकरण आदि दीक्षा धारण कर के मोक्ष गये-११६, मन्दोदरी आदि ४८ हजार स्त्रियों की दीक्षा- ११६.

लंका में राम सीता का मिलाप- ११६, अयोध्या में राम के आगमन की तैयारी- ११८, राम, सीता और लक्ष्मण का वापस अयोध्या प्रवेश- ११९, त्रिलोकमण्डण हाथी को जातिस्मरण- १२०, अयोध्या में केवली देशभूषणजी, कुलभूषणजी का आगमन, भरत की दीक्षा तथा हाथी के पूर्वभवकथन- १२१, भरत आदि की दीक्षा तथा केवलज्ञान- १२३, त्रिलोकमण्डन हाथी का अणुव्रत तथा सल्लेखना- १२३, राम लक्ष्मण का राज्याभिषेक- १२४, शत्रुघ्न का मथुरा पर विजय, मधुराजा की दीक्षा, चमरेन्द्र का प्रकोप महामारी- १२४, मथुरा में सप्तऋषि का आगमन और महामारी का निवारण- १२६, सीता का लोकापवाद तथा वनवास- १२८, सीता को सिंहनाद अटवी में छुड़वाना- १३१, सीता का राम को सन्देश- प्रजा के भय से धर्म नहीं छोड़ना- १३२, सिंहनाद अटवी में सीता को राजा वज्रजंघ का आधार- १३३.

लव-कुश का जन्म, क्षु. श्री सिद्धार्थ से अध्ययन तथा लव कुश का विवाह- १३४, लव-कुश दोनों कुमारों की अयोध्या पर चढ़ाई, राम लक्ष्मण से युद्ध तथा समागम- १३५, लवणांकुश के सन्मुख राम लक्ष्मण के शस्त्र निरर्थक- १३७, सिद्धार्थ और नारद द्वारा राम लक्ष्मण को दोनों पुत्रों का परिचय- १३८, सीता सब के समक्ष शपथ द्वारा निर्दोषता सिद्ध करें इस शर्त पर सीता को राम सभा

में आमन्त्रण– १४०, सती सीता की अग्निपरीक्षा– १४१, सर्वभूषण मुनिराज पर उपसर्ग तथा केवलज्ञान– १४३, देवों द्वारा अग्निकुण्ड का जलकुण्ड होना– १४४, पृथ्वीमति आर्यिका से सीता की दीक्षा– १४५.

सर्वभूषण केवली का दर्शन तथा उपदेश श्रवण– १४६, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, रावण, विभीषण, सुग्रीव का पूर्वभव का संबंध– १४७, भवावली– राम के पूर्व भव– १५३, लक्ष्मण के पूर्वजन्म और भविष्य काल में होने वाली पर्याय– १५३, रावण के पूर्वजन्म व भविष्य काल में होने वाली पर्याय– १५३, सीता के पूर्वजन्म व भविष्य काल में होने वाली पर्याय– १५४, उपदेशामृत का प्रभाव– कृतान्तवक्त्र की दीक्षा– १५४, आर्यिका सीता माताजी से राम की क्षमा याचना– १५४, महासती सीता का तीन बार वनवास– १५५, सीता की तपस्या– सीता अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र– १५५, लव कुश के गले में वरमाला तथा लक्ष्मण के आठ पुत्रों को वैराग्य– १५६.

भामण्डल की वज्रपात में मृत्यु– १५६, हनुमान की दीक्षा व मोक्ष– १५७, रत्नचूल और मृगचूल देवों द्वारा राम-लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा– १५८, लव कुश की दीक्षा व मोक्ष– १६०, लक्ष्मण की देह को कन्धे पर लेकर राम छह माह तक घूमते हैं– १६०, सेनापति और जटायु के जीव देवों द्वारा राम का सजग होना– १६२, लक्ष्मण की मृत्यु के छह माह बाद दाह संस्कार– १६४, श्रीराम की दीक्षा– १६४, श्रीराम मुनिराज की कठीन तपस्या– १६५, सीता के जीव प्रतीन्द्र का राम मुनिश्री पर अनुरागवश उपसर्ग– १६७, नरक में सीतेन्द्र द्वारा संबोधन– १६९, श्रीराम केवली द्वारा सीतेन्द्र के भवों का कथन– १७२, श्रीराम का मोक्ष गमन– १७५.

***

श्री रविषेणाचार्य विरचित 'पद्मपुराण' पर आधारित–

जैन रामायण

परमेष्ठी को वन्दौं सदा, त्रियोग सहित हरषाय ।
कहूँ जैन रामायण को, आर्ष प्रमाण बनाय ।।
ओंकार ध्वनि सार, द्वादशांग वाणी निर्मल ।
नमो भक्ति उर लाय, खिल जाय हृदय कमल ।।
छत्तीस गुणों से मंडित, आचार्य बाहुबली महान ।
त्रियोग से त्रिकाल वंदू, भक्ति से करूँ गुणगान ।।

श्री रविषेणाचार्य विरचित 'पद्मपुराण' के आधार से 'जैन रामायण' संक्षिप्त रूप से कथन करने का प्रयास है । संक्षिप्त और सरल भाषा को पसंद करने वाली नई पीढ़ी को ध्यान में रखकर ही इस कृति का निर्माण हुआ है । हालांकि इसमें नयापन कुछ भी नहीं है । उद्देश्य सिर्फ यही है कि सभी को जैन इतिहास, जैन रामायण का परिचय हो । वीतराग जिनेन्द्र भगवान की वाणी, समीचीन तत्त्व का परिचय हो । मिथ्या अज्ञान मत का निर्मूलन हो । अपना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, मन निरन्तर एकाग्र रहे । भले ही आपको यह कृति साहित्यिक आनन्द न दे सके, पर यह जैन रामायण से तो परिचित करायेगी ही।

धर्मप्रेमियों के पढ़ने योग्य यह 'जैन रामायण' कृति ईख के समान मीठा रहे । बाँस के समान रहे तो क्या लाभ? हे जिनवाणी माँ, मुझे बुद्धि दे ।

इस 'जैन रामायण' के कथन करने में जो कुछ भूल-चूक हो उसे विद्वतगण संशोधन करके पढ़े क्योंकि चाँद में काला दाग होने से उसकी चाँदनी काली नहीं होती है । इक्षु टेढ़ा होने से भी इक्षुरस मीठा ही रहता है । यद्यपि कृतिकार सामान्य है; परन्तु चरित्रनायक सामान्य नहीं है । वे तो भगवान मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में अष्टम बलभद्र होकर तद्भव मोक्षगामी हो गये

हैं । अत: यह पुण्यकथा सभी पुण्यात्माओं को रुचिकर होगी ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश के अंतर्गत इन्द्रपुरी के समान राजगृही नगरी है । किसी समय उस नगरी में इन्द्र के सम श्रेणिक राजा वहाँ राज्य करता था । राजा श्रेणिक की अत्यंत रूपवती, गुणवती और शीलवती गुणों की भण्डार चेलना नाम की रानी थी । उनका अनेक पुत्र और पौत्रों के साथ आनंदमय समय बीत रहा था ।

एक दिन सम्राट श्रेणिक अपनी राजसभा में सिंहासन पर विराजित थे, तब वनमाली उन्हें सब ऋतुओं के फल-फूल लाकर भेंट करता है । वह नमस्कार कर राजा श्रेणिक से कहता है कि, हे राजन्! विपुलाचल पर्वत पर गुणों के सागर भगवान महावीर का पदार्पण हुआ है, उन्हीं के अतिशय से सर्वत्र आनन्द छा गया है । इस शुभ समाचार को सुनकर राजा श्रेणिक का भी रोम-रोम पुलकित हो जाता है । वह शीघ्र ही सिंहासन से उतरकर सात पग आगे जाकर भगवान महावीर प्रभु को परोक्ष में साष्टांग नमस्कार करता है और प्रसन्नता से मालादि आभूषण वनमाली को भेंट में देता है ।

राजसभा को समाप्त करके राजा श्रेणिक अपनी प्रजा के साथ बड़े समारोह से भगवान महावीर के दर्शन करने जाता है । समवसरण में पहुँचकर भक्ति भाव से महावीर प्रभु को नमस्कार कर उनकी पूजा स्तुति करता है । पश्चात् मनुष्य के कोठे में बैठकर धर्मोपदेश सुनने के लिए चार ज्ञानधारी गौतम गणधर से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है कि, हे स्वामिन्! पापों के क्षालन के लिए, पुण्यार्जन करने के लिए और मिथ्या तत्त्वों को दूर करने के लिए मैं धर्म कथा के रूप में श्रीरामचन्द्र बलभद्र का जीवन चरित्र सुनना चाहता हूँ । कारण किन्हीं अज्ञानी जीवों का कहना है कि, रावण राक्षस, मांसाहारी था। कुम्भकर्ण के विषय में कहते हैं कि, वह छह महीने तक लगातार सोता था । सुग्रीव, नल, नील आदि मनुष्य नहीं बंदर थे, हनुमान भी बन्दर था इत्यादि सन्देह को दूर करने के लिए, हे कृपालु दयानाथ! आप मुझे श्रीरामचन्द्र जी का पवित्र जीवन चरित्र कहें । जिसे सुनकर मेरे चित्त को शांति हो और मैं पुण्य का भागी बनूँ ।

श्रेणिक राजा की यह प्रार्थना सुनकर गौतम गणधर कहते हैं कि, हे राजन्! मैं तुम्हें रामचन्द्र का पावन जीवन चरित्र कहता हूँ । उसे तुम ध्यान से सुनो । जो मनुष्य श्रीराम आदि श्रेष्ठ मुनियों का ध्यान करते हैं और भक्ति भाव से नम्र होते हैं, उनके पापों की निर्जरा होती है । हे सत्पुरुषों! श्रीराम का यह चरित्र मोक्ष मंदिर की प्राप्ति के लिए सीढ़ी के समान है ।

वंश उत्पत्ति का वर्णन

श्री गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं इस संसार में चार महावंश प्रसिद्ध हैं । इन महावंशों के अनेक अवान्तर भेद हैं । पहला इक्ष्वाकु वंश, दूसरा सोमवंश, ऋषिवंश इसको चंद्रवंश भी कहते हैं । तीसरा विद्याधरों का वंश और चौथा हरिवंश । इक्ष्वाकु वंश में ऋषभदेव उत्पन्न हुये, उनके भरत नाम का पुत्र हुआ और भरत के अर्ककीर्ति नामक महाप्रतापी पुत्र हुआ । अर्क नाम सूर्य का है इसलिए इनका वंश सूर्यवंश कहलाने लगा ।

ऋषभदेव की सुनंदा रानी से बाहुबली नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था । बाहुबली का सोमयश नाम का सुन्दर पुत्र हुआ । सोम नाम चन्द्रमा का है इसलिए सोमयश से सोमवंश अर्थात् चंद्रवंश की परम्परा चली ।

विद्याधर वंश

विद्याधरों का राजा नमि था । उनके वंश में विद्युद्दृढ़ नाम का राजा हुआ उसने पूर्वभव के वैर के कारण संजयन्त मुनि पर उपसर्ग किया । इसलिए धरणेन्द्र ने उसकी सब विद्या छीन ली । उसने क्षमा याचना की और विद्यायें कैसे प्राप्त होंगी ये धरणेन्द्र से पूछा तो उसने कहा– संजयन्त मुनि के चरणों में पुन: तपस्या करने पर विद्यायें प्राप्त होंगी । जिनप्रतिमायुक्त मंदिर और मुनियों का उल्लंघन कर प्रमादवश यदि ऊपर से विमान में गमन करोगे तो तुम्हारी विद्यायें तत्काल नष्ट हो जायेगी । उसने संजयन्त मुनि के पादमूल में तपश्चरण कर विद्यायें प्राप्त की । अंत समय में तपस्या कर स्वर्ग गया । विद्याधर वंश के अन्तर्गत राक्षस वंश और वानर वंश आते हैं । जो राक्षस द्वीप में रहते हैं उन्हें

राक्षसवंशी कहते हैं और जो वानर द्वीप में रहते हैं उन्हें वानरवंशी कहते हैं ।

राक्षस वंश

भरत क्षेत्र विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में चक्रवाल नगर था । वहाँ पूर्णधन नाम का विद्याधरों का राजा राज्य करता था । उसके मेघवाहन नाम का पुत्र था । अजितनाथ भगवान के समवसरण में राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम ने प्रसन्न होकर मेघवाहन को राक्षस द्वीप दिया । लवणसमुद्र में अनेकों महाद्वीप हैं, उन द्वीपों के बीच एक ऐसा द्वीप है जो राक्षसों की शुभ क्रीड़ा का स्थान होने से राक्षस द्वीप कहलाता है । मेघवाहन की बहुत बड़ी संतान परम्परा चलती रही । उसी सन्तान परम्परा में मनोवेग नामक राजा के राक्षस नाम का प्रभावशाली पुत्र हुआ । उसके नाम से यह वंश ही राक्षस वंश कहलाने लगा । उस द्वीप के रक्षक विद्याधर राक्षस कहलाने लगे; परन्तु राक्षस नहीं थे ।

वानरवंश

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघपुर नगर है । यहाँ विद्याधरों का राजा अतीन्द्र अपनी श्रीमति नाम की रानी के साथ रहता था । इनके श्रीकण्ठ नाम का पुत्र और महामनोहर नाम की पुत्री थी । रत्नपुर नगरी में विद्याधर राजा पुष्पोत्तर रहता था । उसने अपने पुत्र के लिए महामनोहर देवी की याचना की परन्तु श्रीकण्ठ ने अपनी बहन लंका के राजा कीर्तिधवल को दे दी । श्रीकण्ठ ने पुष्पोत्तर की कन्या पद्माप्रभा को वर लिया । यह सुनकर पुष्पोत्तर क्रोध से श्रीकण्ठ के पीछे पड़ गया । श्रीकण्ठ ने अपने बहनोई कीर्तिधवल की शरण ली । कीर्तिधवल ने श्रीकण्ठ को लंका से वायव्य दिशा में समुद्र के बीच में ३०० योजन विस्तार वाला वानर द्वीप रहने को दिया । वानर द्वीप के मध्य में किष्कु पर्वत है । श्रीकण्ठ ने वहाँ बहुत से वानर देखे । उनका पालन- पोषण किया । किष्कुनगर बसाया । श्रीकण्ठ की संतान परम्परा में राजा अमरप्रभ हुआ । उसने वानरों के चिन्ह बनवाकर अपने मुकुट, तोरण व ध्वजा में धारण किए । इस प्रकार वानर वंश कहलाया । श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य भगवान के अंतराल में

राजा अमरप्रभ ने अपने मुकुट में वानर का चिन्ह अंकित किया था । वानर मुखवाले नहीं थे ।

विजयार्ध पर्वत पर रथनूपुर नगर के राजा सहस्रार की मानससुन्दरी रानी थी । इनके पुत्र का नाम इन्द्र था । जिसका वैभव स्वर्ग के इन्द्र के समान था । लंकापुरी का स्वामी माली राजा था । जो समस्त विद्याधरों पर शासन करता था । लेकिन अब राजा इन्द्र का आश्रय पाकर समस्त विद्याधर राजा माली की आज्ञा का उल्लंघन करने लगे । माली ने विजयार्ध पर्वत पर चढ़ाई की तो डर के मारे विद्याधर इन्द्र राजा की शरण में गये । तब विद्याधरों, राजा इन्द्र, राजा माली व वानरवंशियों के मध्य युद्ध हुआ जिसमें इन्द्र ने माली को मार दिया । तब माली के भाई सुमाली व माल्यवान राक्षस व वानर वंशीयों को युद्ध में से सुरक्षित निकाल कर पाताल लंका (अलंकार पुर) आ गए ।

दशानन का परिचय

विद्याधर राजा व्योमबिंदु को उसकी रानी नंदवती से दो सुपुत्री थी । कौशिकी और केकसी । उसने कौशिकी का विवाह विद्याधर राजा विश्रवस के साथ किया । इनके वैश्रवण नाम का पुत्र हुआ । विद्याधर राजा इन्द्र ने वैश्रवण को लंका का शासन सौंप दिया ।

व्योमबिंदु की छोटी सुपुत्री केकसी का विवाह सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा के साथ हुआ । इनके चार संतान हुई । १ दशानन, २ भानुकर्ण जिसे कुम्भकर्ण भी कहते हैं । ३ चन्द्रनखा सुपुत्री और ४ विभीषण । जब दशानन का जन्म हुआ, तब पहले ही दिन बालक ने एक हार को अपनी ओर खींच लिया । वह हार इनके पूर्वज मेघवाहन राजा को राक्षसों के इन्द्र भीम ने दिया था । एक हजार नागकुमार देव उस हार की रक्षा करते थे । माता ने हार को बालक के गले में पहना दिया । हार में बालक के दस मुख दिखने से उसका नाम दशानन रखा । दशानन का दूसरा नाम रावण भी था । रावण राक्षसवंश के थे; परन्तु राक्षस नहीं थे ।

दशानन बड़ा हो गया । एक दिन दशानन अपनी माता की गोद में बैठा था । उसने आकाश मार्ग से बड़े वैभव के साथ वैश्रवण को जाते देखा तथा अपनी माता से पूछा– यह विद्याधर कौन है? माता ने बताया– यह तेरी मौसी का पुत्र, वैश्रवण है । विद्याधरों के राजा इन्द्र ने तेरे बाबा सुमाली के भाई माली को मारकर कुल परम्परा से चली आई लंकापुरी वैश्रवण को दे दी । यह सुन दशानन क्रोधित हो उठा और लंका पुरी को जीतने के निश्चय से दशानन ने अनेकों विद्यायें सिद्ध की । विद्या के प्रभाव से उसने स्वयंप्रभ नगर बसाया । तथा उसके प्रभाव से सब बन्धुजन, शत्रु के भय से रहित हो आनंद से वहाँ रहने लगे ।

दशानन मंदोदरी का विवाह

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में असुरसंगीत नाम का नगर था । वहाँ के राजा का नाम मय और उसकी रानी का नाम हेमवती था । उनकी मन्दोदरी नाम की सुपुत्री थी । राजा मय ने अपनी सुपुत्री मन्दोदरी का विवाह दशानन से किया । अब आगे कुछ दिनों बाद एक बार दशानन मेघरव पर्वत पर गया था । वहाँ वापिकाओं में उत्तम कुलीन ६००० कन्यायें जलक्रीड़ा कर रही थीं । जो दशानन को देख मोहित हो गयीं । दशानन का उन सबके साथ विवाह हो गया।

कुम्भपुर के राजा महोदर और सुरुपाक्षी रानी से उत्पन्न तडिन्माला से भानुकर्ण का विवाह हुआ । एक बार कुम्भपुर नगर में शत्रु ने आक्रमण किया । तब वहाँ के लोगों के दु:ख भरे रुदन के स्वर भानुकर्ण ने सुने । तब से संसार में भानुकर्ण का नाम कुम्भकर्ण प्रसिद्ध हो गया ।

राजा मय के मित्र राजा विशुद्धकमल और रानी नन्दनमाला की पुत्री राजीवसरसी का विवाह विभीषण से हुआ ।

समय पाकर मन्दोदरी ने गर्भधारण किया और उसको इन्द्रजित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । पश्चात् मेघवाहन नाम का पुत्र हुआ ।

कुम्भकर्ण वैश्रवण के राज्य से मनोहर वस्तुएँ स्वयंप्रभ नगर ले आता

था और उसके नगरों को विध्वंस–नष्ट करता था । इसलिए वैश्रवण ने सुमाली से कुम्भकर्ण की शिकायत की । तब दशानन ने वैश्रवण के दूत को करारा उत्तर दिया । दोनों में घमासान युद्ध हुआ । जिसमें वैश्रवण की पराजय हुई । उसने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । नाना प्रकार के रत्नों से जड़ित वैश्रवण का अत्यन्त सुन्दर पुष्पक विमान रावण ने अपने पास रख लिया । यह विमान सभी सुविधाओं से सहित महल के समान था । दशानन अपने बन्धुओं सहित विमान पर आरूढ़ हो दक्षिण दिशा की विजय यात्रा पर निकला । संध्या समय दशानन ने आकाश से उतरकर सम्मेदाचल के समीप संस्थलि नामक पर्वत के ऊपर अपना डेरा डाला । वहाँ पर कहीं से भयंकर शब्द निकला जिसने समस्त सेना को भयभीत कर दिया । दशानन ने मंत्री से भयंकर शब्द का कारण पूछा । मंत्री ने बताया– यह शब्द पर्वत के समान आकार वाले हाथी का है । दशानन तुरंत वहाँ जाकर हाथी को अपने वश में कर लेता है और उसका नाम त्रिलोकमण्डन रखता है ।

दशानन राजा इन्द्र के यम नामक लोकपाल पर विजय प्राप्त कर सूर्यरज को किष्किंधपुर और ऋक्षराज को किष्कुपुर का राज्य देता है । दशानन के प्रभाव से दोनों वानरवंशी अपनी कुल परम्परा से आगत नगरों में सुखपूर्वक रहने लगते हैं और रावण भी बड़े वैभव के साथ त्रिकूटाचल पर्वत लंका की ओर प्रस्थान करता है । वहाँ आनंद के साथ रहता है ।

बालि और सुग्रीव का परिचय

किष्किंधपुर के वानरवंशी सूर्यरज राजा की चन्द्रमालिनी नाम की गुणवती रानी थी । इन दोनों के बालि, सुग्रीव और श्रीप्रभा तीन संतान थी । बालि और सुग्रीव दोनों ही भाई किष्किन्ध नगर के आभूषण थे और विनय आदि गुण उन दोनों के आभूषण थे । महाबलवान बालि जिनेन्द्र देव की उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर तीनों ही काल में समस्त जिन प्रतिमाओं की वन्दना करने के लिए उद्यत रहता था । वह क्षण भर में जम्बूद्वीप की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर

अपने नगर में लौट आता था । बालि सुग्रीव सर्वांग सुन्दर विद्याधर थे वानर नहीं, वानर वंश था ।

सूर्यरज का छोटा भाई ऋक्षराज जो किष्कुपुर नगर में रहता था । उसे उसकी हरिकान्ता नाम की रानी से नल और नील दो पुत्र थे । दोनों ही पुत्र आत्मीय जनों को आनन्द और शत्रुओं को भय उत्पन्न कराने वाले थे । एक दिन सूर्यरज ने संसार से उदासीन होकर बड़े पुत्र बालि को राज्य दे दिया और सुग्रीव को युवराज बना दिया और स्वयं पिहितमोह नामक मुनिराज से दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । बालि की ध्रुवा नाम की शीलवती रानी थी । जो उसकी अन्य सौ स्त्रियों में प्रधान थी । बालि महान ऐश्वर्य का अनुभव करता हुआ किष्किंधपुर नगर में आनंद से रहता था ।

खरदूषण द्वारा चन्द्रनखा का अपहरण

मेघप्रभ राजा का पुत्र खरदूषण रावण की बहन चन्द्रनखा के रूप पर मोहित होकर उसका अपहरण करना चाहता था । एक दिन रावण राजा प्रवर की आवली रानी से उत्पन्न तनूदरी नाम की कन्या का अपहरण करने गया था । सो विद्या और माया दोनों में ही कुशल खरदूषण ने लंका को रावण से रहित जानकर चन्द्रनखा का अपहरण कर लिया । यद्यपि शूरवीर कुम्भकर्ण और विभीषण दोनों ही लंका में विद्यमान थे; परन्तु जब शत्रु माया से चन्द्रनखा का अपहरण कर रहा था तब वे क्या करते? लंका में वापस आने पर रावण को जब यह बात पता चली तो वह भयंकर क्रोध से लाल हो गया और तलवार लेकर खरदूषण के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ । तब मंदोदरी ने रावण से निवेदन किया कि, हे नाथ! खरदूषण के पास चौदह हजार से अत्यधिक शक्तिशाली विद्याधर हैं । कई हजार विद्याएँ खरदूषण को सिद्ध हैं । आप दोनों ही समान शक्ति के धारक हो अत: आप दोनों के बीच भयंकर युद्ध होने पर एक दूसरे के प्रति विजय का सन्देह ही रहेगा । यदि किसी तरह वह मारा भी गया तो हरण के दोष से दूषित कन्या दूसरे के लिए नहीं दी जा सकेगी उसे तो मात्र

विधवा ही रहना पड़ेगा । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि, अलंकारोदय नगर (पाताल लंका) को जब राजा सूर्यरज ने छोड़ा था तब चन्द्रोदर नामक विद्याधर तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध उस नगर में जम गया था सो उसे निकालकार महाबलवान खरदूषण तुम्हारी बहन के साथ उसमें रह रहा है । इस प्रकार तुम्हारे स्वजन उसके उपकार को भी प्राप्त हुए हैं । यह सुन रावण ने कहा कि, ''हे प्रिये! यद्यपि मैं युद्ध से नहीं डरता हूँ, तो भी अन्य कारणों को देखता हुआ मैं खुरदूषण से युद्ध नहीं करूँगा । अत: रावण ने खरदूषण से युद्ध नहीं किया।

विराधित का जन्म

कर्मों के नियोग से चन्द्रोदर विद्याधर मरण को प्राप्त हो गया और उसकी दीन, हीन अनुराधा नाम की गर्भवती स्त्री शरण रहित हो, विद्या के बल से शून्य हो भयंकर वन में इधर उधर भटकने लगी । वह भटकती-भटकती मणिकान्त नामक पर्वत पर पहुँची और वहाँ उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । चूँकि शत्रु ने उस पुत्र को गर्भ में ही विराधित किया था इसलिए भोगों से रहित उस पुत्र का माता ने विराधित नाम रखा । विराधित का पृथ्वी पर कोई भी आदर नहीं करता था । वह शत्रु से बदला लेने में समर्थ नहीं था इसलिए मन में ही वैर धारण करता था और कुछ परम्परागत आचार का पालन करता हुआ इच्छित देशों में घूमता रहता था ।

बालि का रावण के साथ संघर्ष व बालि का दीक्षा ग्रहण

उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त करता हुआ रावण लंकानगरी में इन्द्र के समान रहता था लेकिन राजा बालि उसकी आज्ञा का अतिक्रम करने लगा । तब रावण ने बालि के पास अपना एक दूत भेजा । दूत ने बालि के पास जाकर कहा कि, हे बालि! रावण तुम्हें आज्ञा देता है कि, उसने यमरूपी शत्रु को हटाकर तुम्हारे पिता सूर्यरज को वानरवंश में किष्किन्धपुर के राजपद पर स्थापित किया था । तुम इस उपकार को भूलकर पिता के विरुद्ध कार्य क्यों करते हो? मैं तुझे तेरे पिता से भी अधिक प्यार करता हूँ । तू आज भी आ और सुखपूर्वक रहने के

लिए मुझे प्रणाम कर और अपनी श्रीप्रभा बहन को मेरे लिए प्रदान कर । इतना कहने पर भी जब बालि रावण को नमस्कार करने में विमुख रहा तब दूत फिर कहने लगा कि, ''अरे वानर! तू व्यर्थ ही थोड़ी सी लक्ष्मी पाकर विड्म्बना कर रहा है, तू या तो अपने दोनों हाथों की अंजलि बांधकर रावण को नमस्कार कर, नहीं तो शस्त्र लेकर युद्ध करने के लिए तैयार हो जा ।'' यह कठोरवचन सुनकर बालि की सभा से एक योद्धा उस दूत को मारने के लिए उद्यत हुआ । तब अत्यंत भयभीत दूत ने जाकर रावण को सब समाचार बता दिया । जिसे सुनकर रावण क्रोधित होकर शीघ्रता से सेना के साथ किष्किन्धपुर की ओर चला । शत्रुदल का कल-कल शब्द सुनकर युद्ध करने में कुशल बालि ने महल से बाहर निकलने का मन किया । तब नीतिज्ञ मंत्रियों ने उससे कहा कि, हे देव! अकारण युद्ध रहने दो, क्षमा करो । युद्ध में सिर्फ दोनों पक्षों की सेना की हानि ही होती है । तब बालि ने कहा कि मैं सेना सहित रावण को अपने बायें हस्ततल की चपेट से ही चूर्ण करने में समर्थ हूँ; परन्तु आप लोगों का कहना ठीक है मुझे ऐसा कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, जिससे क्षणभंगुर सुख प्राप्त हो । संसार से पार होने में कारणभूत जिनेन्द्र भगवान के चरण युगल को नमस्कार कर अब मैं अन्य पुरुष के लिए नमस्कार कैसे कर सकता हूँ? मैंने पहले ही प्रतिज्ञा की थी कि, मैं जिनेन्द्र देव के चरण कमल के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा । मैं न तो इस प्रतिज्ञा को भंग करना चाहता हूँ और न प्राणियों की हिंसा ही करना चाहता हूँ । मैं तो मोक्ष प्रदान करने वाली निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करता हूँ । इस प्रकार कहकर बालि अपने छोटे भाई सुग्रीव को बुलाकर कहता है कि, हे सुग्रीव! तू राज्य पर प्रतिष्ठित होकर रावण को नमस्कार कर अथवा न कर और उसके लिए अपनी बहन दे अथवा न दे, मुझे इससे प्रयोजन नहीं । मैं तो आज ही घर से बाहर निकलकर दिगम्बर दीक्षा धारण करने जाता हूँ । जो तुझे हितकर हो वह कर । इतना कहकर बालि ने गगनचन्द्र मुनिराज के समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ।

इधर सुग्रीव ने रावण के लिए अपनी श्रीप्रभा बहन को देकर उसकी

अनुमति से सुखपूर्वक वंशपरम्परागत राज्य का पालन करने लगा । पृथ्वी पर विद्याधरों की जो सुन्दर कुमारियाँ थी रावण ने अपने पराक्रम से उन सबके साथ विवाह किया ।

बालि मुनिराज द्वारा कैलास पर्वत पर स्थित जिनमंदिरों की रक्षा । रावण ने की प्रभु भक्ति, प्राप्त हुयी अमोघ शक्ति

एक बार रावण नित्यालोक नगर में, राजा नित्यालोक की श्रीदेवी से उत्पन्न रत्नावली नाम की पुत्री को विवाह कर बड़े हर्ष के साथ आकाशमार्ग से अपनी नगरी की ओर आ रहा था कि, अचानक उसका पुष्पक विमान रुक गया । विमान को रुका देख रावण ने क्रोध से दमकते हुए कहा कि, अरे यहाँ कौन है? तब सब वृत्तान्त को जाननेवाले मंत्री मारीचि ने कहा कि, हे देव! यहाँ कैलास पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमा योग से विराजमान हैं । यह सुन रावण ने सोचा कि 'इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र ही इस स्थान से विमान को हटा लेता हूँ ।' रावण ने उस पर्वत पर उतरकर उन महामुनि के दर्शन किये । वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्र में निमग्न थे और उनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थी । तदनन्तर 'यह बालि है' ऐसा जानकर रावण पिछले वैर का स्मरण करके क्रोधित हो उठा । अर्थात् जिस समय रावण ने बालि को उसकी श्रीप्रभा बहन से विवाह करने का प्रस्ताव और उसको प्रणाम करने को कहा था; परन्तु बालि ने कहा था कि, मैं जिनेन्द्र देव के चरण कमल के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा और उसने दीक्षा ग्रहण कर ली थी । इस घटना का स्मरण कर रावण बालि मुनिराज पर क्रोधित हो उठा । रावण ने मुनिराज से कहा कि, अहो! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया है कि, अब भी अभिमान से मेरा विमान रोका जा रहा है । मैं तेरे इस उद्धत अहंकार को आज ही नष्ट कर देता हूँ । तू जिस कैलास पर्वत पर बैठा है, उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ । तदनन्तर रावण ने समस्त विद्याओं का ध्यान किया, जिससे सभी विद्याएँ

उसके सामने प्रकट हो गयी । रावण पृथ्वी को भेदकर पाताल में प्रविष्ट हुआ और उसने अपनी भुजाओं से कैलास पर्वत को स्वस्थान से उठा लिया । जिसके कारण समस्त संसार आकुलित हो गया । बालि मुनिराज ने अवधिज्ञान से रावण के द्वारा किये गए इस कार्य को जान लिया । यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ पीड़ा नहीं हुई थी तथापि उन्होंने विचार किया कि, चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्व रत्नमयी ऊँचे ऊँचे जिन मंदिर बनवाये हैं । भक्ति से भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं । इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं ये जिनमंदिर नष्ट न हो जावें । इसलिए बालि मुनिराज ने पर्वत के मस्तक को अपने पैर के अंगुठे से दबा दिया ।

रावण उस बहुत भारी बोझ से व्याकुल हो उठा । उसके सिर का मुकुट टूट कर नीचे गिर गया और सिर पर पर्वत का भार आ पड़ा । नीचे धँसती हुई पृथ्वी पर उसने घुटने टेक दिये । रावण के शरीर से पसीने की धारा बहने लगी और उसका सारा शरीर कछुए की भाँति संकुचित हो गया । वह सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर शब्द करने लगा अर्थात् रोने लगा, तभी से दशानन को 'रावण' कहने लगे । रावण की स्त्रियों का समूह अपने पति के दीन-हीन शब्द को सुनकर विलाप करने लगा । मंत्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । मुनिराज के बल के प्रभाव से देव प्रसन्न होकर दुन्दुभि आदि मधुर ध्वनि करने लगे । मंदोदरी दीन होकर मुनिराज को प्रणाम करके याचना करने लगी । हे अद्भुत पराक्रम के धारी! मेरे लिए पति भिक्षा दीजिए । तब मुनिराज ने दयावश पैर का अंगूठा ढ़ीला कर दिया । रावण ने बाहर आकर मुनिराज को प्रणाम करके बार-बार क्षमा मांगी और उनकी स्तुति की, तीन प्रदक्षिणाएँ दी, अपने आपकी बहुत निन्दा की । मुनिराज के समीप जो जिनमंदिर था, वहाँ जाकर रावण ने अपनी स्त्रियों के साथ जिनेन्द्रदेव की पूजा की । रावण के भाव भगवान की भक्ति में इतने लीन हो गये थे कि, उसने अपनी भुजा की नाड़ी रूपी तन्त्री को खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनेन्द्रदेव का गुणगान किया । रावण के द्वारा जिनेन्द्र देव की, की गयी भक्ति से पाताल में नागराज धरणेन्द्र का

आसन कम्पायमान हो गया । पाताल से आकर उसने रावण से कहा कि, 'जिनेन्द्र देव के प्रति जो तेरी भक्ति है, उससे मैं बहुत संतुष्ट, प्रसन्न हुआ हूँ । तुझे जो इच्छित हो, वह वर माँग ले ।' रावण ने कहा कि, हे नागराज! जिनवन्दना के समान और कौन सी शुभ वस्तु है जिसे मैं आपसे माँगू । तब नागराज ने कहा कि, हे रावण! जिनेन्द्र वन्दना के समान और कोई दूसरी वस्तु कल्याणकारी नहीं है । यह सुन रावण ने कहा कि जब जिनेन्द्र वन्दना से बढ़कर और कुछ नहीं है और वह मुझे प्राप्त है तब हे नागराज! मैं तुमसे और किस वस्तु की याचना करूँ? तब प्रसन्न होकर नागराज धरणेन्द्र रावण को 'जिससे मन चाहे रूप बनाये जा सकते हैं ऐसी अमोघविजया शक्ति नाम की विद्या देता है और बड़े हर्ष से अपने स्थान पर चला जाता है । इधर बालि मुनिराज भी कठिन तपस्या करके, कर्मों की निर्जरा करते हैं और आयु के अंत में आठों कर्मों का नाश करके मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं ।

सुतारा सुग्रीव का विवाह

ज्योतिपुर नगर के राजा अग्निशिख और उसकी ह्री रानी से सुतारा कन्या उत्पन्न हुई थी । साहसगति विद्याधर सुतारा को प्राप्त करना चाहता था; परंतु उसके पिता ने सुतारा का विवाह सुग्रीव से कर दिया । वे दोनों आनंद से रहने लगे । सुग्रीव और सुतारा के अंग और अंगद नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुये । इधर साहसगति विद्याधर सुतारा को प्राप्त करने की इच्छा से हिमवान पर्वत पर रूप बदलने वाली 'शेमुषी विद्या' की आराधना करने लगा ।

इसी बीच रावण दिग्विजय करने निकलता है । मार्ग में नर्मदा नदी देखता है और उसमें प्रवेश करता है । राजा सहस्ररश्मि भी अपनी हजारों स्त्रियों के साथ उसी समय अन्य दिशा से उस नदी में प्रवेश करता है । जलयंत्रों से उसने नर्मदा का जल रोक दिया था । रावण स्नान करने के बाद नर्मदा के दूसरे छोर पर अर्हन्त भगवान के प्रतिमा स्थापित कर सुगन्धित धूप, चन्दन, पुष्प तथा मनोहर नैवेद्य से पूजा करता है कि, अचानक सब ओर से गंदा पानी आ जाता

है । रावण प्रतिमा को ऊपर उठा लेता है । सेवकों द्वारा पता चलता है उस नदी में सहस्त्ररश्मि अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा कर रहा है यह गंदा पानी वहीं से आया है । रावण सहस्त्ररश्मि को पकडने का आदेश देता है । दोनों में युद्ध होता है । रावण सहस्त्ररश्मि को बंधी बना लेता है । सहस्त्ररश्मि के पिता शतबाहु दिगम्बर मुनि थे । पुत्र को बँधा जानकर वह रावण के समीप आए । रावण ने उन्हें नमस्कार किया । मुनिराज ने रावण से कहा कि, हे आयुष्मान! तुम मेरे पुत्र सहस्त्ररश्मि को छोड़ दो । वह अब मुनि दीक्षा लेगा । तुम उसके इस कार्य में निमित्त बन गए हो । रावण ने मुनिराज की आज्ञा स्वीकार करके सहस्त्ररश्मि को मुनिराज के पास बुलाया । रावण ने सहस्त्ररश्मि से कहा कि, आज से तुम मेरे चौथे भाई हो । मैं तुम्हारे लिए मंदोदरी की छोटी बहन स्वयंप्रभा दूँगा । सहस्त्ररश्मि बोला– इस क्षणभंगुर राज्य को धिक्कार हो । अब तो मैं वह कार्य करूँगा जिससे की फिर संसार में न पडूँ । सहस्त्ररश्मि ने रावण से क्षमा याचना कर शतबाहु मुनिराज के समीप दीक्षा धारण कर ली । सहस्त्ररश्मि ने अपने मित्र अयोध्या के राजा अनरण्य से पहले कह रखा था कि, जब मैं दिगम्बर दीक्षा धारण करूँगा तब तुम्हें समाचार दे दूँगा और अनरण्य ने भी सहस्त्ररश्मि से ऐसा ही कह रखा था । इसलिए इस कथन के अनुसार सहस्त्ररश्मि ने खबर देने के लिए अनरण्य के पास आदमी भेजे । सहस्त्ररश्मि की दीक्षा का वार्ता सुनकर अनरण्य के नेत्र आसूँओं से भर गये । पश्चात् सहस्त्ररश्मि की प्रशंसा कर अनरण्य भी संसार से भयभीत हो छोटे पुत्र दशरथ के लिए राज्यलक्ष्मी सौंप बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ जिन दीक्षा धारण कर लेता है ।

नलकूबर के साथ रावण का युद्ध और रावण द्वारा इन्द्र का पराजय

दशानन उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़ता है । राजा मरुत्वाहन दशानन को अपनी कनकप्रभा कन्या देता है । इनसे कृतचित्रा नाम की सुपुत्री का जन्म होता है । बड़ी होने पर कृतचित्रा का विवाह मथुरा नगरी के राजा हरिवाहन के पुत्र 'मधु' के साथ होता है । मधु को असुरेन्द्र ने शूलरत्न दिया था । रावण

लोक में शत्रुओं को वशीभूत करता हुआ कैलास पर्वत पर पहुँचा । वहाँ जिन मंदिरों का दर्शन करके वह आगे बढ़ा । राजा इन्द्र ने दुर्लंघ्यपुर नगर में नलकूबर को नियुक्त किया था । जैसे ही उसे पता चला रावण उसे जीतने की इच्छा से निकट आ पहुँचा है तो उसने अपने नगर के चारों ओर विद्या बल से कोट निर्माण कर दिया । नलकूबर की स्त्री उपरम्भा रावण पर आसक्त थी । रावण के साथ समागम की इच्छुक उपरम्भा ने अपने मन की बात को कहने अपनी सखी को रावण के पास भेजा । रावण ने इस कार्य की निन्दा की और कहा- यह कार्य इहलोक और परलोक में पाप का कारण है । विभीषण की सलाह अनुसार रावण ने नगर प्रवेश का उपाय बताने के लिए कपट से उपरम्भा को बुलाया । उपरम्भा ने आशालिका नाम की विद्या रावण को दे दी । उस विद्या से मायामयी कोट दूर हो गया । रावण ने नलकूबर को परास्त कर दिया । उपरम्भा को नीतिपूर्ण शब्दों से प्रतिबोध दिया जिससे वह पूर्ववत् अपने पति के साथ रमण करने लगी । उसी समय रावण को पूर्वभव कृत पुण्य से सुदर्शन नाम का चक्ररत्न प्राप्त हुआ । रावण अपनी सेना सहित विजयार्ध पर्वत पर पहुँचा और राजा इन्द्र के साथ युद्ध कर उसे बंधी बना लिया । परम विभूति से युक्त रावण लंका की ओर चला गया ।

राजा इन्द्र के पिता सहस्रार रावण की सभा में उपस्थित होते हैं । रावण उनका सम्मान करता है और उनके कहने पर इन्द्र को बन्धन मुक्त कर देता है । इन्द्र अपने नगर विजयार्ध पर्वत पर चला जाता है । एक दिन वह जिनालय में बैठा था, तब चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आये । उनके दर्शन कर उसने उनसे अपने पूर्व भव पूछे । जिसे जानकर इन्द्र को वैराग्य उत्पन्न होता है । वह दीक्षा धारण कर, तपस्या कर निर्वाण को प्राप्त होता है ।

श्री अनंतबल केवली के चरणों में रावण का व्रत धारण

एक बार रावण मेरु पर्वत पर जिनेन्द्र वन्दना के लिए गया था । लौटते समय मार्ग में उसने जोरदार कोमल मधुर शब्द सुना । तब मारीची ने बताया

कि, सुवर्णगिरि पर अनन्तबल मुनिराज को केवलज्ञान हुआ है । तब रावण उनकी वन्दना के लिए वहाँ गया । वह उनके दर्शन कर विनय से प्रश्न पूछता है कि– हे भगवन्! सभी प्राणी धर्म–अधर्म का फल तथा मोक्ष का कारण जानना चाहते हैं? भगवन् की दिव्यध्वनि अर्थात् उपदेश हो जाता है । तदनन्तर धर्मरथ नामक मुनिश्री ने रावण से कहा– हे भव्य! अपनी शक्ति के अनुसार कोई नियम ले लो । रावण ने अनन्तबल केवली को भावपूर्वक नमस्कार किया । फिर कहा, ''हे भगवन्! जो पर स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे ग्रहण नहीं करूँगा ।'' यह शीलव्रत नियम धारण किया । कुम्भकर्ण ने नियम लिया कि, मैं प्रतिदिन अभिषेक पूर्वक जिनेन्द्र देव की पूजा करूँगा तथा जब तक मैं निर्ग्रंथ साधुओं की पूजा नहीं कर लूँगा तब तक आहार ग्रहण नहीं करूँगा । इस प्रकार वह नियम ग्रहण कर लंका की ओर चले गये ।

महासती अंजना–पवनंजय का विवाह

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में आदित्यपुर नगर है । वहाँ पर राजा प्रह्लाद अपनी रानी केतुमती के साथ रहता था । उनके वायुकुमार अर्थात् पवनञ्जय नाम का पुत्र था । युवा होने पर राजा को उसके विवाह की चिंता हुई।

इधर भरत क्षेत्र में दन्ती नामक पर्वत पर विद्याधर राजा महेन्द्र अपनी हृदयवेगा रानी के साथ रहता था । उनके सर्वगुण सम्पन्न अञ्जना नाम की पुत्री थी । राजा ने मंत्रियों से अञ्जना के लिए योग्य वर के लिए पूछा । तब एक मंत्री ने कहा– इस कन्या को राजा महेन्द्र के सुपुत्र पवनञ्जय को देना सर्वश्रेष्ठ है ।

एक समय राजा महेन्द्र कैलासगिरि के चैत्यालयों की वन्दना के लिए गये थे। संयोगवश वहाँ राजा प्रह्लाद से उनकी भेंट हो गयी । दोनों ने वार्तालाप के दौरान पवनञ्जय और अञ्जना का विवाह तीन दिन के बाद वहीं कैलास पर्वत के पास मानसरोवर पर ही करना निश्चित किया ।

पवनञ्जय अञ्जना का रूप सौंदर्य का वर्णन सुन तीन दिन तक नहीं रुक सका और अपने मित्र प्रहसित के साथ अञ्जना के महल पर जा पहुँआ ।

महल के सातवे खण्ड पर बैठी अञ्जना को दोनों झरोखे से देखने लगे ।

अञ्जना अपनी सखियों के साथ बैठी थी । बसंततिलका सखी पवनञ्जय का गुणगान करती है, तब मिश्रकेशी सखी कहती है- तू कुमार विद्युत्प्रभ के समक्ष पवनञ्जय का क्या गुणगान करती है? दोनों के मध्य वही अंतर है जो गोष्पद और समुद्र के मध्य होता है अर्थात् जमीन आसमान का फर्क है । विद्युत्प्रभ के साथ अञ्जना का एक क्षण भी बीतता तो वह सुख का कारण होता और अन्य क्षुद्र प्राणी के साथ अनन्त काल भी बीतेगा तो भी वह सुख का कारण नहीं होगा ।

यह सब बातें सुन पवनञ्ज्य क्रोधित हो उठा और सोचने लगा, वह विद्युत्प्रभ इस अञ्जना का प्यारा होगा तभी तो पास बैठकर मेरी निन्दा करने वाली इस स्त्री से उसने कुछ नहीं कहा । मैं यहाँ एक क्षण नहीं रुक सकता और उसने मानसरोवर से जाने की पूर्ण तैयारी कर ली । अञ्जना ने सुना तो वह बहुत दुःखी हुयी । श्वसुर और पिता के गौरव को भंग करने में असमर्थ होता हुआ पिताजी की आज्ञार्थ पवनञ्जय वापिस लौट आया और विचार किया कि, मैं अञ्जना से विवाह तो करूँगा; परन्तु विरह के असमागम से उत्पन्न दुख द्वारा अञ्जना को सदा दुखी करूँगा । अपमान का बदला जरूर लूंगा ।

विवाह के पश्चात् अंजना का त्याग

बहुत वैभव से मानसरोवर पर ही दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ । राजा प्रह्लाद ने नव वर-वधू के साथ आदित्यपुर नगर में प्रवेश किया । पवनञ्जय ने अञ्जना को विवाह कर ऐसा छोड़ा कि, कभी उससे बात भी नहीं की । आँख उठाकर भी उसे नहीं देखा । पति की अनुकम्पा के अभाव में अञ्जना अत्यंत दुखी रहने लगी ।

रावण के सहायतार्थ पवन का प्रस्थान

एक बार रावण का वरुण राजा से विरोध हो गया । राजा वरुण के पुत्रों ने रावण के बहनोई खरदूषण को पकड़ लिया । तब रावण ने अपने दूत को राजा

प्रह्लाद के पास भेजा। रावण का मन्तव्य जानकर सहायतार्थ पवनञ्जय युद्ध में जाने को तैयार हो गया। जाते समय उसकी नजर खम्भे के सहारे द्वार पर खड़ी रोती हुई अञ्जना पर पड़ी। पवनञ्जय ने क्रोधित हो अञ्जना से कहा कि, तू इस स्थान से दूर हट जा। उल्का की तरह मैं तुझे देखने में समर्थ नहीं हूँ। तब अञ्जना ने कहा कि, मेरा चित्त तो केवल आप में ही लगा हुआ है। आपने मेरा त्याग किया है इसलिए इस समस्त संसार में दूसरा कोई भी मेरे लिए शरण नहीं है, अब तो मरण ही शरण है। पवनञ्जय ने मुख सिकोड़कर कहा कि, 'तो ठीक है मरो' और महल से बाहर निकल गया। प्रथम दिन मानसरोवर के तट पर सेना ठहरी। संध्या का समय था पवनञ्जय मानसरोवर को देख रहा था तभी उसकी नजर चकवी पक्षी पर पड़ी जो सूर्य के डूबने पर पति चकवा के वियोग से दुखी थी। पवनञ्जय यह देख विचारने लगा कि रात्रि में पति वियोग से चकवी को दुख हो रहा है तब अञ्जना का क्या हाल होता होगा?

अंजना पवनंजय का मिलाप

मित्र प्रहसित ने पवनञ्जय को जब दुखी देखा तो उस दुख का कारण पूछा। तब पवनञ्जय ने अपने मन का सारा हाल प्रहसित से कहा और वह उससे बोला कि, हे मित्र! कुछ ऐसा उपाय करो कि, जिससे मेरा और अञ्जना का समागम हो जाए। तब प्रहसित ने कहा कि, हे कुमार! तुम युद्ध के लिए अपने पिताजी की आज्ञा लेकर निकले हो अब अञ्जना के लिए वापिस लौट के जाना बड़ी लज्जा की बात होगी। इसलिए सेना को यहीं छोड़कर गुप्त रीति से वहाँ जाना ही ठीक होगा और प्रात: होने से पहले ही वहाँ से लौट आना चाहिये। इस प्रकार मित्र की सलाहनुसार पवनञ्जय सेनापति को सेना की रक्षा में नियुक्त कर प्रहसित मित्र के साथ मेरु वन्दना के बहाने आकाश में जा उड़ा। इतने में सूर्यास्त हो गया। आदित्यपुर में पहुँचकर वह दोनों अञ्जना के महल पर उतरे। पवनञ्जय तो बाहर खड़ा रहा और प्रहसित ने अञ्जना को पवनञ्जय के आने का समाचार दिया। यह सुनकर अञ्जना को विश्वास ही नहीं हुआ;

परन्तु पवनञ्जय ने अञ्जना के सामने प्रकट होकर उसकी दुविधा को दूर किया । पवनञ्जय ने अञ्जना के साथ मधुर वार्तालाप किया और उससे क्षमा माँगी । वह रात उन दोनों ने साथ में बिताई । सूर्योदय के पूर्व ही प्रहसित और पवनञ्जय अपने स्थान की ओर चलने को तैयार हो गये ।

महल से जाते समय पवनञ्जय ने अञ्जना को धैर्य बँधाते हुए कहा कि, हे अञ्जने! तुम चिंता मत करो, मैं शीघ्र ही रावण की आज्ञा का पालन करके तुम्हारे पास आ जाऊँगा तब तक तुम अपना ध्यान रखना । अञ्जना ने कहा कि, हे स्वामी! यह बात सब लोग जानते हैं कि, अब तक आपकी कृपा मुझ पर नहीं हुई है । आप मुझसे नाराज हैं । यदि गर्भ रह गया तो विरहकाल में निन्दा होगी । कृपा कर आप अपने यहाँ आने की बात माता-पिता से कहकर जाना । पवनञ्जय ने कहा कि, हे देवी! मैं सबसे छुपकर यहाँ आया हूँ अत: उनसे कैसे कह सकता हूँ? तुम चिंता मत करो, तुम्हारा गर्भ प्रकट होने के पूर्व ही मैं लौट आऊँगा । तुम्हारे संतोष के लिए मैं अपनी मुद्रिका और हाथों के कड़े तुम्हें दिये जाता हूँ । इनकी साक्षी से तुम्हारा कल्याण होगा । ऐसा कहकर वे आकाश मार्ग से चले गये ।

अंजना का गर्भ प्रकट, सास द्वारा अंजना को घर से निकालना

कुछ काल व्यतीत होने पर अञ्जना के गर्भ के लक्षण स्पष्ट दिखने लगे । तब सास केतुमती ने पूछा- तुने यह कुकर्म किससे किया? अञ्जना ने पति के आगमन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया । सास केतुमती बोली मेरा पुत्र तुझसे अत्यन्त विरक्त, नाराज है वह तेरे महल में कैसे आ सकता है? मुद्रिका और कड़े दिखाने पर भी सास ने अञ्जना पर विश्वास नहीं किया और बोली-विद्या के बल से तूने यह मुद्रिका और कड़े बनवाये होगें । उसने सेवक को बुलाया और कहा- तू बसंतमाला सहित अञ्जना को शीघ्र ही इसके माता-पिता के घर महेन्द्रनगर छोड़कर वापस आ जा ।

मायके में भी अंजना को आश्रय नहीं मिला

अंजना और वसंतमाला महेन्द्रनगर के उद्यान में पहुँचते हैं । दुख के

कारण अंजना का रूप बदल गया था सो द्वारपाल भी उसे पहचान न सका और अंदर जाने से रोक दिया। तब वसंतमाला ने द्वारपाल को सब वृत्तान्त बताया। द्वारपाल ने पिता महेन्द्रकुमार राजा को अञ्जना के आने का समाचार दिया। राजा महेन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा कि, बड़े वैभव के साथ अञ्जना का महल में प्रवेश कराया जाय। परन्तु जैसे ही द्वारपाल ने अञ्जना का जैसा चरित्र सुन रखा था वैसा बताया तो पिताजी ने कुपित हो अञ्जना को नगर से शीघ्र ही बाहर निकाल देने का आदेश दे दिया।

वन में अमितगति मुनिराज का दर्शन एवं उपदेश

अञ्जना विलाप करती हुई वसंतमाला सहित नगर के बाहर वन में चली गयी। समस्त आत्मीयजनों का निष्ठुर व्यवहार स्मरण करके भाग्य को बार-बार दोष देने लगी। वसंतमाला सखी बार-बार उसे सान्तवना देकर विश्राम कराकर आगे चलने के लिए प्रेरित करती थी। अञ्जना एक राजकुमारी होते हुए भी घनघोर जंगल में भूखी प्यासी भटकने लगी। किसी प्रकार दोनों सखी वन में एक गुफा में पहुँची। उस गुफा में अमितगति नामक चारणऋद्धिधारी मुनि एक शिला पर ध्यान कर रहे थे। उनको तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके दोनों मुनिराज के समीप बैठ गयी। मुनिराज का ध्यान पूर्ण होने के बाद दोनों ने नमोऽस्तु किया उनसे कुशल क्षेम पूछा। बिना कहे ही जिन्होंने सब वृत्तान्त जान लिया था ऐसे महामुनिराज को नमोऽस्तु कर के बड़े आदर से वसंतमाला बोली- हे भगवन! इस अंजना का पति किस कारण से चिरकाल तक इससे नाराज, विरक्त रहा और अब किस कारण से अनुरक्त हुआ है? अंजना किस कारण से इस महावन के दुःख को प्राप्त हुई है? और कौन सा जीव इसकी कुक्षि में आया है जिसने कि सुख भोगने वाली इस बेचारी को प्राणों के संशय में डाल दिया है? मुनिराज ने कहा, हे पुत्री! कर्मों की विचित्र लीला है। अपने-अपने कृत कर्मों के शुभाशुभ फल को भोगना पड़ता है। अंजना के गर्भ में पुण्य जीव आया है ध्यान से सुनो- जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे मन्दर

नामक नगर है। वहाँ प्रियनंदी नामक सद्गृहस्थ अपनी जया नाम की स्त्री के साथ रहता था। उनके एक पुत्र था- दमयंत। दमयन्त ने एक बार तप-ध्यान में लीन मुनिराज देखे। उसने उनकी वन्दना की और धर्मोपदेश सुना। पश्चात् उनको आहार भी दिया। जिसके प्रभाव से वह मरकर देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के मृगांक नगर में राजा हरिचंद्र और रानी प्रियंगु का सिंहचंद्र नाम का गुणी पुत्र हुआ। उसने विमलनाथ भगवान के तीर्थ में मुनि दीक्षा ली। तप के प्रभाव से लान्तव स्वर्ग में देव हुआ। उसी देव का जीव अञ्जना के गर्भ में आया है। अब पवनंजय के विरहजन्य दुःख का कारण कहता हूँ सो सुनो।

अपवाद का कारण पूर्वकृत कर्म

जब यह अंजना कनकोदरी के भव में थी तब इसकी लक्ष्मीमति नाम की सौत थी। वह सदा मुनियों की पूजा करने में तत्पर रहती थी। उसने घर के एक भाग में देवाधिदेव जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित कराई। वह भक्तिपूर्वक भगवान की स्तुति पूजा करती थी। कनकोदरी ने पट्टरानी पद के अभिमान में सौत के प्रति बहुत ही क्रोध प्रकट किया और जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को घर के बाहरी भाग में फिकवा दिया। इसी बीच में संयमश्री नामक आर्यिका ने आहार के लिए इसके घर में प्रवेश किया था। जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अनादर देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने आहार नहीं किया और अंतराय कर लिया। कनकोदरी को समझाया कि, जो जीव अरिहंत देव के प्रतिबिम्ब का अविनय करते हैं वे चतुर्गति भ्रमण कर नरक निगोद के महान दुःख भोगते हैं। आर्यिका के वचन सुन कनकोदरी नरकों मे उत्पन्न होने वाले दुःख से भयभीत हो गयी और क्षमा मांगी। उसने शुद्ध हृदय से सम्यग्दर्शन धारण किया। अर्हन्त भगवान की प्रतिमा को उसने वापस पूर्व स्थान पर विराजमान कराया और नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से उसकी पूजा की। धर्म में अनुराग रखने वाली कनकोदरी पुण्योपार्जन कर आयु के अंत में मरणकर स्वर्ग में गयी। वहाँ से चयकर अभी

अञ्जना हुई है ।

अंजना अपना पूर्वभव सुनकर आश्चर्यचकित होती है और अपने किये हुये कर्मों की निन्दा करने लगती है । मुनिराज ने उसे समझाया– तुम शक्ति प्रमाण नियम ग्रहण करो, देव शास्त्रगुरू की भक्ति पूजा करो । तेरे गर्भ में महाकल्याणकारी जीव आया है और थोड़े ही दिनों में तुम्हारा पति के साथ समागम होगा ।

मुनिराज दोनों के लिए आशीर्वाद देकर आकाश मार्ग से चले गये । वे मुनिराज उस गुफा में पर्यंकासन से विराजमान थे इसलिए आगे चलकर वह गुफा इस पृथ्वी पर 'पर्यंक गुहा' नाम से प्रसिद्ध हो गयी ।

मुनिराज के चरणस्पर्श से वह गुफा भी पवित्र हो गयी थी । यह निर्भय स्थान है इसलिए वे दोनों प्रसूति का समय निकट जान कर उसी गुफा में ठहर गयी । विद्या बल से समृद्ध वसन्तमाला अञ्जना की इच्छानुसार आहार–पानी की विधि मिलाती रहती थी । एक दिन सूर्यास्त होने पर एक भयानक सिंह उस गुफा के द्वार पर आ गया । सिंह को नजदीक देख प्राणों के न बचने की आशंका से भयभीत अञ्जना ने उपसर्ग दूर होने तक आहार–पानी का त्याग कर दिया । दोनों स्त्रियों को भयभीत देख उस गुफा में रहने वाले गन्धर्व देव ने अष्टापद का रूप लेकर सिंह को मार भगाया ।

हनुमान का जन्म, मामा प्रतिसूर्य राजा का आश्रय

अञ्जना का प्रसव का समय आ गया । उसने रात्रि में जब अर्धप्रहर बाकी था तब एक सुन्दर बालक को जन्म दिया । बालक के जन्म से वह गुफा प्रकाशित हो गयी । तभी अञ्जना ने आकाश से उतरता एक विमान देखा । किसी अनिष्ट की आशंका से घबरा कर पुन: रोने लगी । उस विमान का स्वामी विद्याधर प्रतिसूर्य राजा अपनी पत्नियों सहित उनके पास आया । उनका परिचय पूछा । वसंतमाला द्वारा अञ्जना का परिचय देने पर प्रतिसूर्य को ज्ञात हुआ कि, यह तो मेरी बहन की लड़की है । मामा से मिल अञ्जना का दु:ख थोड़ा कम

हो गया। प्रतिसूर्य ने कहा– आओ बेटी! हम लोग हनुरुह् नगर चलें। वही इस बालक का जन्मोत्सव मनायेंगे। अञ्जना पुत्र को लेकर वसंतमाला सहित विमान में बैठ गयी। नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित मोतियों की झालरों और सैकड़ों पताकाओं से वह विमान सुशोभित हो रहा था। बालक मोतियों की झालर को पकड़ने के लिए उछला तो माता की गोद से छूटकर पर्वत पर जा पड़ा। अञ्जना और समस्त लोग हा–हाकार करते हुये रोने लगे। सभी ने नीचे आकर देखा तो बालक जिस शिला पर गिरा था उस शिला के हजारों टुकड़े हो गये थे और बालक अगूँठा चूसते हुए मुस्कुरा रहा था। अञ्जना ने तुरन्त बालक को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। राजा प्रतिसूर्य ने कहा– इस बालक में दिव्य शक्ति है, यह चरमशरीरी है और पुत्रसहित अंजना को विमान में बैठाकर हनुरुह् नगर ले गया। वहाँ बालक का जन्मोत्सव बहुत ठाठ–बाठ के साथ मनाया गया।

चूँकि बालक ने शैल अर्थात् पर्वत में जन्म लिया था और उसके बाद शैल अर्थात् शिलाओं के समूह को चूर्ण किया था इसलिए अञ्जना ने मामा के साथ मिलकर उसका 'श्रीशैल' नाम रखा था। बालक ने हनुरुह नगर में संस्कार प्राप्त किये थे इसलिए वह पृथ्वीतल पर 'हनुमान' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पवनञ्जय ने रावण की आज्ञा से युद्धक्षेत्र में वरुण राजा के साथ युद्ध किया। चिरकाल तक युद्ध करने के पश्चात् पवनञ्जय ने उसे पकड़ लिया और रावण के बहनोई खरदूषण को छुड़वा लिया। रावण ने पवनञ्जय का सम्मान किया। पवनञ्जय रावण की आज्ञा लेकर अपने नगर को लौट आया। वह अञ्जना से मिलने उसके महल में गया; परन्तु अंजना वहाँ नहीं थी। वह बेचैन हो गया। लोगों द्वारा अञ्जना को महल से निकालने का समाचार सुनकर वह उससे मिलने उसके पिता के घर महेन्द्रनगर गया; परन्तु वहाँ भी अञ्जना नहीं मिली। पवनञ्जय ने मित्र प्रहसित से कहा– जब तक मेरी प्रिया नहीं मिल जाती तब तक उसे ढूँढ़ने के लिए मैं समस्त पृथ्वी पर भ्रमण करूँगा। पिता–प्रल्हाद राजा और श्वसुर–महेन्द्र राजा को जब पवनञ्जय की इस दशा का मालूम पड़ता

है तो वह अंजना को ढूँढने के लिए दूत भेजते हैं । तब प्रल्हाद राजा के दूत से प्रतिसूर्य राजा को समाचार मिलता है कि, पवनञ्जय अंजना को खोज रहे हैं तो उन्होंने यह समाचार अंजना से कहा । यह सुनकर अंजना विलाप करती है कि, मेरे कारण मेरे स्वामी की यह हालत हो गई । प्रतिसूर्य राजा पवनञ्जय को हनुरुह नगर ले आते हैं और दोनों का मिलन करवाते हैं । पवनञ्जय और अञ्जना हनुमान के साथ हनुरुह नगर में रहते हैं । हनुमान वहीं रहकर सभी कलाओं में निपुण हो जाते हैं ।

एक दिन रावण का दूत पवनञ्जय के पास आता है और कहता है कि, राजा वरुण ने फिर से उन पर आक्रमण कर दिया है । इसलिए आप उनकी सहायता के लिए शीघ्र आ जाइये । पवनञ्जय और राजा प्रतिसूर्य हनुमान का राजतिलक कर रावण के पास जाने की तैयारी करते हैं । हनुमान कहते हैं– मेरे रहते हुए आप ये कष्ट न करें और मुझे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दीजिये । प्रतिसूर्य और पवनञ्जय के समझाने पर भी जब हनुमान नहीं मानते, तब दोनों उसे युद्ध में जाने की आज्ञा देते हैं ।

हनुमान का विवाह

हनुमान रावण के पास जाकर राजा वरुण और उसके सौ पुत्रों को बंधी बना लेता है और उन्हें रावण के पास ले जाता है । रावण हनुमान के इस कार्य से प्रसन्न होकर अपनी बहन चन्द्रनखा की सुपुत्री अनंगकुसुमा का विवाह हनुमान से कर देता है । वह कर्णकुण्डलपुर का राज्य भी हनुमान को देता है । राजा नल ने भी अपनी हरिमालिनी पुत्री हनुमान को दी । राजा सुग्रीव ने भी अपनी पद्मरागा पुत्री हनुमान को दी । इसके अलावा किन्नरगति नगर के विद्याधरों ने भी अपनी अत्यन्त रूपवती १०० पुत्रियाँ हनुमान को दी । इस प्रकार हनुमान एक हजार राजकुमारियों के पति हो गये । सब राजाओं द्वारा सम्मानित होकर हनुरुह नगर लौट आये ।

दशरथ का परिचय

इक्ष्वाकु वंश में अयोध्या में रघु नाम का राजा हुआ । जिनके नाम से

रघुवंश प्रचलित हुआ । राजा रघु के अनरण्य नाम का एक पुत्र था । राजा अनरण्य को पृथ्वीमति रानी से दो पुत्र उत्पन्न हुए । अनन्तरथ और दशरथ । राजा सहस्त्ररश्मि की राजा अनरण्य के साथ उत्तम मित्रता थी । राजा रावण से पराजित होकर राजा सहस्त्ररश्मि वैराग्य को प्राप्त हुआ । दीक्षा धारण करने के पहले उसने मित्र राजा अनरण्य के पास एक दूत भेजा था, उससे वैराग्य का सब समाचार जानकर राजा अनरण्य को भी वैराग्य हो गया । राजा अनरण्य ने एक माह के बालक दशरथ को राजतिलक किया और बड़े पुत्र अनंतरथ के साथ दीक्षा धारण कर ली । कठिन तपस्या के द्वारा अनरण्य मुनि मोक्ष चले गये ।

समय के साथ कला गुण सम्पन्न दशरथ नवयौवन को प्राप्त हुआ । अतिशय सुन्दर और गुणवती कन्याओं के साथ दशरथ का विवाह हो गया । राजा दशरथ की चार रानियाँ– १) कौशल्या (अपराजिता) २) सुमित्रा ३) सुप्रभा और ४) कैकई ।

दशरथ की सभा में नारद का आगमन

एक बार राजा दशरथ जिनदेव की कथा करते हुये अपनी सभा में बैठे थे । उसी समय नारदजी वहाँ आ पहुँचे । राजा ने उठकर नारदजी का यथेष्ट आदर सम्मान किया । परस्पर कुशल वार्ता के उपरान्त नारदजी ने कहा– मैं इस समय विदेह क्षेत्र की वन्दना करता हुआ यहाँ आया हूँ । तुम से एकान्त में कुछ विशेष चर्चा करनी है । यह सुनकर राजा दशरथ ने सभा विसर्जित कर दी । दोनों निश्चिंत होकर एकान्त में बैठ गये । नारदजी बोले– मैं एक बार वन्दना के लिए लंका त्रिकूटाचल पर्वत पर गया था । वहाँ शान्तिनाथ भगवान के जिनालय की वन्दना की । तदनन्तर मैंने लंकापति रावण के विभीषण आदि मंत्रियों के मुख से सुना है कि, सागरबुद्धि नाम के निमित्तज्ञानी ने रावण को बताया है कि, ''राजा दशरथ का पुत्र और राजा जनक की पुत्री तुम्हारी मृत्यु का कारण होंगे ।'' यह सुनकर विभीषण ने निश्चय किया कि, उन दोनों को मैं पुत्र–पुत्री होने के पूर्व ही मरवा दूँगा । अत: हे दशरथ! तुम लोगों की खोज के लिए वह चिरकाल तक पृथ्वी पर घूमता रहा, पर पता नहीं चल सका । उसने मुझसे भी

तुम दोनों के बारे में पूछा– मैंने उत्तर दिया खोजकर बतलाता हूँ। इसलिए हे राजन्! यह विभीषण जब तक तुम्हारे विषय में कुछ कर नहीं लेता है, तब तक तुम अपने आप को छिपाकर कहीं गुप्त रूप से रहने लगो। अब मैं यही वार्ता कहने के लिए राजा जनक के पास जाता हूँ।

दशानन की मृत्यु का निमित्त सुन कर बिभीषण द्वारा दशरथ और जनक के पुतलों का सिर काटना

नारदजी शीघ्र ही आकाश में उड़कर मिथिलापुरी पहुँचे और वहाँ जाकर राजा जनक को भी सब यही समाचार बतलाया। नारद जी के जाने के बाद मरण की आशंका से भयभीत राजा दशरथ ने मंत्री को बुलवाया और नारदजी का समाचार सुनाया। तब मंत्री ने कहा– ''जब तक मैं शत्रुओं के नाश का प्रयत्न करता हूँ तब तक आप रूप बदलकर पृथ्वी पर विहार करें। मंत्री के ऐसा कहने पर राजा दशरथ मंत्री के लिए खजाना, देश, नगर तथा प्रजा को सौंपकर नगर से बाहर निकल गये। राजा दशरथ के चले जाने के बाद मंत्री ने राजा दशरथ के शरीर का एक पुतला बनवाया और समस्त परिवार के साथ महल के सातवें खण्ड पर उत्तम आसन पर विराजमान किया। यही कार्य राजा जनक के साथ भी मिथिला में किया गया। दोनों राजा आपत्ति के समय पृथ्वी पर छिपे–छिपे रहने लगे। एक दिन विभीषण के गुप्तचर वधक दशरथ को ढूँढते हुये वहाँ आये और कृत्रिम दशरथ का सिर काटकर विभीषण को दिखाया। तदनन्तर जिसने अन्त:पुर के रुदन का शब्द सुना था ऐसे विभीषण ने उस कटे हुये सिर को समुद्र में गिरा दिया और राजा जनक के विषय में भी ऐसी ही निर्दय चेष्टा की। भाई के स्नेह से भरा हुआ विभीषण हर्षित होता हुआ लंका चला गया।

किसी समय जब विभीषण का चित्त शांत हुआ तो वह विचारने लगा– मिथ्या भय से मैंने उन बेचारे भूमिगोचरियों को व्यर्थ ही मारा। अत्यंत तुच्छ पराक्रम को धारण करने वाला भूमिगोचरी कहाँ और इन्द्र के समान पराक्रम को

धारण करने वाला रावण कहाँ? मैंने यह जो कार्य किया है वह सर्वथा मेरे योग्य नहीं है । अब आगे कभी भी ऐसा अविचारपूर्ण कार्य नहीं करूँगा ऐसा प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान किया ।

इधर प्राण रक्षा के लिए भ्रमण करते समय राजा दशरथ के साथ एक आश्चर्यकारी घटना घटती है । उत्तर दिशा में कौतुकमंगल नगर है वहाँ का राजा शुभमति है । उसकी पृथुश्री नाम की स्त्री से दो संतान हैं– कैकई नाम की पुत्री और द्रोणमेघ नाम का पुत्र । सभी कलाओं में निपुण कैकयी के लिए राजा शुभमति उत्तम वर का विचार करता है और सोचता है कि, यह कन्या स्वयं ही अपनी इच्छानुसार वर को ग्रहण करे । ऐसा निश्चय कर स्वयंवर के लिए पृथ्वी के समस्त राजाओं को एकत्रित करता है । राजा जनक के साथ घूमते हुए राजा दशरथ भी वहाँ जा पहुँचते हैं । स्वयंवर में कैकयी राजा दशरथ के गले में वरमाला डाल देती है । यह देख कितने ही राजा कहते हैं कि, इस कन्या ने जिसके कुल और शील का पता नहीं ऐसे परदेशी मनुष्य को वरा है । इस परदेशी के केश पकड़कर खींचो, इसे जबरदस्ती पकड़ लो । वे राजा शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गये और दशरथ की तरफ बढ़ने लगे । राजा शुभमति ने घबराकर दशरथ से कहा– जब तक मैं इन राजाओं को रोकता हूँ, तब तक तुम कन्या कैकयी को रथ पर चढ़ाकर कहीं अन्तर्हित हो जाओ अर्थात् छुप जाओ । इस प्रकार कहने पर राजा दशरथ ने कहा, ''आप निश्चिंत रहो, अभी मैं इन सबको भगाता हूँ ।'' इतना कहकर दशरथ रथ पर सवार हो गये । केकई ने रथ के चालक सारथी को उतार दिया और स्वयं शीघ्र ही साहस के साथ चाबुक तथा घोड़ों की रास सँभालकर युद्ध के मैदान में जा खड़ी हुई । दशरथ ने अपने बाणों से शत्रुओं को छेद डाला और अपनी तथा केकई की रक्षा की । राजा दशरथ को लोगों ने उनकी शक्ति से पहचान लिया और जयनाद किया । बड़े वैभव से दशरथ और केकई का विवाह उत्सव सम्पन्न हुआ । राजा दशरथ अपनी पत्नी रानी केकई के साथ अयोध्या आ गये और राजा जनक मिथिलापुरी चले गये । अयोध्या में बड़े वैभव के साथ राजा दशरथ का पुनर्जन्मोत्सव और

पुनर्राज्याभिषेक किया गया । राजा दशरथ ने अन्य सपत्नियों तथा राजाओं के समक्ष अपने पास बैठी हुई केकई से कहा– हे प्रिये! जो वस्तु तुम्हें इष्ट हो उसे कहो, मैं उसे पूर्ण कर दूँ । आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ । यदि तुम उस समय बड़ी चतुराई से उस प्रकार रथ नहीं चलाती तो मैं एक साथ उठे हुए कुपित शत्रुओं को कैसे जीतता? तब केकईने बार–बार प्रेरित होने पर कहा कि, हे नाथ! मेरी इच्छित वस्तु की याचना आपके पास धरोहर के रूप में रहेगी । जब मैं माँगूँगी तब आप बिना कुछ कहे दे देना । दशरथ ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा ।

राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत का जन्म

जब चारों रानियों को गर्भ रहा उस समय उन्हें शुभ स्वप्न आये थे । अथानन्तर पुण्योदय ऐसा की राजा दशरथ की रानी कौशल्या (अपराजिता) ने राम को जन्म दिया । कुछ काल व्यतीत होने पर रानी सुमित्रा ने लक्ष्मण को, रानी कैकई ने भरत को और रानी सुप्रभा ने शत्रुघ्न को जन्म दिया । राजा दशरथ ने सभी पुत्रों का हर्षोल्लासपूर्वक बड़ा भारी जन्मोत्सव किया । चारों कुमार समुद्र के समान गंभीर वीर थे । सभी कुमारों ने सर्व शास्त्र विषयक ज्ञान को प्राप्त किया । जब लक्ष्मण का जन्म हुआ था तब लंका में अनेकों अपशकुन हुए थे।

सीता व भांमडल के पूर्व भवों का कथन

राजा जनक की विदेहा नाम की सुंदर रानी थी । जब से रानी को गर्भ रहा तबसे एक देव चिरकाल से उसके गर्भ की प्रतीक्षा करने लगा । क्योंकि चक्रवाल नाम के नगर के राजा चक्रध्वज की मनस्विनी नाम की रानी थी । उनके चितोत्सवा नाम की कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरु के घर पढ़ने आती थी । राजा के पुरोहित धूमकेश का पुत्र पिङ्गल भी उसी गुरु के पास पढ़ता था । उन दोनों में प्रीति उत्पन्न हो गई । पिङ्गल ने चितोत्सवा का हरण कर लिया । पिङ्गल चितोत्सवा को लेकर 'विदग्ध' नगर पहुँचा । नगर के बाहर कुटी बनाकर रहने लगा । तृण काष्ठ आदि बेचकर पत्नी की रक्षा अर्थात् जीवन निर्वाह करता था ।

उसी नगर का राजा 'कुण्डलमण्डित' (भामण्डल का जीव) नगर के बाहर घूमने गया था। चितोत्सवा (सीता का जीव) पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह उस पर आसक्त हो गया। उसने गुप्त रूप से दूती के द्वारा चितोत्सवा को अपने महल में बुलवाया और उसके साथ रमण करने लगा। जब पिङ्गल घर आया तो चितोत्सवा को न देखकर दु:खी हुआ। वह पत्नी का पता लगाने राजा कुण्डलमण्डित से मदद माँगने लगा। राजा ने धूर्तता से मंत्री को उसकी स्त्री का पता लगाने को कहा। मंत्री ने पिङ्गल से झूठ बोला कि, उसने उसकी पत्नी को पोदनपुर के मार्ग में देखा है। परन्तु वह उसे नहीं मिली। चितोत्सवा के वियोग में वह पृथ्वी पर भटकने लगा। एक दिन उसने नगर के द्वार पर एक आर्यगुप्त नाम के दिगम्बर आचार्यश्री को देखा। मुनिराज से धर्मश्रवण कर वैराग्य को प्राप्त हो गया और दीक्षा धारण कर ली।

राजा कुण्डलमण्डित सदैव दशरथ के पिता राजा अनरण्य की भूमि को उजाड़ता रहता था। राजा अनरण्य का सेनापति बालचंद्र कुण्डलमंडित को पकड़ने गया। कुण्डलमण्डित स्त्री में आसक्त था। राज्य में क्या हो रहा है इसका उसको कुछ पता नहीं था। बालचंद्र ने अपनी चतुराई से उससे राज्य छीन लिया। राज्य छीन जाने से वह इधर उधर भटकने लगा। एक दिन वह भ्रमण करता हुआ दिगम्बर मुनियों के तपोवन में पहुँचा। मुनिराजों को नमस्कार कर धर्म का स्वरूप सुना तथा मद्य, मांस और मधु का त्याग कर दिया। धीरे-धीरे उसका शरीर क्षीण हो गया और उसका मरण निकट आ गया। जिस समय कुण्डलमण्डित ने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवा का जीव जो स्वर्ग में देव हुआ था, वहाँ से च्युत हुआ।

दोनों जीव एक साथ रानी विदेहा के गर्भ मे गये। पिङ्गल मरकर भवनवासी देव हुआ था। उसने विचार किया कि कुण्डलमण्डित मेरा शत्रु है गर्भ से बाहर आने पर मैं उसे दु:खी करूँगा। इसलिए वह देव रानी विदेहा के प्रसव के प्रतीक्षा कर रहा था।

भामण्डल व सीता का जन्म

समय आने पर विदेहा ने एक पुत्र व एक पुत्री को जन्म दिया । उस देव ने उसी समय पुत्र का हरण कर लिया । उस देव ने सोचा इसे मैं पत्थर पर पटककर मार दूँ; परन्तु फिर विचार बदल दिया । उस बच्चे के कान में कुण्डल पहनाकर पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा उसे सुखकर स्थान पर छोड़ चला गया । उसी समय रात्रि में चंद्रगति नाम का विद्याधर राजा उधर से निकला । उसने उस बालक को अपनी गोद में उठा लिया । उसने उस बालक को ले जाकर अपनी पत्नी पुष्पावती को दे दिया । संतानरहित रानी का परम सौभाग्य था उसने बालक को अपने गले से लगा लिया । बालक के कुण्डल चमक रहे थे अत: उसका नाम भामण्डल रखा गया । उधर पुत्र वियोग का शोक करते हुए रानी विदेहा अपने भाग्य को कोसने लगी । राजा जनक ने उसे सान्त्वना दी । अत्यंत मनोहर शुभ बाल चेष्टाओं से युक्त सुपुत्री जानकी को देखकर राजा जनक और रानी विदेहा अपने मन को धीरज बँधाते थे । जानकी अपनी बाल क्रीड़ाओं से सबको संतुष्ट करती थी । भूमि के समान क्षमावान होने से जानकी का सीता नाम भी रखा गया । सीता की सुंदरता अवर्णनीय थी । वह राजमहल में सात सौ कन्याओं में मध्य में स्थित हो बड़ी सुंदरता के साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ।

एक बार म्लेच्छ राजाओं ने राजा जनक के देश मिथिलापुरी में उपद्रव मचा दिया था । तब राजा जनक ने सहायता के लिए राजा दशरथ को बुलवाया । उस समय राम-लक्ष्मण ने आकर सभी म्लेच्छों को परास्त कर दिया था । राम के इस अभूतपूर्व सहयोग से प्रसन्न होकर प्रतिउपकार स्वरूप राजा जनक ने अपनी सुपुत्री सीता को राम के लिए देना निश्चित किया था ।

नारद का सीता के महल में आगमन

नारद जहाँ भी जाते वहीं राजाओं से श्रीराम के बल-पराक्रम की प्रशंसा करते थे । जब नारद को ज्ञात हुआ कि, मिथिला के राजा जनक ने

अपनी पुत्री सीता का विवाह श्रीराम के साथ करने का निश्चय किया है, तब नारद जी को सीता को देखने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। भ्रमण करते हुए नारद एक दिन मिथिलापुरी पहुँचे। जिस समय नारद ने सीता के राजमहल में प्रवेश किया, उस समय सीता अपना मुख दर्पण में देख रही थी। सीता ने पीछे से आते हुए नारद को तो नहीं देखा; परन्तु दर्पण में उनका जटा सहित प्रतिबिम्ब देखा। उसे देखकर अत्यंत भयभीत होकर वह महल के अंदर चली गई। नारद भी सीता के पीछे–पीछे महल में घुसने लगे, तब द्वारपाल ने उन्हें रोका। उन दोनों के मध्य कलह हो गया, जिसे सुनकर कुछ अन्य द्वारपाल हाथ में शस्त्र लेकर 'पकड़ो पकड़ो' कहते हुए वहाँ आ गये। उन पुरुषों को देखकर नारद अत्यंत भयभीत हो गये। किसी तरह से उड़कर कैलास पर्वत पर जा पहुँचे। द्वारपालों द्वारा नारद के साथ ऐसा व्यवहार इसलिए हुआ क्योंकि वे नारद जी से परिचित नहीं थे।

नारद बालब्रह्मचारी, अखण्डशीलधारी, धर्मात्मा एवं कुछ कलहप्रिय होते हैं। भरत क्षेत्र में इनकी संख्या नौ होती है। इन्हें किसी भी राजा के महल में प्रवेश करने की कोई रोक टोक नहीं होती। सब जगह परस्पर में शुभाशुभ समाचार देते रहते हैं और परस्पर में कलह भी उत्पन्न करा देते हैं। धर्मात्माओं पर स्नेह भी करते हैं।

नारद द्वारा सीता का चित्रपट बना के रथनुपुर उद्यान में रखना और भामण्डल का मोहित होना

भय दूर होने पर क्रोध में आकर नारद विचारते हैं कि, मैं केवल रामचन्द्र के अनुराग से सीता का रूप देखने की इच्छा से ही वहाँ गया था; परन्तु अब मैंने उस कन्या की दुष्टता देख ली। अब मैं उसे अवश्य ही संकट में डालूँगा ऐसा विचार कर नारद ने पट पर सीता का सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनुपूर नगर गये। वहाँ जाकर उन्होंने उस चित्रपट को उपवन में स्थित क्रीड़ा भवन पर रख दिया और स्वयं पेड़ के पीछे खड़े हो गये।

दैव संयोग से राजकुमार भामण्डल (सीता का भाई) वहाँ आया । चित्र में अंकित (बहन) सीता को देखकर अज्ञानवश कामाकुलित हो गया । यह देखकर गुप्त से प्रकट होकर नारद ने चित्रपट का विस्तृत परिचय भामण्डल को दिया । नारद ने कहा कि, हे कुमार! यह तो केवल कन्या का चित्र मात्र है, यदि तू साक्षात उस कन्या को देखेगा तो न जाने तेरी क्या गति होगी? तू तो विद्याधर पुत्र है, तुम्हारे लिए इस कन्या को पाना दुर्लभ नहीं है । इतना कहकर नारद वहाँ से चले गये । भामण्डल ने निश्चय कर लिया कि, या तो सीता से उसका संयोग होगा अथवा मरण होगा ।

सीता की चिंता में भामण्डल ने आहार, पानी, निद्रा, उठना, बैठना आदि सब कार्य त्याग दिए । पुत्र की यह दशा देखकर माता-पिता पुष्पवती रानी और चन्द्रगति राजा को बहुत दुःख हुआ । वे भामण्डल से बोले- तू तो विद्याधर का पुत्र है, तुझे एक से एक सुन्दर विद्याधर कन्याएँ प्राप्त हो सकती हैं । लेकिन भामण्डल ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया तब विवश होकर राजा चन्द्रगति ने भामण्डल को वचन दिया कि, हे पुत्र! तू पूर्ववत् निश्चिंत होकर भोजनादि क्रियाएँ कर, मैं शीघ्र ही तेरा विवाह उसी कन्या से करवा दूँगा ।

विद्याधर चन्द्रगति अश्वरूप द्वारा जनक को रथनुपुर लाना

राजा चन्द्रगति ने अपने रानी पुष्पवती से कहा कि, विद्याधरों की अनुपम कन्याएँ छोड़कर भूमिगोचरियों के साथ सम्बन्ध करना ठीक नहीं है । फिर भूमिगोचरियों के घर जाकर कन्या के लिए याचना करना कैसे ठीक हो सकता है? यदि उन्होंने अपनी कन्या देने से मना कर दिया तो घोर अपमान होगा, इसलिए किसी उपाय से कन्या के पिता को यहीं बुला लेता हूँ । ऐसा विचार कर राजा चन्द्रगति ने चपलवेग नामक विद्याधर को बुलाकर सब वृत्तान्त उसे बता दिया । चपलवेग आकाश मार्ग से शीघ्र ही मिथिला पहुँच गया । वहाँ वह अश्व का रूप धारण कर नगर के पशुओं को आतंकित करने लगा । जब राजा जनक ने अश्व के उपद्रव का समाचार सुना, तो वे उस स्थान पर

गये जहाँ वह अश्व था । राजा जनक ने उसे पकड़ कर अपनी अश्वशाला में बँधवा दिया । वह एक माह तक वहाँ रहा । एक दिन राजा जनक एक हाथी पकड़ने जंगल में गये । वहाँ उन्हें एक घोड़े की जरूरत पड़ी तब सेवक उस मायामयी घोड़े को राजा जनक के पास ले गये । राजा जनक जैसे ही उस घोड़े पर बैठे, वह तुरंत उन्हें आकाश में ले उड़ा । यह देख सब लोग भयभीत होकर हाहाकार करते हुए वापस लौट आये । रानी विदेहा विलाप करने लगी ।

वह घोड़ा राजा जनक को रथनूपुर ले आता है । वहाँ राजा चन्द्रगति विद्याधर बड़े प्रेमपूर्वक राजा जनक से मिलता है । राजा चन्द्रगति कुछ देर तक इधर उधर की बातें करने के बाद राजा जनक से कहता है कि, हे मिथिला नरेश! मैंने सुना है आपकी शुभ लक्षणों से युक्त एक कन्या है, सो वह कन्या मेरे पुत्र भामण्डल के लिए दीजिये । राजा जनक कहते हैं कि, हे विद्याधरराज! मैंने अपनी पुत्री सीता को अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम को देने का दृढ़ निश्चय कर लिया है । इस निश्चय का कारण बताते हुए राजा जनक ने म्लेच्छों से युद्ध में श्रीराम द्वारा अपने राज्य एवं प्रजा की रक्षा होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और कहा इसी प्रत्युपकार के लिए मैं सीता का विवाह राम से करूँगा। यह सुन विद्याधर अत्यंत कुपित होकर भूमिगोचरियों की निन्दा करने लगते हैं, तब राजा जनक उन्हें भूमिगोचरी ६३ शलाका महापुरुषों के पुण्य पुरुषार्थ के बारे में बताते हैं । समस्त विद्याधर परस्पर मंत्रणा कर राजा जनक से कहते हैं कि, हे भूमिगोचरियों के नाथ! तुम्हारे कहने मात्र से ही श्रीराम लक्ष्मण के महान प्रभाव की प्रतीति हमें नहीं होती है । हम तुम्हें दो धनुष (वज्रावर्त एवं सागरावर्त) देते हैं । हजारों देव इनकी सेवा करते हैं । यदि श्रीराम वज्रावर्त धनुष को चढ़ाने में समर्थ हो जायें तो तुम अपनी कन्या सीता का विवाह उनके साथ कर देना अन्यथा तुम्हारी कन्या को हम बलपूर्वक वहाँ से ले आयेंगे । राजा जनक ने उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली । कुछ विद्याधर दोनों धनुषों और राजा जनक को लेकर मिथिला आ जाते हैं । एवं नगर के बाहर एक आयुधशाला बनाकर उन धनुषों को स्थापित करके वहीं ठहर जाते हैं । राजा जनक को

सकुशल लौट आया देखकर प्रजा ने उत्सव मनाया । रानी विदेहा के हर्ष की सीमा नहीं रही ।

राजा जनक उन धनुषों के निमित्त से चिन्ता सागर में डूब गये । रानी विदेहा राजा जनक को उदास देखकर चिंता का कारण पूछती है तो वह सारा वृत्तान्त बताकर कहते हैं कि, यदि राम इस धनुष्य को नहीं चढ़ा पाए तो विद्याधर लोग सीता को हर कर ले जायेंगे और फिर हम कभी भी सीता से नहीं मिल सकेंगे । इस कार्य के लिए बीस दिन की अवधि निश्चित की गई है । यह सुन रानी विदेहा भी शोक निमग्न हो जाती है ।

सीता स्वयंवर

राजा जनक ने शीघ्र ही नगर के बाहर नवनिर्मित आयुधशाला के पास अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तीर्ण स्वयंवर मण्डप का निर्माण करवाया । द्रुत गति के सम्वाद वाहकों के द्वारा दूर-दूर तक के राजकुमारों को स्वयंवर के निमंत्रण पत्र भेजे गये । एक चतुर सम्वाद वाहक को अयोध्या भेजा गया । स्वयंवर का निमन्त्रण पाकर अनेक राजा एवं राजकुमार मिथिला आ गये । अयोध्या के राजा दशरथ भी श्रीराम आदि चारों पुत्रों के साथ सपरिवार मिथिला आये । राजा जनक ने सब का यथोचित आदर सत्कार किया एवं उनके आवास की उत्तम व्यवस्था की । स्वयंवर का समय होते ही समस्त राजा एवं राजकुमार स्वयंवर मण्डप में आकर योग्य स्थानों पर बैठ गये । सीता को भी सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर सात सौ सुन्दर कन्याओं के मध्य एक उच्च स्थान पर बैठाया गया। अनेक शूरवीर सामंत उसकी रक्षा के लिए खड़े थे ।

हाथ में सुवर्ण की छड़ी धारण करने वाले कंचुकी ने सीता के सामने प्रत्येक राजकुमार की ओर संकेत कर उनके रूप, सौन्दर्य, बल, पराक्रम एवं वैभवादि का वर्णन करना प्रारम्भ किया । उसने कहा कि, हे राजपुत्रि! देखो यह कान्ति को धारण करने वाला राजा हरिवाहन है । दूसरी ओर ये परम तेजस्वी संजय है, यह जय है, यह चित्ररथ है, यह सुप्रभ है, यह भद्रबल है, यह मयूर

कुमार है । हे सीते! यह कमल लोचन, अयोध्या के अधिपति राजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम अपने गुणनिधान भ्राता लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सहित विराजमान है । ये चारों भ्राता महाप्रतापी, सौभाग्यशाली हैं । इस स्वयंवर मंडप में सभी राजकुमार तुम्हारे निमित्त एकत्र हुए हैं । इन राजकुमारों में जो वज्रावर्त धनुष को चढ़ा देगा, उसी महाभाग के कण्ठ में तू वरमाला डाल देना ।

जो मान सहित थे, अपनी प्रशंसा अपने आप कर रहे थे और सुन्दर विलासों से सहित थे ऐसे उन सब राजकुमारों को वह कंचुकी वज्रावर्त धनुष के पास ले गया । जिसका आकार बिजली की छटा के समान था तथा जिसमें भयंकर सर्प फुँकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारों के पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा । कितने ही राजकुमार भयभीत हो, धनुष की ज्वालाओं से ताड़ित चक्षु को दोनों हाथों से ढ़ककर शीघ्र ही वापस लौट गये । कितने ही लोग चलते हुए सांपों को देखकर दूर ही खड़े रहे । कितने राजकुमार पृथ्वी पर गिर पड़े, कितनों की बोलती बंद हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छा को प्राप्त हो गये । इस महान विपत्ति को सम्मुख देखकर कोई–कोई तो कहने लगे कि, यदि हम अपने स्थान पर जीवित जा सकेंगे तो जीवों को दान देंगे । कोई कहने लगे कि कन्या रूपवती है तो क्या हुआ? इसके लिए प्राण तो नहीं विसर्जित कर देंगे । इस प्रकार सब राजकुमार खेद खिन्न होकर, दूर खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे कि, कौन भाग्यशाली धनुष की प्रत्यंचा को चढ़ाता है ।

राम ने वज्रावर्त धनुष को चढा दिया, सीता का राम के गले में वरमाला

तब श्रीराम मदोन्मत्त गजराज के समान मन्थर गति को धारण करते हुए वज्रावर्त धनुष के पास गये । पुण्यशाली राम के पास आते ही धनुष ज्वालारहित होकर सौम्य हो गया । श्रीराम ने नि:शंक हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर विपुल गर्जना की । उस गर्जना से मयूर केकाध्वनि करने लगे, पंख फैलाकर नृत्य करने लगे । सूर्य अलात चक्र के समान हो गया । दिशाएँ सुवर्ण के पराग

से ही मानों व्याप्त हो गई । आकाश से 'साधु-साधु'-'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवों का शब्द होने लगा ।

धनुष के प्रचण्ड शब्द से लोगों को भयभीत एवं कम्पायमान देखकर श्रीराम ने उस वज्रावर्त धनुष की डोरी उतार दी । सीता भी अत्यंत हर्षित होकर राम को निहारने लगी । जिसका समस्त शरीर रोमांचों से सुशोभित हो रहा था ऐसी सीता ने अपने कर-कमलों से रत्नों की माला को राम के गले में डाल दिया और लज्जा से नतमस्तक होकर राम के समीप खड़ी हो गई ।

तदनन्तर लक्ष्मण ने 'सागरावर्त' धनुष को चढ़ाया । उसके चढ़ते ही भयानक शब्द हुआ । सब दर्शक भयभीत हो गए । यह देखकर लक्ष्मण ने धनुष की डोरी उतार ली और राम के समीप आ बैठा । 'वज्रावर्त और सागरावर्त' धनुषों को लेकर आये हुए चन्द्रवर्धनादि विद्याधर लक्ष्मण का बल एवं पौरुष देखकर बड़े प्रभावित हुए । उन्होंने अपनी अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याएँ लक्ष्मण को दी । भय से भरे हुए विद्याधरों ने वापस आकर जब यह समाचार चन्द्रगति विद्याधर को सुनाया, तो वह चिंता में निमग्न हो गया ।

स्वयंवर में भरत भी था । वह सोचने लगा कि, राम, लक्ष्मण व मेरा एक ही कुल है तथा पिता भी एक है फिर भी मुझमें राम-लक्ष्मण जैसा पराक्रम नहीं है । वे पुण्य के अधिकारी हैं । मैंने उन जैसा पुण्य नहीं किया है । चतुर कैकई पुत्र भरत की चेष्टा देखकर राजा दशरथ से कहती है कि, हे नाथ! भरत का चित्त उदास है इसलिए आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे भरत वैराग्य को प्राप्त न हो । यहाँ जनक का छोटा भाई कनक है । उसकी लोकसुंदरी नाम की कन्या अत्यंत रूपवती है । सो स्वयंवर विधि की पुन:घोषणा कर उसे भरत के लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ, जिससे वह किसी दूसरी भावना को प्राप्त नहीं हो सके । राजा दशरथ ने यह बात राजा कनक तक पहुँचायी । राजा कनक ने दूसरे दिन फिर से स्वयंवर की घोषणा की । तब सब राजकुमारों के मध्य बैठे हुए भरत के गले में लोकसुन्दरी ने वर माला डाल दी । मिथिला नगरी में बड़े वैभव से विवाहोत्सव मनाया गया ।

राजा दशरथ मिथिलानगरी में यथेष्ट सम्मानित होकर पुत्र वधुओं सहित बड़ी धूमधाम से अयोध्या लौटे । सभी नगरवासी उन्हें देखने बड़ी व्यग्रता से राजमार्ग में आ गये । अयोध्या में भी उन सब का बड़ा भारी उत्सव मनाया गया । प्रतापी राजा दशरथ भी अपने आज्ञाकारी पुत्रों तथा पुत्रवधुओं से संतुष्ट होकर दया धर्म का पालन करते हुए अयोध्या का राज्य करने लगे ।

भामंडल को जातिस्मरण तथा सद्बोध

भामण्डल दिन रात सीता की चिंता में निमग्न रहता था । तब विद्याधरों ने 'श्रीराम लक्ष्मण द्वारा धनुष के चढ़ाये जाने एवं राम द्वारा सीता से विवाह कर अयोध्या ले जाने की सारी घटनायें कुमार भामण्डल को बता दी ।' उन्होंने कहा कि, अब बलपूर्वक भी सीता को यहाँ लाया नहीं जा सकता है । अत: तुम अब संतोष धारण कर शांत हो जाओ ।

यह सब वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषाद से युक्त होता हुआ यह विचार करने लगा कि, अहो! मेरा यह विद्याधर जन्म निरर्थक है; क्योंकि मैं साधारण मनुष्य की तरह अपनी प्रिया को भी प्राप्त नहीं कर सका । 'मैं भूमिगोचरियों को जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्या को ले आता हूँ' ऐसा कहकर वह शस्त्रों से सुसज्जित होकर विमान में बैठकर आकाश में जा उड़ा । जाते समय उसकी दृष्टि अनेक पर्वतों से युक्त विदग्ध नामक देश में अपने पूर्वभव के मनोहर नगर पर पड़ी। यह नगर मैंने कभी देखा है– इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरण को प्राप्त होकर मूर्च्छित हो गया । यह देख घबड़ाये हुए मंत्री उसे उसके पिता राजा चन्द्रगति के पास रथनुपूर ले आये । योग्य उपचार के बाद भामण्डल स्वस्थचित्त हुआ ।

लज्जा और शोक से भामण्डल का मुख नीचा हो रहा था । उसने अपने पूर्व जन्म की स्मृति के आधार पर कहा कि, मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोह में पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया । मैं और सीता तो एक ही माता के उदर से उत्पन्न हुए भ्राता भगिनी हैं । ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुल के मनुष्य

भी नहीं करते हैं ।

भामण्डल के इन वचनों को सुनकर विद्याधर चन्द्रगति ने कहा– हे पुत्र! तू यह क्या कह रहा है? तब कुमार भामण्डल ने अपने पूर्वजन्म कुण्डलमण्डित नामक राजा होने एवं विप्र की पत्नी चितोत्सवा को हरने की सम्पूर्ण कथा कह सुनाई । उसने कहा कि, उसी चितोत्सवा का जीव सीता के रूप में एवं उसी राजा कुण्डलमण्डित का जीव मेरे (भामण्डल) के रूप में रानी विदेहा के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं, जिसकी स्त्री चितोत्सवा का मैंने हरण किया था वह विप्र मरकर भवनवासी देव हुआ । पुराने वैर के कारण उसने मुझे जन्मते ही हर लिया था । तथा विद्या के बल से मुझे आकाश से नीचे छोड़ दिया था । मैं धीरे–धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा । उस समय आपने मुझे दयावश उठा लिया था । माता पुष्पवती ने मेरा यथायोग्य पालन पोषण किया । भामण्डल के मुख से यह आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुनकर राजा चन्द्रगति प्रतिबोधित होकर संसार के विषय भोगों से विरक्त हो गया । तत्काल उसने भामण्डल को राज्य सौंपकर अयोध्या के समीप महेन्द्रोदय उद्यान में आचार्यश्री सर्वभूतहित के समीप पहुँचकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर दिगम्बर दीक्षा धारण करने का निश्चय किया ।

उसी समय महेन्द्रोदय उद्यान में भामण्डल के राज्याभिषेक का महोत्सव मनाया जाने लगा । अनेक प्रकार के मंगलसूचक वादित्र बजने लगे । बंदीजन उच्चस्वर में 'राजा जनक के पुत्र जय हो' कहने लगे । यह आवाज सुनकर रात्रि के समय अयोध्यावासी निद्रा रहित हो गये । उस शब्द को सुनकर सीता का सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठा । उसका वाम नेत्र बार–बार फड़कने लगा । वह मन में विचार करने लगी कि, इतनी रात्रि में यह कोलाहल कहाँ हो रहा है? राजा जनक तो मेरे पिता का नाम है । मेरा भाई तो जन्म लेते ही किसी दुष्टात्मा द्वारा हरा गया था । बहुत ढूँढ़ने पर भी वह कहीं नहीं मिला था । किन्तु जयध्वनि तो उसी की हो रही है; कदाचित् यह वही तो नहीं है । स्नेहवश सीता की आँखों में अश्रुधारा प्रवाहित हो गई । सीता को उसके भ्राता के लिए रुदन करते देख श्रीराम ने कहा कि, वैदेहि! तुम क्यों रो रही हो । यदि वह तुम्हारा

भाई है तो कल मालूम करेंगे, इसमें संशय नहीं है और यदि कोई दूसरा ही है तो हे पण्डिते! शोक करने से क्या लाभ है?

महेन्द्र उद्यान में सर्वभूतहित मुनिश्री द्वारा वृत्तान्त

प्रभात होते ही राजा दशरथ अपने पुत्रों और स्त्रीजनों के साथ नगरी से बाहर निकले। सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे। वे जहाँ तहाँ फैली हुई विद्याधरों की सेना को देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे। उन्होंने विद्याधरों के द्वारा निर्मित उँचे कोट और गोपुरों से सहित इन्द्रपुरी के समान स्थान देखा। तदनन्तर पताकाओं और तोरणों से सुसज्जित महेन्द्रोदय उद्यान में प्रवेश किया। वहाँ जाकर राजा दशरथ आदि सभी लोगों ने सर्वभूतहित मुनिराज को नमस्कार किया और राजा चन्द्रगति विद्याधर का दीक्षा महोत्सव देखा। भामण्डल भी समस्त विद्याधरों के साथ आकर बैठा था।

राजा दशरथ ने सर्वभूतहित मुनिराज से पूछा कि, हे नाथ! विद्याधरों के राजा चन्द्रगति को वैराग्य किस कारण हुआ है। तब सीता भी अपने भाई के बारे में जानना चाहती थी इसलिए मन लगाकर मुनिराज के वचन सुनने लगी। सर्वभूतहित मुनिराज ने भामण्डल एवं सीता के पूर्वभव कुण्डलमण्डित और चितोत्सवा के जन्म से लेकर अब तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। फिर मुनिराज ने कहा कि यह चन्द्रगति विद्याधर भामण्डल के पूर्व और वर्तमान जन्म का वृत्तान्त सुनकर संसार से उदासीन हो गया और उसी क्षण राज्य का भार भामण्डल को सौंपकर बोला कि, हे वत्स! तेरे जन्मदाता माता-पिता (राजा जनक और रानी विदेहा) तेरे वियोग से अत्यन्त दु:खी हैं। शीघ्र उनसे मिलकर उनको प्रसन्न कर। इस प्रकार संसार की विचित्र दशा से भयभीत हो चन्द्रगति विद्याधर वैराग्य को प्राप्त हुआ है।

भामण्डल ने मुनिराज से पूछा कि हे प्रभो! चन्द्रगति आदि का मुझ पर बहुत स्नेह किस कारण था? तब मुनिराज ने कहा कि, ये दोनों (चन्द्रगति और पुष्पवती) तेरे पूर्व जन्म के माता-पिता हैं। उसी पूर्व स्नेह संस्कार के कारण इस

जन्म में भी तुझ पर इनका पुत्रवत् प्रेम एवं स्नेह हुआ है ।

राजा जनक और भामण्ड़ल का मिलाप

इस समस्त वृत्तान्त को सुनकर राजा दशरथ ने भामण्डल को गले से लगा लिया । अश्रुपूरित नेत्रों से सहित रोमांचित होकर सीता अपने भाई भामण्डल से स्नेहपूर्वक मिली । राम लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुजनों ने भी भामण्डल को हृदय से लगाया । राजा दशरथ ने आकाशगामी विद्याधर के हाथ राजा जनक के पास उनके पुत्र के आगमन का समाचार सम्बन्धी पत्र भेजा । जिसे पढ़कर राजा जनक हर्ष से रोमांचित हो गये । वह समस्त भाई बन्धुओं के साथ विमान पर आरूढ़ हो निमेष मात्र में अयोध्या आ गये । आकाश से उतरकर उन्होंने पुत्र भामण्डल को अपने हृदय से लगा लिया । रानी विदेहा ने आनन्दाश्रु बहाते हुए बार-बार पुत्र का मस्तक चूमकर आशीर्वाद दिया । राजा जनक सपरिवार एक मास सुखपूर्वक अयोध्या में रहे । तदनन्तर भामण्डल सब लोगों से पूछकर तथा मिथिला का राज्य कनक के लिए सौंपकर माता विदेहा और पिता जनक को साथ ले अपने स्थान रथनुपूर चला गया ।

कैकयी ने एक ही वर मांगा-भरत को राज्य क्योंकि भरत को दीक्षा से रोकने के लिए ।

एक दिन राजा दशरथ सर्वभूतहित मुनिराज के दर्शन करने महेन्द्रोद्यान में जाते हैं । उनके मुखारविन्द से अपना पूर्वभव का वर्णन सुनते हैं । दशरथ का मन संसार से विरक्त हो जाता है । राजमहल पहुँचने के पश्चात् सामंतों और मंत्रियों को बुलवाते हैं । राजा दशरथ राजसभा में कहते हैं कि, मैंने निश्चय किया है कि, ‘‘दीक्षा धारण करुँ’’ । इसलिए आप मेरे प्रथम ज्येष्ठ पुत्र राम का शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिये । यह सुनकर समस्त अन्त:पुर शोक को प्राप्त हुआ । सभी स्त्रियाँ रुदन करने लगी । पिताजी को विरक्त देख भरत भी प्रतिबोध वैराग्य को प्राप्त हुआ । कैकयी भरत का अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी । वह सोचने लगी, पति और पुत्र दोनों ही संसार से वैराग्य लेना

चाहते हैं, तो मैं अकेली जीवन कैसे व्यतीत करूँगी । भरत को वन में जाने से मुझे रोकना चाहिये । अत: व्याकुल कैकयी के मन में स्वीकृत वर माँगने की बात याद आई । उसने राजा दशरथ को उनके पास धरोहर स्वरूप वर को माँगने की बात याद दिलाई । राजा दशरथ ने कहा– तुझे जो इष्ट है, सो वह माँग । कैकयी ने मस्तक झुकाकर कहा– मेरे पुत्र भरत के लिए राज्य प्रदान कीजिए । दशरथ ने कहा– तूने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी, उसे अब अवश्य ले । आज तूने मुझे ऋण मुक्त कर दिया।

दशरथ ने राम को बुलाकर आद्योपान्त सब वृत्तान्त बताया । यदि मैंने भरत को राज्य नहीं दिया तो वह दीक्षा ले लेगा और पुत्र वियोग से कैकयी प्राण त्याग देगी और वर नहीं दिया तो असत्य व्यवहार के कारण संसार में मेरी अपकीर्ति होगी । साथ ही ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर छोटे पुत्र को राज्य देना नीति और लोक मर्यादा के विपरीत है । यदि भरत को राज्य देता हूँ, तो तुम कहाँ जाओगे । क्या करूँ, क्या न करूँ मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है । यह सब सुन राम विनयपूर्वक पिताजी से बोले– हे तात! आप अपने वचन का पालन कीजिए । हमारी चिंता अपने मन से बिल्कुल निकाल दीजिये । आपकी अपकीर्ति हो मुझे ऐसा इंद्रिय सुख नहीं चाहिये । पिता का शोक दूर करना पुत्र का कर्तव्य है ।

इसी समय भरत मुनि दीक्षा लेने का विचार करता हुआ पिता के समीप आया एवं दीक्षा लेने की बात कहने लगा । पिता ने भरत को अपनी गोद में बिठाकर समझाया; परन्तु भरत नहीं माना । दशरथ ने कहा कि, तेरी माता कैकयी ने युद्ध में मेरे रथ पर सारथी का कार्य किया था । जिससे मुझे युद्ध में विजय प्राप्त हुई थी । मैंने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा था, तब कैकयी ने मुझे कहा जब जरूरत होगी माँग लूँगी । आज उसने उस धरोहर वर स्वरूप तेरे लिए राज्य माँगा है । मैंने उसकी बात स्वीकार कर ली है ।

अब तू यदि राज्य नहीं करेगा, तो वचन भंग के कारण मेरी अपकीर्ति होगी । सुपुत्र का कर्तव्य है कि, वह अपने माता पिता को कभी भी शोक और

चिंता में नहीं डाले । राम ने भी भरत को समझाया और कहा कि, पिता के सत्य की रक्षा करने के लिए और माता कैकयी की प्राण रक्षा करने के लिए तू राज्य कर क्योंकि माता- पिता की रक्षा करना पुत्र का कर्तव्य है । मैं किसी नदी के किनारे वन में या पर्वत पर अपना निवास करूँगा, जहाँ मुझे कोई जान न सकेगा । मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा । भरत को समझाकर राम अपनी माता कौशल्या के पास गये ।

राम ने स्वयं वनवास स्वीकारा कारण राज्य में राम रहने से भरत की यशकीर्ति नहीं ।

राम ने माँ से कहा- हे माता! पिता जी का वचन निभाना पुत्र का परम कर्तव्य है । मैं दक्षिण दिशा में कोई योग्य स्थान देखकर तुम्हें वहाँ बुला लूँगा । यदि मैं यहाँ रहा तो भरत की यशकीर्ति नहीं बढ़ सकेगी; क्योंकि बड़ा पुत्र तो बड़ा ही रहेगा । तुम चिंता मत करना ऐसा कह कर राम ने सुमित्रा, सुप्रभा और कैकयी से भी वन जाने की आज्ञा माँगी तथा सान्त्वना देकर आगे बढ़े । जब सीता ने अपने पति को देशान्तर जाने के लिए तैयार देखा तो सीता भी अपने सास ससुर को प्रणाम कर के पति राम के साथ चल दी ।

लक्ष्मण राम को राजमहल से जाते देख क्रोध से भर गया । उसने सोचा, पिताजी ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं? स्त्री स्वभाव को धिक्कार है । मैं आज ही भरत को लक्ष्मी से विमुख कर दूँ । पुन: विचार किया, क्रोध करना उचित नहीं, क्योंकि बड़े भाई और पिताजी उचित सोचते हैं । इस प्रकार लक्ष्मण भी अपनी माता सुमित्रा को नमस्कार कर के और धैर्य बँधा के राम के पीछे चलने लगे ।

राम वनवास

राम, लक्ष्मण एवं सीता के राजमहल से बाहर निकलने पर समस्त अयोध्या में हाहाकार मच गया । समस्त नर-नारी उनके साथ चलने लगे । लोग भक्ति वश पग-पग पर राम की पूजा कर रहे थे । संध्या होने पर भी लोग वापस

नहीं जा रहे थे, तब राम जनसमुदाय को वापस लौटाने के निमित्त ही पास के उद्यान में अरनाथ भगवान के चैत्यालय में रात्रि विश्राम के लिए रुक गये। माताओं को पता चला कि, वे सब पास के मंदिर में रुके हैं तो उनसे मिलने तत्काल दौड़ी आयी और वापस राजमहल चलने का आग्रह करने लगी। राम ने उन्हें धैर्य बंधाकर वापस लौटा दिया।

दशरथ की दीक्षा

दशरथ की रानियों ने राजमहल में आकर दशरथ से निवेदन किया कि, आप राम लक्ष्मण को जाने से रोक लीजिये उन्हें वापस बुला लीजिए। दशरथ ने कहा समस्त कार्य प्राणियों की इच्छानुसार नहीं होते हैं। मैं तो संयम धारण करने का निश्चय कर चूँका हूँ। मैं व्यर्थ में क्लेश क्यों करूँ। इस प्रकार राजा दशरथ ने भरत को राज्य देकर और समस्त स्त्रियों को धैर्य बँधाकर क्षमा याचना की। तत्पश्चात् सर्वभूतहित मुनिराज से जिन दीक्षा धारण कर ली।

इधर जब श्रीराम ने जनसमुदाय को निद्रामग्न देखा तो लक्ष्मण और सीता सहित अर्द्धरात्रि में ही भगवान को नमस्कार कर खिड़की से बाहर निकल गये। वे सीता को मध्य में कर दक्षिण दिशा की ओर चलने लगे। कुछ दूर चलने पर अयोध्या निवासी उनसे फिर आ मिले। राम ने अनेकों लोगों को समझा-बुझाकर वापिस लौटा दिया; परन्तु फिर भी बहुत से लोग अब भी उनके साथ चल रहे थे। मार्ग में उन्हे घोर अंधकार में बड़े बड़े वृक्षों और हिंसक जानवरों से युक्त भयानक जंगल मिला। जंगल के समीप एक अत्यंत गहरी नदी बह रही थी। राम ने सीता का हाथ पकड़कर नदी में प्रवेश किया तथा उनके पीछे आने वाले लोगों को तट पर खड़ा देखकर नगर के लिए जाने को कहा। उन्होंने नदी पार करने के पश्चात् गहन वन में प्रवेश किया।

भरत का राम से जाकर मिलना, वापस चले

इधर पति के मुनि बन जाने से तथा राम-लक्ष्मण और सीता के विदेश चले जाने से कौशल्या आदि सभी रानियाँ परम शोक को प्राप्त हुई। भरत भी

भाई के चले जाने से दु:खी रहने लगा । सबको दु:खी देखकर कैकयी ने भरत से कहा– तुम राम आदि को शीघ्र वापस ले आओ और मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी । यह सुन भरत बहुत प्रसन्न होता है और राम को वापस लाने के लिए चल पड़ता है । मार्ग में लोगों से उनके बारे में पूछता हुआ आगे बढ़ता जाता है । छह दिन में भरत राम से जा मिलता है । दूर से उन्हें देख घोड़े से उतरकर उनके पास पैदल ही पहुँचता है । राम के चरणों में मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है । मूर्च्छा भंग होने पर राम से कहता है कि, आप से दूर रहकर मुझे राज्य से तो क्या अपने इस जीवन से भी कोई प्रयोजन नहीं है । अत: आप मुझ पर प्रसन्न होइये और वापस अयोध्या चलिये । मैं आपका दास बनकर आप पर चँवर ढोराऊँगा । इतने में कैकयी भी वहाँ आ पहुँचती है । राम–लक्ष्मण को गले लगाकर खूब रोने लगती है और कहती है– हे पुत्रों! तुम्हारे बिना वह राज्य वन के समान जान पड़ता है । राम कहते हैं, माँ! क्षत्रियों का एकमात्र धर्म यही है कि, वे अपने वचन का पालन अवश्य करें । पूज्य पिताजी ने जो आज्ञा दी है उसका मुझे और आपको पूरी तरह से पालन करना ही योग्य है । इस प्रकार कैकयी और भरत को पुन: राम ने समझाया और सभी राजाओं के समक्ष वन में फिर से भरत का राज्याभिषेक किया और सभी को समझाकर वापस भेज दिया ।

भरत अयोध्या लौटने पर कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन करने लगे; परन्तु उनका मन राज्य कार्य में नहीं लगता था । भरत तीनों समय अरनाथ भगवान की पूजा करते थे । अरनाथ मंदिर में द्युति नामक आचार्यश्री भी रहते थे । भरत ने उनके समक्ष प्रतिज्ञा की कि, ''राम के दर्शन मात्र से ही मैं मुनि पद धारण कर लूँगा ।'' जल में कमल भिन्नवत् भरत अयोध्या में राज्य करते थे ।

श्रीराम का मालवदेश चित्रकूट प्रवास

श्रीराम भरत आदि सबको बिदा कर के सीता और लक्ष्मण के साथ धीरे–धीरे मार्ग में आगे बढ़ने लगे । उन्होंने वन में तपस्वियों का आश्रम देखा

और उस आश्रम में ही रात्रि विश्राम किया । सुबह तीन कोस दूरी पर चलकर वह सब एक महाअटवी में पहुँचते हैं । वहाँ चित्रकूट नाम का पर्वत था । सीता के धीरे से चलने से राम-लक्ष्मण भी मंदगति से चलते हुए उस भयानक वन को लगभग चार महीने में पार कर के मालव देश पहुँचते हैं । वह स्थान उन्होंने मनुष्यों से रहित देखा । उन्हें पता चलता है कि, सिंहोदर राजा के कारण इस स्थान का यह हाल है । यह स्थान वज्रकर्ण राजा का था; परंतु सिंहोदर ने उसे अपना बंदी बना लिया और इस स्थान को उजाड़ दिया है । राम-लक्ष्मण ने सिंहोदर से वज्रकर्ण को छुड़वाया । प्रसन्न होकर वज्रकर्ण ने अपनी आठ पुत्रियों को लक्ष्मण के लिए दिया । सिंहोदर राजा तथा अन्य सामंतों ने भी ३०० कन्याओं को लक्ष्मण को दिया । लक्ष्मण ने उनसे कहा कि, जब मैं अपना राज्य स्थापित करूँगा तब इन कन्याओं से पाणिग्रहण करूँगा ।

तदनन्तर राम-लक्ष्मण और सीता रात्रि के पिछले प्रहर गुप्तरीति से वहाँ से निकलकर मार्ग में आगे बढ़ते हैं । चलते-चलते वह सब नलकूबर नगरी के बाहर, रमणीक उपवन में पहुँचते हैं । उस उपवन में उस नगरी की राजकुमारी कल्याणमाला राजकुमार के भेष में वन क्रीड़ा करने आई और लक्ष्मण को देख उस पर मोहित हो गई । राम ने उस कन्या से पुरुष भेष में रहने का कारण पूछा, तो उसने बताया कि, उसके पिता राजा बालखिल्य को युद्ध में म्लेच्छों ने जीत लिया और बंधी बना कर रख लिया । उन्होंने कहा कि, यदि बालखिल्य राजा की गर्भवती स्त्री से पुत्र होगा तो वह इस नगर का राजा होगा; किन्तु दुर्भाग्य से पुत्र न होकर मैं पुत्री हुई । लेकिन मंत्री ने उन्हें पुत्र होने की सूचना भेज दी । तब से मैं पुरुष भेष में रहती हूँ । मंत्री और मेरी माता ही जानते हैं कि, मैं कन्या हूँ । इतना कहकर वह कन्या जोर-जोर से रोने लगी । राम ने उसे सांत्वना दी और तीन दिन तक वह उसके साथ वहीं रहे । तत्पश्चात् रात्रि के समय जब सब लोग सो गये तब राम आदि तीनों वहाँ से बाहर निकल गये । प्रात: उन्हें वहाँ न देख कल्याणमाला जोर-जोर से रोने लगी और दु:खी मन से अपने नगर को चली गई । इधर राम, लक्ष्मण और सीता नर्मदा नदी को पार कर विन्ध्याचल

के घनघोर जंगल में पहुँचे । कुछ दूर चलने पर उन्हें म्लेच्छों की सेना मिली । राम लक्ष्मण ने उन्हें युद्ध में परास्त कर दिया और बालखिल्य राजा को भी छुड़वा लिया । तथा उसे नलकूबर नगर को भेज दिया ।

विहार करते हुये वे विंध्याचल अटवी में पहुच जाते हैं । तीनों अरुण ग्राम के समीप पहुँचे । चलते-चलते सीता को प्यास लगने लगी । पानी पीने के लिए वह कपिल ब्राह्मण के घर पहुँचे । कपिल लकड़ी लाने जंगल गया था उसकी स्त्री ने सीता को पानी पिलाया । इतने में कपिल भी जंगल से आ गया और अंजान लोगों को अपने घर आया देखकर क्रोधित हुआ । उसने राम-लक्ष्मण का तिरस्कार किया तब सीता ने कहा, यहाँ रहने से अच्छा तो वन में रहना है । वे तीनों गाँव से निकलकर वन को चले गये तब तक वर्षाकाल आ गया । वे तीनों भीगते हुए एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गये । उस वृक्ष पर एक यक्ष रहता था । वह यक्ष अपने स्वामी के पास गया और उससे बोला- कोई दो प्रतापी पुरुष मेरे घर आये हैं, जिन्होंने अपने तेज से अभिभूत कर मुझे घर से बाहर कर दिया है । यक्षराज ने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि, ये बलभद्र और नारायण हैं । उनके प्रभाव एवं वात्सल्य से उसने उनके लिए क्षण भर में एक सुन्दर नगरी की रचना कर दी । वे वहाँ सुख से सोये और प्रात:काल अतिशय मनोहर संगीत के शब्दों से प्रबोध को प्राप्त हुये । उन्होंने अपने आपको रत्नों से सुशोभित शय्या पर देखा, अनेक खण्ड का रमणीय महल देखा, सेवकों का समूह देखा, लेकिन आश्चर्य को प्राप्त नहीं हुये, क्योंकि पुण्य भव्यजीव धर्मध्यान में लगे रहते हैं यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी । वे तीनों सुखपूर्वक उस नगरी में रहने लगे । इस नगरी की रचना राम के निमित्त हुई थी । इसलिए पृथ्वी पर वह नगरी 'रामपुरी' नाम से प्रसिद्ध हुई । उन्होंने वर्षाकाल का समय वहीं रामपुरी में व्यतीत किया । कपिल ब्राह्मण उस नगर को देख आश्चर्यचकित होता है । वहाँ के जिनमंदिर के दर्शन कर तथा मुनीश्री के संबोधना से व्रती होता है । तदनंतर वहाँ राम-लक्ष्मण को देख घबरा जाता है पर राम लक्ष्मण उसे धैर्य देते हैं । धन धान्य देकर उसकी गरीबी दूर करते हैं । अपकार के बदले उपकार

को देख ब्राह्मण लज्जित होकर वैराग्य से जिनदीक्षा धारण करता है । पश्चात् राम–लक्ष्मण ने आगे के लिए विहार किया ।

लक्ष्मण को वनमाला की प्राप्ति

राम लक्ष्मण और सीता वन को पार कर सूर्यास्त के पूर्व ही विजयपुर नाम के गाँव में जा पहुँचे एवं रात्रि वहीं व्यतीत की । इस नगर का राजा पृथ्वीधर था । उसकी रानी का नाम इन्द्राणी था । इनके वनमाला नाम की अत्यंत सुन्दर कन्या थी । वनमाला लक्ष्मण के रूप, गुण और पराक्रम की प्रशंसा पहले सुन चुकी थी, इसलिए लक्ष्मण के साथ ही विवाह करना चाहती थी । जब वनमाला के माता–पिता ने सुना कि, राजा दशरथ ने दीक्षा ले ली और राम–लक्ष्मण पिता के वचनों का पालन करने के लिए कहीं चले गये हैं, तो उन्होंने वनमाला का विवाह इन्द्रनगर के राजकुमार बालमित्र से करना निश्चित कर दिया । वनमाला लक्ष्मण के अलावा किसी दूसरे पुरुष से विवाह नहीं करना चाहती थी इसलिए उसने मरने का निश्चय कर लिया । वनमाला सूर्यास्त के पश्चात् वन देवी की पूजा के लिए माता–पिता से आज्ञा लेकर वन में पहुँची । राम– लक्ष्मण और सीता जहाँ ठहरे हुये थे वनमाला भी वही पहुँच जाती है । वन देवता की पूजा कर के आत्मघात की इच्छा से वह एक पेड़ के पास जाती है । वटवृक्ष के नीचे आकर फाँसी तैयार कर के (बनाकर) कहती है– हे वनदेवता! अगर लक्ष्मण विचरण करते हुये इधर आये तो उनसे कहना कि, तुम्हारे विरह में वनमाला मृत्यु को प्राप्त हो गई है । लक्ष्मण पहले से ही वनमाला के शरीर की सुगंध पाकर उस ओर आकर वटवृक्ष के पीछे खड़ा हुआ सब सुन रहा था । जैसे ही वनमाला ने मरने की इच्छा से गले में फाँसी बाँधी तो तुरन्त ही लक्ष्मण ने उसका हाथ पकड़ लिया और उससे कहा कि, तुमने लक्ष्मण के बारे में जैसा सुन रखा है वैसा देख लो, मैं वही लक्ष्मण हूँ । वनमाला हर्ष के कारण रोमांचित हो गयी । देखे समय की विचित्रता । गले में फाँसी डलनेवाली थी पर लक्ष्मण की वरमाला डल गयी । लक्ष्मण और वनमाला दोनों राम और सीता के पास जाते

हैं और पूर्वोक्त सारा वृत्तान्त बताते हैं । इधर राजा पृथ्वीधर को भी जब पता चलता है कि लक्ष्मण अपने भाई राम और उसकी पत्नी सीता के साथ आये हैं और वनमाला वहीं है तो आदरपूर्वक उनका अपने नगर में प्रवेश करवाते हैं । वे तीनों अनेक दिन तक राजा पृथ्वीधर के अतिथि होकर वहाँ रहते हैं ।

राजा अतिवीर्य का पराभव एवं दीक्षा

एक दिन राम लक्ष्मण पृथ्वीधर राजा के पास बैठकर कुछ वार्ता कर रहे थे, तभी वहाँ राजा अतिवीर्य का दूत आता है । वह बताता है कि, राजा अतिवीर्य अयोध्या के राजा भरत पर आक्रमण करना चाहते हैं इसलिए आपको शीघ्र बुलाया है । लक्ष्मण दूत से इसका कारण पूछते हैं? तब वह बताता है कि, राजा अतिवीर्य ने राजा भरत से अपनी दासता स्वीकार करने को कहा था; परन्तु राजा भरत ने मना कर दिया, इसलिए वह राजा भरत पर आक्रमण करना चाहते हैं । राजा पृथ्वीधर ने दूत से कहा कि, तुम मेरे वहाँ आने का संदेश राजा अतिवीर्य को दो; परन्तु राम, लक्ष्मण, सीता और पृथ्वीधर राजा के सौ पुत्र अतिवीर्य के नगर के समीप पहुँचते हैं । वह सब मिलकर सलाह करते हैं कि, राजा अतिवीर्य को हमें गुप्त रूप से ही परास्त करना होगा, क्योंकि उसकी सैन्य शक्ति और पराक्रम बहुत अधिक है । राम ने वहाँ आर्यिकाओं से सहित एक जिनमंदिर देखा । मंदिर के भीतर प्रवेश कर भगवान तथा आर्यिकाओं को नमस्कार किया । उन आर्यिकाओं में जो वरधर्मा नाम की गणिनी आर्यिका थी उनके पास राम ने सीता को रखा तथा सीता के पास ही अपने सब शस्त्र रख दिये । वहाँ से निकलकर अतिशय चतुर राम ने अपना नर्तकी का वेश बनाया और लक्ष्मण आदि अन्य राजपुत्रों ने भी स्त्रियों का वेश धारण किया । सब लोगों के साथ राम ने लीलापूर्वक राजमहल के द्वार की ओर प्रस्थान किया । उन नर्तकियों को देखकर समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये । तदनन्तर उत्तम चेष्टाओं को धारण करने वाली वे नर्तकियाँ सब लोगों के मन को हरती हुई राजमहल के द्वार पर पहुँच गयीं । वहाँ पहुँचकर उन सबने मधुर स्वर में गीत

गाना शुरू कर दिया । उनका मधुर संगीत सुनकर और हाव भाव देखकर राजा अतिवीर्य उनके पास खींचा चला गया । नृत्य करते-करते उस नर्तकी ने समस्त सभा को अपने वशीभूत कर लिया और राजा भरत की प्रशंसा करने लगी । जिसे सुनकर राजा अतिवीर्य अत्यधिक क्रोधित हो गया उसने जैसे ही उस नर्तकी को मारने के लिए अपनी तलवार उठाई, तभी नर्तकी वेशधारी राम ने उसको बालों से पकड़ लिया और उससे तलवार छीन ली । राम ने अतिवीर्य को बंधी बना लिया ।

नर्तकी रूपधारी राम ने वहाँ उपस्थित अन्य राजाओ से कहा कि, यदि आप लोगों को अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्य का पक्ष छोड़कर विनयवान भरत के चरणों में नमस्कार करो । नर्तकी की ऐसी शक्ति देखकर लोग आपस में कहने लगे कि, अहो! जिसकी नृत्यकारिणियों की ऐसी चेष्टा है उस भरत की शक्ति का क्या ठिकाना होगा? तदनन्तर राम अतिवीर्य को पकड़कर हाथी पर सवार होकर अपने परिजन के साथ जिनमंदिर गये । वहाँ उन्होंने बड़े हर्ष के साथ मंदिर में प्रवेश किया । मंदिर में सर्वसंघ के साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थी राम ने सीता के साथ उनकी उत्तम पूजा की ।

राम ने अतिवीर्य को लक्ष्मण को सौंप दिया । लक्ष्मण क्रोधित हो अतिवीर्य का वध करने के लिए उद्यत हुआ तब सीता ने लक्ष्मण को ऐसा करने से रोक दिया । लक्ष्मण को शान्त देख प्रतिबोध को प्राप्त हुआ अतिवीर्य राम की स्तुति करने लगा । वह अपने द्वारा किये गये कार्य की निंदा करता है और राम से क्षमा याचना करता है । राम अतिवीर्य को उसका राज्य वापिस दे देते हैं; परन्तु अतिवीर्य पुन: राज्य करने से मना कर देता है । अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराज के पास जाकर दीक्षा धारण कर लेता है । तब राम अतिवीर्य के पुत्र विजयरथ को राजसिंहासन पर बिठा देते हैं । प्रसन्न होकर विजयरथ अपनी बहन रत्नमाला को लक्ष्मण के लिए देता है । तत्पश्चात् वह सब पृथ्वीधर राजा के पास लौट आते हैं ।

भरत को जब पता चलता है कि, अतिवीर्य को किसी नर्तकी ने बंधी

बना लिया था तो वह विचार करता है कि, जरूर किसी शासन देवी ने नर्तकी के रूप में आकर हमारी मदद की है। विजयरथ अपनी दूसरी बहन विजयसुंदरी को भरत के लिए देता है।

जितपद्मा और लक्ष्मण का विवाह

राजा पृथ्वीधर के नगर में कुछ दिन रहने के पश्चात् एक दिन वे रात्रि में गुप्त रूप से निकलकर क्षेमांजलि नगर के अत्यंत सुन्दर उद्यान में पहुँचते हैं। लक्ष्मण नगर की शोभा देखने जाते हैं तब उन्हें वहाँ के लोगों से पता चलता है कि, यहाँ के राजा शत्रुदमन की अत्यंत सुंदर जितपद्मा नाम की कन्या है। राजा ने अपनी कन्या के विवाह के लिए एक शर्त रखी है कि, जो पुरुष राजा द्वारा छोड़ी गई शक्ति को झेलेगा वही जितपद्मा का पति होगा। सभी को अपना जीवन प्यारा होता है इसलिए कोई भी उस शक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता था। इसी कारण जितपद्मा भी पुरुषों से द्वेष करती थी। यह सब वृत्तान्त सुनकर लक्ष्मण राजा शत्रुदमन के पास पहुँच जाता है, वह राजा से कहता है कि, हे राजन्! तुम अपनी शक्ति छोड़ो, मैं उसे झेल लूँगा। तब राजा शत्रुदमन ने लक्ष्मण पर पाँच शक्ति छोड़ी। लक्ष्मण उन सबको सहजता से झेल लेता है। राजा शत्रुदमन अपनी प्रतिज्ञानुसार जितपद्मा को लक्ष्मण के लिए दे देता है। राजा शत्रुदमन आदरपूर्वक राम और सीता को भी अपने महल में ले आता है। वे सब कुछ दिनों तक क्षेमांजलि नगर में रहते हैं पश्चात् आगे के लिए विहार करते हैं।

श्री देशभूषण, कुलभूषण मुनीश्री का उपसर्ग निवारण और केवलज्ञान प्राप्ति

सीता सहित राम-लक्ष्मण नाना प्रकार के वनों में धीरे-धीरे विहार करते हुए वंशस्थद्युति नगर में पहुँचे। उस नगर के समीप ही उन्होंने वंशधर नाम का पर्वत देखा। उस नगर के लोग घबराकर भय से कहीं अन्यत्र जा रहे थे। तब राम ने एक मनुष्य से पूछा कि, हे भद्र! आप सब घबराये हुए कहाँ जा रहे

हो, इस भय का क्या कारण है? उस मनुष्य ने कहा कि, इस पर्वत के शिखर पर रात्रि के समय भयंकर शब्द होता है और आज तीसरा दिन है । जो शब्द पर्वत पर होता है उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है । उस भयंकर शब्द से मानो समस्त पृथ्वी हिल उठती है, कान के पर्दे फटने लगते हैं । इसलिए सब लोग उस शब्द के भय से रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुन: वापिस आ जाते हैं ।

यह सुनकर सीता ने राम-लक्ष्मण से कहा कि, जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चलते हैं । राम ने घबड़ायी हुई सीता से हँसकर कहा कि, तुम्हें बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तुम भी चली जाओ । प्रभात होने पर इन लोगों के साथ हम दोनों को खोजती हुई इस पर्वत के समीप आ जाना । भय से काँपती हुई सीता ने कहा कि, हमेशा आप लोगों की हठ केकड़े की पकड़ के समान विलक्षण ही है, उसे दूर करने में कौन समर्थ है? ऐसा कहती हुई वह राम के पीछे-पीछे चलने लगी । ऊँची नीची चट्टानों का समूह पार कर भय से रहित राम लक्ष्मण सीता के साथ पर्वत के चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ।

ऊपर जाकर उन्होंने देखा कि, श्री कुलभूषण एवं श्री देशभूषण नामक दो मुनिराज कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानारूढ़ हैं । भक्ति से नमस्कार करते हुये वे तीनों उनके पास गये । दर्शन करते ही उन्होंने बिच्छुओं से घिरे उन दोनों मुनिराजों को देखा । यह देख वे क्षण भर के लिए निश्चल खड़े रह गये । पश्चात् जो दूर हटाने पर भी बार-बार वहीं लौटकर आते थे, ऐसे सांप बिच्छुओं को धनुष के अग्र भाग से दूर किया।

भक्ति से भरी सीता ने झरने के जल से उन मुनिराजों के पैर धोकर गन्ध से लिप्त किया । लक्ष्मण के द्वारा निकटवर्ती लताओं से तोड़कर दिये गए सुगंधित फूलों से खूब पूजा की । अंजलिरूपी कमल की बोंड़ियों से जिनके ललाट शोभायमान थे ऐसे उन सब ने भक्तिपूर्वक मुनिराज की वन्दना की । अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरों में गाते हुए राम ने वीणा को गोद में रखकर

बजाया । लक्ष्मण ने भी बड़े आदर से तत्त्वपूर्ण गान गाया । सीता ने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र के जन्माभिषेक के समय सुमेरू पर श्रीदेवी ने किया था । थोड़ी देर पश्चात् सूर्य अस्त हो गया । नील मेघ के समान आभावाला सघन अंधकार समस्त दिशाओं में छा गया । उसी समय ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो आकाश को भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था । भूतों के झुण्ड महाभयंकर अट्ठहास करने लगे । राक्षस नीरस शब्द करने लगे । सैंकड़ो कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे । मेघ, दुर्गन्धित खून की बड़ी मोटी बूँदों से वर्षा करने लगे । अनेक राक्षस तथा मायामयी श्रृगालियाँ अपने भयंकर मुखों से लपलपाती अग्निज्वाला उगलने लगी । डाकिनियाँ आँतो एवं हड्डियों के आभूषण धारण कर मुनिराजों के चारो ओर क्रूर शब्द करती हुई नृत्य करने लगी । जिससे भूतल क्षोभ को प्राप्त हो गया और पर्वत की चट्टानें हिल उठी । परन्तु महा धीर वीर दोनों मुनिराज अपने ध्यान से किंचित् भी चलायमान नहीं हुए । यह सब देख सीता नृत्य छोड़ काँपती हुई राम से लिपट गई । तब राम ने सीता को मुनिराज के समीप बिठा दिया और स्वयं लक्ष्मण के साथ युद्ध के लिए तैयार हो गये ।

केवलि भगवान द्वारा पूर्व भवों का वर्णन

राम लक्ष्मण ने अपने-अपने धनुष से जोर से टंकार का शब्द किया ऐसा लगा जैसे मानो वज्रपात ही हुआ है । इन्हें बलभद्र एवं नारायण समझकर ज्योतिषीदेव अग्निप्रभ ने अपनी माया समेट ली एवं भय के कारण वहाँ से पलायन कर दिया । उपसर्ग दूर होने पर दोनों मुनिराजों को क्षणभर में केवलज्ञान हो गया । चारों निकाय के देव उनके केवलज्ञान की पूजा करने वहाँ आ गये । केवलियों की पूजा कर यथास्थान बैठ गये । श्रीराम ने नमस्कार कर केवली भगवान से पूछा कि, हे भगवन्! रात्रि के समय आप दोनों के ऊपर यह उपसर्ग किसने किया और आप दोनों में परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ? तब केवली भगवान की दिव्य ध्वनि हुई- पद्मिनी नगर में राजा विजयपर्वत अपनी

रानी धारिणी के साथ रहता था । राजा विजयपर्वत के अमृतस्वर नाम का दूत था । उसकी स्त्री का नाम उपयोगा था । उनके दो पुत्र थे– उदित और मुदित । एक बार राजा विजयपर्वत ने अमृतस्वर को किसी कार्य के लिए परदेश भेजा । अमृतस्वर के साथ उसका मित्र वसुभूति भी परदेश गया । वसुभूति का अमृतस्वर के पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध था । दुष्ट वसुभूति ने योग्य अवसर देखकर मार्ग में अमृतस्वर की हत्या कर दी एवं स्वयं वापिस नगर लौट आया । उसने अमृतस्वर की हत्या का समस्त वृत्तान्त उपयोगा को सुना दिया । उपयोगा ने कहा कि, अब तुम उदित और मुदित को भी मार डालो तभी हम दोनों निश्चिंतता से रह सकेंगे । उपयोगा की सारी बात उदित की पत्नी ने सुन ली । उसने यह सारा वृत्तान्त अपने पति उदित को बता दिया । उदित ने अपने भाई मुदित को भी सावधान कर दिया । वसुभूति इनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका । किन्तु अवसर पाकर उदित ने ही वसुभूति को मार डाला । वसुभूति मरकर म्लेच्छ पर्याय को प्राप्त हुआ । कुछ समय पश्चात् दोनों भाईयों को वैराग्य हो गया । वे मुनि दीक्षा लेकर अत्यन्त दुर्द्धर तप करने लगे । वे समाधिमरण करके देव पर्याय को प्राप्त हुए । उदित और मुदित कई भव में सगे भाई होते रहे । पश्चात् सिद्धार्थ नगर के राजा क्षेमंकर की रानी विमला से हम दोनों भाई देशभूषण और कुलभूषण उत्पन्न हुए हैं ।

एक समय हम दोनों भाई जब विद्याभ्यास करके घर लौट रहे थे, तो हमने सुना कि पिता ने हम दोनों के विवाह के लिए राजकन्याएँ बुलवायी है । हमने महल के झरोखे में बैठी एक कन्या को देखा । उसे पाने के लिए हम दोनों भाईयों ने अपने मन में परस्पर एक दूसरे का वध करने का विचार किया । वन्दी ने कहा कि, राजा क्षेमंकर और रानी विमला धन्य हैं, जिनके देवों के समान ये दो पुत्र हैं और कमलोत्सवा नाम की यह सुन्दर कन्या है । ''यह कन्या हमारी बहन है'' ऐसा जानकर हम दोनों भाई परम वैराग्य को प्राप्त हुये और गृहत्याग कर मुनि हो गये । घोर तप के प्रभाव से हम दोनों को आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हो गई । जिसके प्रभाव से हमने अनेक तीर्थों में विहार कर के भगवान के

चैत्यालयों की वन्दना की। हमारे पिता क्षेमंकर जो पहले कहे हुए भव से ही लेकर हमारे पिता होते आये हैं। हमारे शोक से मरण कर के भवनवासी देवों के अधिपति गरुड़ेन्द्र हुए; तथा अभी इस सभा में विराजमान भी हैं। वसुभूति का जीव जो म्लेच्छ हुआ था, अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ तापसी का व्रत धारण कर कुतप करने लगा। आयु पूर्ण होने पर अग्निप्रभ नाम का ज्योतिष देव हुआ।

एक बार एक शिष्य ने अनन्तवीर्य केवली से पूछा कि, हे नाथ! मुनिसुव्रत भगवान के इस तीर्थ काल में आप के समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्र से पार होगा? तब केवली ने कहा कि, मेरे उपरान्त देशभूषण और कुलभूषण केवली होंगे। अग्निप्रभ देव भी केवली के यह वचन सुनकर अपने स्थान पर चला गया। एक दिन उसने अपने अवधिज्ञान से जाना कि, हम वंशधर पर्वत पर ध्यानारूढ़ हैं। हमसे उसका पूर्व जन्मों का वैर चलता आया है और केवली भगवान के वचनों को असत्य सिद्ध करने की इच्छा से उसने प्रतिदिन रात्रि में हम पर घोर उपसर्ग करना शुरु कर दिया। परन्तु आप बलभद्र और नारायण हो, यह देखकर तथा इन्द्र के क्रोध से भयभीत होकर भाग गया। तुम्हारे द्वारा उपसर्ग दूर होने से तथा हमारे ध्यान की स्थिरता से हमें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है।

केवली भगवान के पिता का जीव जो गरुड़ेन्द्र हुआ था, उसने राम से कहा कि, तुमने हमारे पुत्रों की परम सेवा अर्थात् उपसर्ग दूर किया है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वस्तु अच्छी लगती हो उसे माँग लो। तब श्रीराम ने कहा कि, यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो आपत्ति के समय हमारी सहायता करना। गरुड़ेन्द्र ने श्रीराम का वचन स्वीकार लिया। सब लोग केवली भगवान को नमस्कार कर अपने-अपने स्थान पर चले गये।

राम ने वंशगिरी पर हजारों प्रतिमायें बनवायी अत: रामगिरी

वंशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ ने केवली भगवान के मुख से श्रीराम का चरमशरीरी तथा मोक्षगामी होना सुनकर उन्हें प्रणाम किया और अपने नगर

चलने की प्रार्थना की । परन्तु श्रीराम ने कुछ काल तक वहीं पर्वत पर ठहरने का निश्चय किया । अतएव राजा सुरप्रभ ने उनके निवास की वहीं व्यवस्था कर दी । वंशगिरि पर राम ने जिनेन्द्र भगवान की हजारों प्रतिमाएं बनवायी थी इसलिए वह पर्वत रामगिरि के नाम से प्रसिद्ध हो गया । एक दिन श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि, हमें इस पर्वत पर रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है अब हमें आगे के लिए विहार करना चाहिए । कर्णरवा नदी के उस पार दण्डक वन है, वहाँ भरत की आज्ञा का प्रवेश नहीं है । इसलिए वहाँ घर बनाकर रहेंगे । इस प्रकार मन्त्रणा कर दूसरे दिन श्रीराम, लक्ष्मण और सीता दण्डक वन की ओर निकल गये ।

दण्ड़क वन, दण्ड़क राजा, जटायु का भव

राम लक्ष्मण सीता के साथ धीरे धीरे दक्षिण की ओर गमन करते हुए गहन वन को पार करते हुए कर्णरवा नदी के तट पर आये और उस मनोहर स्थान पर ठहर गये । लक्ष्मण ने नाना प्रकार की मिट्टी, बाँस तथा पत्तों से सब प्रकार के बरतन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया । सीता ने वन के सुगन्धित धान और फलों से स्वादिष्ट भोजन बनाया । श्रीराम सत्पात्र की प्रतीक्षा में अपनी कुटिया के द्वार पर खड़े थे कि, सीता ने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति नाम के दो मुनि देखे । ये मुनि तीन ज्ञान के धारी, आकाश में विहार करने वाले और मासोपवासी थे । श्रीराम ने सीतासहित नवधा भक्ति से उन मुनिराजों को आहार दिया । उसके प्रभाव से देवों द्वारा पंचाश्चर्यवृष्टि की गई ।

वन के इसी स्थान में एक वृक्ष के अग्रभाग पर एक गृध्र पक्षी बैठा था । अतिशयपूर्ण दोनों मुनिराजों को देखकर उसे अपने पूर्व भव स्मृत हो उठे । वह अपनी वर्तमान अवस्था को धिक्कारने लगा और परम शोक को प्राप्त हुआ । महामुनियों के दर्शन से अत्यंत हर्षित, अश्रुपूर्ण नेत्रों से सहित वह गृध्र पक्षी, वृक्ष पर से नीचे आया और बड़े उत्साह से मुनिराज के चरणोदक को पीने लगा । चरणोदक के प्रभाव से उसका शरीर उसी समय रत्नराशि के समान तेज

से व्याप्त हो गया। उसके दोनों पंख सुवर्ण के समान हो गये, पैर नीलमणि के समान दिखने लगे, चोंच मूँगा के समान दिखने लगी। वह अपने सुन्दर शरीर को देखकर अत्यंत प्रसन्न होकर दोनों मुनिराजों की प्रदक्षिणा देता हुआ नृत्य करने लगा। पश्चात् मुनिराजों के चरणों में प्रणाम कर सुख से बैठ गया। तब श्रीराम ने मुनिराज से पूछा कि, हे भगवन्! इस अति विरूप मांसाहारी गृध्र ने क्षण मात्र में ही सुवर्ण तथा रत्नों के समान कान्तिवान होकर आप के समीप शान्त रूप कैसे धारण कर लिया? सुगुप्ति मुनिराज बोले कि हे राजन्! पहले यहाँ एक बहुत सुन्दर देश था। इस देश में कर्णकुण्डल नाम का मनोहर नगर था। उस नगर का स्वामी इस गृध्र का पूर्वजन्म का जीव राजा दण्डक था। वह महाभिमानी और दुष्ट था। राजा दण्डक की रानी परिव्राजकों की भक्त थी। राजा दण्डक रानी के वशीभूत था। एक बार राजा दण्डक वन में गया। उसने वहाँ ध्यानारूढ़ एक मुनिराज को देखा और उनके गले में एक मरा हुआ साँप डलवा दिया। मुनिराज उपसर्ग सहन करते हुए खड़े रहे। कितने दिनों बाद राजा पुन: उसी मार्ग से निकला। उसी समय एक मनुष्य मुनिराज के गले से सर्प अलग कर रहा था। राजा ने उससे पूछा कि, 'यह क्या है?' उस मनुष्य ने कहा कि, हे राजन्! किसी नरकगामी ने ध्यानस्थ मुनि के गले में सर्प डाला था, जिसे मैंने अभी-अभी अलग किया है। मुनिराज की परम शान्त मुद्रा देखकर राजा का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने मुनिराज से क्षमा मांगी और अपने राजमहल में वापिस चला गया।

रानी और परिव्राजकों के अधिपति को राजा दण्डक के इस परिवर्तन का पता चला तो उन्होंने मायाचार से एक उपाय सोचा। रानी ने अपने परिव्राजक गुरु से कहा कि, तुम दिगम्बर वेष धारण कर के महल में आकर मुझ से कुचेष्टा करना। परिव्राजक गुरु ने ऐसा ही किया। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने समस्त मुनियों को घानी में पेलने की आज्ञा दे दी। जिसके फलस्वरूप सभी मुनिराज मृत्यु को प्राप्त हो गये। उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरी में आ रहे थे। उन्हें एक दयालु व्यक्ति ने

यह कहकर रोका कि, हे निर्ग्रंथ मुनिराज! तुम इस नगरी में मत जाओ, नहीं तो घानी में पेल दिये जाओगे । शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ । राजा ने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रंथ मुनियों को घानी में पिलवा दिया है ।

समस्त संघ की मृत्यु का समाचार सुनकर उन मुनिराज को बहुत क्रोध आ गया । उन्होंने मुख से 'हा' शब्द का उच्चारण किया; उसी के साथ उनके मुख से धुँआ सहित भयंकर अग्नि निकली जिससे समस्त नगरी जल गयी । बहुत समय बीत जाने के बाद मुनिराजों के पुनरागमन से यहाँ की भूमि सुन्दरता को प्राप्त हुई है । यहाँ वृक्ष, पर्वत और नदियाँ दिखाई देने लगी हैं । राजा दण्डक बहुत समय तक संसार में भ्रमण करता हुआ पूर्व प्रीति से इस वन में गृध्र पक्षी हुआ है । यह सारा वृत्तान्त गृध्र पक्षी भी सुन रहा था । तब मुनिराज ने उसे सम्बोधन करते हुए कहा कि, हे भव्य! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत । व्रत ग्रहण करो । साधुओं की भक्ति में तत्पर होओ । पापाचार का त्याग करो । मुनिराज के इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षी ने बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्द का उच्चारण कर श्रावक के व्रतों को धारण किया । सीता ने उसे अपने हाथों से सहलाया । तब मुनिराज ने उनसे कहा कि शान्त चित्त को धारण करने वाले इस पक्षी की रक्षा करना आपका कर्तव्य है । वन में क्रूर हिंसक प्राणी हैं अतएव इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की तुम रक्षा करो । इस प्रकार उन्हें समझाकर दोनों मुनिराज आकाश मार्ग से विहार कर गये।

सीता उसी दिन से उस गृध्र पक्षी का पालन पोषण करने लगी । वह उसे धर्म कथा सुनाती थी । वह पक्षी उनको छोड़कर कहीं नहीं जाता था । इसके शरीर पर सुवर्ण के समान जटाएँ थी इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नाम से बुलाते थे ।

श्रीराम अपनी इच्छानुसार दण्डक वन में भिन्न-भिन्न स्थानों में लक्ष्मण एवं सीतासहित प्राकृतिक सुषमा का अवलोकन करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे । एक दिन श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि, हे भाई! यहाँ स्वादिष्ट फलों से युक्त नाना प्रकार के वृक्ष हैं, स्वच्छ जल से भरी नदियाँ हैं, क्रीड़ा करने के लिए

अनेक योग्य स्थान हैं । हम लोग इस दण्डक पर्वत के समीप अत्यंत मनोहर नगर बनायें और वहाँ निवास करें । तुम शीघ्र ही शोक से संतप्त अपनी माताओं को, अपना हित करने वाले समस्त परिकर एवं परिवार को यहाँ ले आओ । फिर कुछ विचार कर श्रीराम कहते हैं कि नहीं, नहीं तुम यहीं ठहरो, सीता और जटायु की देखभाल करो, मैं स्वयं ही उन्हें लेने वहाँ जाऊँगा । परन्तु अब तो वर्षा ऋतु आ गई है । इस ऋतु में विहार करना योग्य नहीं है, इसलिए अभी कुछ काल तक यहीं ठहर जाना योग्य है ।

लक्ष्मण को सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति और शंभुकुमार की मृत्यु

धीरे–धीरे वर्षा ऋतु समाप्त हो गई, शरद ऋतु आ गई । वन की शोभा और भी बढ़ गई । शरद ऋतु की निर्मल चांदनी आकाश में छिटकने लगी । एक दिन श्रीराम से आज्ञा लेकर लक्ष्मण वन की शोभा देखने चले गये । एकाएक उन्होंने हवा के झोंके से आयी हुई दिव्य सुगन्ध का अनुभव किया । उनके मन में सहज ही जिज्ञासा हुई कि, यह मनमोहक सुगंध किस पदार्थ की है और कहाँ से आ रही है? इसलिए लक्ष्मण जिस मार्ग से सुगंध आ रही थी उसी मार्ग की ओर चल पड़े । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि, वह सुगंध बाँस के एक सघन बीड़े से आ रही थी । लक्ष्मण को उस बाँस की बीड़े में एक खड्ग दिखाई दिया । उस खड्ग की एक हजार देव पूजा करते थे । उस खड्ग की स्वाभाविक उत्तम गंध थी और वह दिव्यमालाओं से अलंकृत था । लक्ष्मण ने नि:शंक होकर वह खड्ग ले लिया । खड्गधारी लक्ष्मण को देखकर वहाँ सब देवताओं ने 'आप हमारे स्वामी हो ।' यह कहकर उसको नमस्कार किया और पूजा भी की । खड्ग की तीक्ष्णता की परख करने के लिए लक्ष्मण ने उसी बाँस की बीड़े को काट दिया । उस बाँस के बीड़े में रावण की बहन चन्द्रनखा का पुत्र शम्बुक सूर्यहास खड्ग प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष चार दिन से साधना कर रहा था । तेजधार वाले उस खड्ग से बाँस के बीड़े के साथ साथ उसमें बैठे शम्बुक के भी दो टुकड़े हो गए । तलवार पर लगे खून को देखकर लक्ष्मण को अपनी

गलती का अहसास हुआ। इस साधना के पूर्ण होने तक शम्बुक ने एक अन्न का ही आहार लेने का नियम किया था। शम्बुक को आराधना करते हुए बारह वर्ष पूर्ण हो चुके थे। सूर्यहास खड्ग भी प्रकट हो गया था। नियम ऐसा था कि, यदि आराधक सात दिन के भीतर अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त न करे, तो वह साधक को ही मार डालता है। शम्बुक की माता चन्द्रनखा प्रतिदिन पुत्र के स्नेह से उसे बार-बार देखने जाती थी। उसने देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्ग को भी देखा था और घर लौटने पर अपने पति खरदूषण को खड्ग के प्रकट होने का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया था। जिससे समस्त परिवार को आनन्द हुआ था।

चन्द्रनखा का मायाचार

लक्ष्मण खड्ग लेकर श्रीराम के पास चले गये और उन्हें खड्ग के प्राप्त होने का समस्त वृत्तान्त कह दिया। राम ने लक्ष्मण को गले से लगाकर कहा कि लक्ष्मण! तुमसे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया है। इधर जब शम्बुक की माता चन्द्रनखा पुत्र को देखने उधर आयी तो बाँस के बीड़े को कटा देखकर मन में सोचने लगी की, शम्बुक ने यह कार्य अच्छा नहीं किया, जो उसने विद्या सिद्धि के सुन्दर स्थान बाँस के बीड़े को काट डाला। न मालूम अब कहाँ चला गया है? इधर-उधर देखने पर बाँसों के ढ़ेर में उसने पुत्र का धड़ देखा। पुत्र की ऐसी अवस्था को देख वह मूर्च्छित हो गई। सचेत होने पर अत्यंत करुणाजनक विलाप करने लगी। वह हाथ में पुत्र का सिर उठाकर कहने लगी कि, हाय पुत्र! जिस प्रकार तुझे विद्या सिद्धि करते हुए बारह वर्ष और चार दिन व्यतीत हुए थे, वैसे ही तीन दिन और क्यों नहीं व्यतीत हुए? हा! किस दुष्ट ने मेरी गोद सूनी कर अपना मनोरथ पूर्ण किया है। फिर प्रतिशोध की भावना से उन्मत्त होकर वन में शत्रु की खोज करने लगी। वन में शत्रु को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चन्द्रनखा वहाँ पहुँच गई, जहाँ सीता सहित श्रीराम एवं लक्ष्मण निवास कर रहे थे। श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर वह उन पर मोहित हो गई। उसका पुत्र शोक दूर हो गया। वह मन में विचारने लगी कि, इन दोनों पुरुषों में से जो भी मुझे स्वीकार

कर लेगा मैं उसी के साथ काम सेवन करूँगी । ऐसा विचार कर वह पुन्नाग वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगी । दयालु चित्त सीता उसे रोते हुए देख कर उसके पास गई एवं सान्त्वना देकर उसे राम के पास ले गई । जब श्रीराम ने उसका परिचय पूछा, तब वह कहने लगी कि, हे पुरुषोत्तम! बाल्यावस्था में मेरी माता मर गयी और उसके शोक में पिता ने भी प्राण त्याग दिये । मैं तभी से अकेली इस गहन वन में भटकती फिर रही हूँ । आज तक किसी वन्य प्राणी ने भी मेरा भक्षण नहीं किया है । आज मेरे भाग्योदय के कारण ही आप का दर्शन हुआ है । आप से मेरी एक विनती यही है कि, मेरे देह त्याग के पूर्व आप मुझे स्वीकार करें । राम लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरे को देखते हुए चुप रह गये । जब चन्द्रनखा ने देखा कि, उसकी विनती व्यर्थ गई, तब वह दीर्घ श्वास लेकर बोली– ''मैं जाती हूँ ।'' तब राम आदि ने उत्तर दिया– 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ।' उसके जाते ही उसकी अकुलीनता से प्रेरित राम–लक्ष्मण सीता के साथ आश्चर्य से चकित हो हँसने लगे ।

श्रीराम और लक्ष्मण के द्वारा अस्वीकार करने पर चन्द्रनखा का कामानुराग विलीन हो गया । फिर से वह पुत्र के लिए शोक करने लगी । वह धूल धूसरित, क्षत विक्षत शरीर को लेकर फटे वस्त्र बिखरे केश अत्यन्त करुणाजनक विलाप करती हुई अपने पति खरदूषण के पास आई । चन्द्रनखा की ऐसी हालत देखकर खरदूषण ने उससे कहा कि, हे प्रिये! शीघ्र ही कहो, किस दुष्ट ने तुम्हारी ऐसी अवस्था की है? चन्द्रनखा ने कहा कि, हे नाथ! मैं पुत्र शम्बुक को देखने वन में गई थी । वहाँ मैंने बाँस के बीड़े में शम्बुक का मस्तक कटा हुआ पड़ा देखा । मेरे सुपुत्र को किसी ने मारकर खड्ग भी ले लिया है । मैं पुत्र के मस्तक को गोद में रखकर विलाप कर रही थी कि शम्बूक का वध करने वाले उस दुष्ट ने मुझे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया और मेरे साथ कुचेष्टा करने की इच्छा की । पूर्व पुण्य के बल से बड़ी कठिनाई से मैं अपना शील बचाकर आपके पास आ पायी हूँ । मेरा भ्राता रावण तीन खण्ड का स्वामी और विद्याधरों का अधिपति है, महापराक्रमी आप मेरे पति हो । आपके रहते हुए मेरी यह दुर्गति

हो गई है ।

खरदूषण लक्ष्मण का युद्ध

यह सुनकर खरदूषण क्रोधित हो पुत्र शम्बूक के मृतक शरीर के पास गया । पुत्र को सचमुच मरा देख बहुत दुःखी हुआ । वापिस अपने महल में जाकर मंत्रियों के साथ मंत्रणा की कि, पुत्र के वधकर्ता को मारना ही उचित है और इस बात की खबर शीघ्र ही रावण को भी दी जायें । रावण का उत्तर आने के पूर्व ही, पुत्र शोक से विह्वल खरदूषण विशाल सेना सहित दण्डक वन में जा पहुँचा । बड़ी भारी सेना को आता देख सीता घबरा गई । राम ने सीता को धैर्य बँधाया और दोनों भाई सावधान हो गये । सेना को निकट आते देख श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया । यह देखकर लक्ष्मण ने कहा कि हे देव! मेरे रहते हुए आप कष्ट न करें । आप सीता की रक्षा कीजिए और मैं शत्रु की ओर जाता हूँ । यदि मुझ पर आपत्ति आयेगी तो मेरे द्वारा किये गए सिंहनाद को समझकर सहायता के लिए आ जाना । इतना कहकर लक्ष्मण युद्ध के लिए तत्पर हो शत्रु के सन्मुख खड़े हो गये । एक ओर लक्ष्मण एवं दूसरी ओर खरदूषण सहित उसकी समस्त सेना में भीषण युद्ध होने लगा ।

रावण द्वारा कपटपूर्वक सिंहनाद और सीतापहरण

खरदूषण का सन्देश पाकर क्रोधित होता हुआ रावण पुष्पक विमान में बैठकर आ रहा था सो बीचमें ही मार्ग में एक पर्णकुटी में राम सीता बैठे थे । लक्ष्मी के समान सीता को देखा और विचार करने लगा कि, इसके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है इसलिए जब तक कोई मेरा यहाँ आना जान न ले तब तक आज ही मैं इस अनुपम सुन्दरी का अपहरण करता हूँ । यद्यपि इस कार्य को बलपूर्वक सिद्ध करने की शक्ति मुझ में विद्यमान है; किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि, छिपाने के योग्य है । इसलिए रावण ने अवलोकिनी विद्या के द्वारा सीता के हरण करने का वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण और सीता के नाम, कुल आदि सब का उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया । इसके बाद रावण ने यह भी जान

लिया कि, संकट में पड़ने पर लक्ष्मण 'सिंहनाद' करने की कह कर युद्ध में गया है। रावण ने सोचा 'मैं ही सिंहनाद करता हूँ, राम यहाँ से दूर चला जायेगा और मैं सीता को हरण करके लंका ले जाऊँगा।' महाबली खरदूषण तो इन दोनों भाइयों को क्षणभर में मार डालेगा। ऐसा निश्चय कर रावण ने सिंहनाद किया- हे राम! हे राम!

उस सिंहनाद को सुनकर राम ने समझा कि, यह लक्ष्मण ने ही किया है इसलिए सीता को सान्त्वना देकर राम ने सीता को अत्यधिक मालाओं से अच्छी तरह ढ़क दिया। राम ने जटायु को सीता की रक्षा का भार सौंप कर धनुष बाण लेकर शीघ्रता से लक्ष्मण की सहायता के लिए युद्ध क्षेत्र की ओर गमन किया। एकान्त देखकर रावण अपने विमान से नीचे उतरा एवं सीता को अपने बाहुपाश में पकड़ कर उसे पुष्पक विमान में चढ़ाने का प्रयत्न करने लगा। सीता को विवश तथा बलपूर्वक ले जाते देखकर स्वामी भक्त जटायु ने अपने तीक्ष्ण नख तथा चोंच के प्रहार से रावण के वक्षस्थल को क्षत विक्षत कर उसे रक्तरंजित कर दिया। जटायु को अपने कार्य में बाधक समझकर रावण ने हस्ततल के प्रहार से जटायु को मारकर पृथ्वीतल पर नीचे गिरा दिया। कठोर प्रहार के कारण जटायु कें-कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया। रावण ने तीव्रता से लंका की ओर प्रस्थान किया। सीता अपने आपको अपहृत जानकर शोक से विलाप करने लगी। इधर युद्ध के मैदान में राम को प्रविष्ट देख लक्ष्मण कहते हैं- हाय देव! बड़े दुःख की बात है कि, आप विघ्नों से व्याप्त वन में सीता को अकेली छोड़ इस भूमि में किसलिए आये? राम ने कहा- मैं तुम्हारा शब्द सुनकर ही यहाँ आया हूँ। इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि, आप शीघ्र ही चले जाइए, आपने यह अच्छा नहीं किया। लक्ष्मण को विजय का शुभाशीर्वाद देकर शंका से युक्त जैसे ही श्रीराम वापस लौटकर अपनी कुटिया में आते हैं तो वहाँ सीता को नहीं देखकर, शोक के कारण मूर्च्छित हो जाते हैं। फिर उठकर जोर-जोर से हे सीते! हे सीते! पुकारते हुए विलाप करने लगते हैं। दुःखी होकर वृक्ष, नदी, पशु-पक्षी सबसे सीता का पता पूछते हैं। भला मूक प्राणी,

वातावरण, पशु-पक्षी श्रीराम को क्या उत्तर दे सकते थे? श्रीराम कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुष को चढ़ाकर टंकार का विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे, बार-बार अत्यंत तीक्ष्ण सिंहनाद किया। फिर मन में सोचते हैं- कहीं सिंह आदि हिंसक प्राणी ने उसे खा तो नहीं लिया होगा? नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता। हाय-हाय! यह मैंने क्या किया? खोटे मायाजाल में, सिंहनाद की आवाज में फंस गया और किसी दुष्ट ने सीता का हरण कर लिया। इस प्रकार के विचार में मग्न, चलते चलते श्रीराम ने धीरे-धीरे कें-कें करते हुए घायल हुए मरणोन्मुख जटायु को देखा। राम ने अत्यंत दुःखित होकर जटायु को णमोकार मंत्र सुनाया। जटायु शांत भाव से समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हो गया।

इस प्रकार पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म के उदय से महापुरुषों को भी अत्यंत कठिन दुःख भोगना पड़ता है। अतः निरन्तर जिनेन्द्र कथित धर्म में बुद्धि लगानी चाहिए।

इधर खरदूषण के साथ लक्ष्मण का युद्ध शुरू था तभी इसी बीच में राजा चंद्रोदर का पुत्र विराधित जो खरदूषण का शत्रु था, अपने मंत्रियों और शूर वीरों से सुसज्जित हो वहाँ आया। उसने युद्ध में लक्ष्मण की सहायता की। लक्ष्मण ने सूर्यहास खड्ग से खरदूषण को मार गिराया। खरदूषण का दूषण नाम का सेनापति विराधित को रथरहित करने के लिए उद्युक्त हुआ उसी समय लक्ष्मण ने उसे भी मृत्यु को प्राप्त करा दिया।

राम का शोक

इसके पश्चात् लक्ष्मण श्रीराम के पास जाते हैं। वहाँ लक्ष्मण ने सीतारहित राम को मूर्च्छित देखा। उन्होंने श्रीराम से कहा- हे नाथ! उठो और कहो सीता कहाँ गयी है? राम ने कहा- हे भद्र! मैं नहीं जानता हूँ कि, सीता को किसी ने हर लिया है या सिंह ने खा लिया है। मैंने इस वन में उसे बहुत खोजा पर वह नहीं मिली। जिनका शरीर क्रोध से व्याप्त था ऐसे लक्ष्मण ने कहा

कि, हे देव! जान पड़ता है जानकी किसी दैत्य के द्वारा हरी गयी है मैं अवश्य ही उन्हें ढूँढकर लाऊँगा । आप बिल्कुल भी चिंता न करें । इस प्रकार वचनों से सान्त्वना देकर लक्ष्मण ने श्रीराम का मुख धुलाया और अपने उपकारी विराधित विद्याधर के बारे में श्रीराम को बताते हैं । इसी बीच बड़ी भारी सेना के साथ विराधित वहाँ आ जाता है । वह राम की स्तुति करता है और कहता है कि, हे देव! मेरे योग्य कार्य के विषय में मुझे आज्ञा दीजिये । इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण कहते हैं कि, हे सज्जन! सुनो, किसी दुराचारी ने मेरे अग्रज-श्रीराम की पत्नी सीता को हर लिया है, सो उससे रहित राम शोक के वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय ही अग्नि में प्रवेश करूँगा । क्योंकि मेरे प्राण इनके प्राणों के साथ मजबूती से बँधे हैं । इसलिए इस विषय में कुछ उपाय करना चाहिए । यह सुन विराधित ने अपने मंत्रियों को सीता का पता लगाने का आदेश दिया । अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित वे विद्याधर सीता को खोजने दशों दिशा में गये ।

अर्कजटी के पुत्र रत्नजटी विद्याधर ने दूर से रोने का शब्द सुना । जिस दिशा से रोने का शब्द आ रहा था उसी दिशा में जाकर समुद्र के ऊपर आकाश में 'हा राम, हा कुमार लक्ष्मण!' इस प्रकार का शब्द सुना । जब वह उस स्थान पर गया तो उसने विमान में स्थित विलाप करती हुई सीता को देखा । क्रोध से युक्त रत्नजटी, रावण से युद्ध करने के लिए उद्युक्त हुआ । परन्तु बलवान रावण ने आकाश में स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ।

भयभीत रत्नजटी किसी मंत्र के प्रभाव से समुद्र जल के मध्य में स्थित कम्बु नामक द्वीप में पहुँचा । जो अन्य विद्याधर सीता की खोज में गये थे वे राम के समीप पहुँचे । उनका निस्तेज मुख देखकर राम ने कहा कि, हे धन्य विद्याधरों! आपने हमारे लिए बहुत प्रयत्न किया है, पर मेरा भाग्य ही विपरीत है । अब आप अपने घर जाइये ऐसा कहकर राम विलाप करने लगे, तब सान्त्वना देते हुए विराधित ने राम से कहा कि, हे देव! विद्याधरों के राजा खरदूषण के मारे जाने की कथा सबको पता चल गयी होगी इसलिए उसके मित्र

और कुटुम्बीजन क्षोभ को प्राप्त होंगे । इसलिए उठिए, अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थान में चले । यह अलंकारपुर पृथ्वी के नीचे है और हम लोगों की वंश परम्परा से चला आया है उसी दुर्गम स्थान में स्थित रहकर देवी सीता का समाचार प्राप्त कर यथायोग्य कार्य करेंगे । चार चतुर घोड़ों से जुते रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मण ने वहाँ से प्रस्थान किया । नगर के भीतर प्रवेश कर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषण के भवन में निवास करने लगे । वृक्षों के समूह से सुशोभित उस भवन के एकांत स्थान में श्रीराम ने अनुपम मंदिर देखा । उस मंदिर में रत्न तथा पुष्पों से जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमा का दर्शन कर वे क्षणभर के लिए सभी संताप को भूलकर परम धैर्य को प्राप्त हुये ।

रावण द्वारा सीता को वश करने का प्रयास

इधर विमान के ऊँचे शिखर पर बैठा, इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण बड़ी दीनता के साथ नाना प्रकार के सैकड़ों प्रिय वचन बोलता हुआ सीता को रिझाने का प्रयास करने लगा । वह कहता है कि, हे देवी! प्रसन्न होओ और इस दास के मुख पर एक बार चक्षु डालो । हे सुमुखि! यदि आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो अपने चरण कमल से ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो । इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठी हुई सीता ने रावण से कहा कि, हे नीच पुरुष! तू इस प्रकार की यह निन्दनीय वाणी क्यों बोल रहा है? तेरी यह दुष्ट चेष्टा पापरूप है, आयु को कम करने वाली है, नरक का कारण है, अपकीर्ति को करने वाली है । परस्त्री की इच्छा करता हुआ तू महा दुःख को प्राप्त होगा । तुझे धर्म का उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार कि अन्धे के सामने नृत्य के हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है । अरे नीच! परस्त्री की इच्छा मात्र से तू बहुत भारी पाप बांधकर नरक में जायेगा और वहाँ कष्टकारी अवस्था को प्राप्त होगा । इस प्रकार यद्यपि सीता ने कठोर अक्षरों से भरी वाणी के द्वारा रावण का तिरस्कार किया तो भी काम से आहत चित्त होने के कारण

उसका प्रेम सीता पर से दूर नहीं हुआ।

वहाँ खरदूषण का युद्ध समाप्त होने पर भी स्वामी रावण का दर्शन न होने से परम स्नेह से भरे शुक, हस्त, प्रहस्त आदि मंत्री परम उद्वेग को प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताका से सुशोभित रावण का विमान आता देखा, तब वे हर्षित होकर उसके पास गये। उन्होंने दिव्य वस्तुओं की भेंट देकर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावण की अगवानी की तो भी भृत्यों की सम्पदाओं से सीता वशीभूत नहीं हुई। यद्यपि सीता बार-बार रावण का तिरस्कार करती थी तो भी वह अपनी हस्त अंजलि शिर पर धारण कर सीता को बार-बार नमस्कार करता था।

इन्द्र के समान वैभव को धारण करने वाले मंत्रियों ने रावण को घेर लिया और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धिवान होओ' इत्यादि कर्णप्रिय वचनों से उसकी स्तुति करने लगे। ऐसे इन्द्रतुल्य रावण ने लंका में प्रवेश किया। उस समय सीता ने विचार किया कि, यह विद्याधरों का राजा ही जहाँ अमर्यादा का आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है? फिर भी मेरा यह नियम है कि, जब तक श्रीराम का कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तब तक मेरा आहार, पानी का त्याग है। तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशा में विद्यमान स्वर्ग के समान सुन्दर देवारण्य उद्यान में एक जगह सीता को ठहराकर रावण अपने महल में चला गया। इतने में ही खरदूषण के मरण का समाचार पाकर रावण की अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोक के कारण रावण के सामने विलाप करने लगी। चन्द्रनखा भी भाई रावण के चरणों में जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर पति और पुत्र के मरण का विलाप करने लगी। तब रावण ने उससे कहा कि, हे वत्से! तेरा रोना व्यर्थ है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, यह जगत प्रसिद्ध है। यदि ऐसा नहीं है तो क्षुद्रशक्ति के धारण भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ? हे वत्से! जिसने युद्ध में खरदूषण को मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओं को मैं मारूँगा। इस प्रकार बहन को आश्वासन तथा जिनेन्द्र देव की

अर्चा का उपदेश देकर रावण अपने निवास गृह में चला गया । उस समय वह उन्मत्त सिंह के समान तथा साँस भरते हुए सर्प के समान जान पड़ता था । पति को ऐसा देख, बड़े आदर से मंदोदरी ने रावण के पास जाकर इस शोक का कारण जानना चाहा ।

तब रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुख के भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे । उसने कहा कि, हे सुन्दरी! तुम मेरे प्राणों की स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है । यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो, हे देवि! क्रोध करना योग्य नहीं है और अनेक शपथों से नियम में लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए की तरह रावण ने कहा । जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टिस्वरूप सीता यदि मुझे पतिरूप से नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा । रावण की इस कष्टकर दशा को जानकर हँसती हुई मंदोदरी इस प्रकार बोली, हे नाथ! यह बड़ा आश्चर्य है कि, वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि, वह स्त्री पुण्यहीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है । अथवा समस्त संसार में एक वही परम श्रेष्ठ है जिसकी कि, तुम्हारे जैसा अभिमानी पुरुष दीनता से याचना कर रहा है । आप अपनी भुजाओं से बलपूर्वक उसका आलिंगन क्यों नहीं कर लेते हैं? इसके उत्तर में रावण ने कहा कि, हे देवि! मैंने अनंतवीर्य भगवान के समीप निर्ग्रंथ मुनियों की सभा में साक्षात् इस प्रकार कहा था कि, जब तक परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दु:खी होने पर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा । हे प्रिये! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि, मुझे देखकर कौन पतिव्रता मना करेगी । इसलिए हे देवि! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक तुम सीता को प्रसन्न करो; क्योंकि घर के भस्म हो जाने पर कूप खुदाने का श्रम व्यर्थ है ।

मन्दोदरी द्वारा सीता को वश करने का प्रयास

रावण को देख, जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मंदोदरी शीघ्र देवारण्य उद्यान में गयी । उसकी आज्ञा पाकर रावण की अठारह हजार स्त्रियाँ भी वैभव

के साथ उसके पीछे चली। मंदोदरी ने उदासचित्त सीता से कहा कि, हे सुन्दरि! हर्ष के स्थान पर विषाद क्यों कर रही हो? वह स्त्री तीनों लोकों में धन्य है जिसका की, पति रावण है। जो समस्त विद्याधरों का अधिपति है, जिसने इन्द्र को पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावण को तुम पतिरूप में क्यों नहीं चाहती हो? तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है, सो उसके लिए इतना दुःखी क्यों हो रही हो? अब प्रसन्न होओ और शीघ्र उठो। दशानन की कृपा से देवोपम सुखों को प्राप्त करो। अब तो राम-लक्ष्मण तेरी क्या सहायता कर सकते हैं। वे तो महाप्रतापी रावण की क्रोधाग्नि में भस्म हो जायेंगे।

मंदोदरी के मुख से ऐसे अनीतिपूर्ण वचन सुनकर अश्रुपात करती हुयी सीता बोली कि, हे वनिते! पतिव्रता स्त्री के मुख से ऐसे वचन शोभा नहीं देते। मेरे इस शरीर को तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो; परन्तु मैं अपने पति श्रीराम के सिवाय अन्य पुरुष को मन में भी नहीं ला सकती हूँ। मैं यहाँ आयी हुई तुम सब स्त्रियों से संक्षेप में इतना ही कहती हूँ कि, रावण चाहे इन्द्र के तुल्य भी क्यों न हो; परन्तु श्रीराम के सिवाय अन्य पुरुष मेरे स्वप्न में भी नहीं आ सकता। तुम जो चाहो सो करो। इसी बीच काम के संताप से दुःखी रावण स्वयं सीता के पास पहुँचा और बड़े आदर के साथ दयनीय वाणी में बोला कि हे सुंदरि! भय को प्राप्त मत होओ। मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो। बताओ कि, मैं तीन लोकों में वर्तमान में किस वस्तु से हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो। हे देवि! क्रोध और अभिमान छोड़ो और इन्द्राणी के समान दिव्य भोगों का सुख प्राप्त करो। सीता ने कहा- कुशील पुरुषों की सम्पदा केवल दुर्गंधी मल है और सुशील मनुष्यों की दरिद्रता भी आभूषण है। परस्त्री की आशा में तेरा यह जीवन व्यर्थ है। तब रावण ने क्रोध में आकर सीता को मायाजाल से डराने का कार्य शुरू किया। उसे देखकर सब रानियाँ भयभीत होकर भाग गयीं। रावण मदोन्मत्त हाथियों द्वारा, विकराल व्याघ्रों द्वारा, बड़े-

बड़े सर्पों द्वारा, अनेक चंचल वानरों के द्वारा सीता को डराने की कोशिश करने लगा; परन्तु वह रावण की शरण में नहीं गयी। ऐसी भयानक अवस्था में ही पूरी रात्रि व्यतीत हो गयी। सीता भगवान का नाम स्मरण करने में दृढ़ रही। उसे अपनी आत्मश्रद्धा पर दृढ़ निश्चय था।

बिभीषण का दशानन को समझाना

सूर्योदय होने के पश्चात् विभीषण, खरदूषण के शोक के कारण रावण के पास जा रहा था तब विभीषण ने शोकाकुल रोती हुई स्त्री का हृदय विदारक शब्द सुना। वह उसी दिशा में गया और सीता के पास जाकर उसके रोने का कारण पूछा। सीता ने अश्रुपूर्ण मुख से टूटे-फूटे अक्षरों में कहा- हे देव! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है? जो इस प्रकार स्नेह से पूछ रहा है! मैं राजा जनक की पुत्री, भामण्डल की बहन, अयोध्या के राजकुमार राम की पत्नी और राजा दशरथ की पुत्रवधू हूँ। लक्ष्मण मेरे देवरजी हैं। एक दिन लक्ष्मण युद्ध में गये थे, उनकी सहायता के लिए श्रीराम भी गए। तब मुझे अकेली देखकर दुष्ट रावण हरण कर यहाँ ले आया है। मेरे बिना श्रीराम प्राण त्याग देंगे; अत: शीघ्र ही मुझे वापस भेजने की कृपा करें। इस प्रकार सीता के शब्द सुनकर विभीषण का चित्त कुपित हो उठा। उसने रावण के पास जाकर कहा कि, हे भाई! सर्प के विषरूपी, अग्नि के समान परनारी को मोहवश कहाँ से ले आये हो? आप तो मर्यादा को जानने वाले विद्याधरों के अधिपति हो, फिर भी इहलोक और परलोक में निंदा और दु:ख के कारण इस परस्त्री को लाये हो। यह परस्त्री नरक-दुर्गति का कारण है।

यह सुनकार रावण ने कहा कि, हे भाई! इस पृथ्वीतल पर सभी वस्तुओं का मैं स्वामी हूँ। अत: यह मेरे लिए परकीय वस्तु कैसे हुई? अवसर पाकर महा नीतिज्ञ मारीचि बोला कि, हे दशानन! लोक का सब वृत्तान्त जानते हुए भी आपने ऐसा कार्य क्यों किया? यथार्थ में यह सब मोह की लीला है। इस प्रकार जब महा बुद्धिमान मारीचि जब निरपेक्ष भाव से यह सब कह रहा था,

तब बीच में ही सभा में क्षोभ करता हुआ रावण उठकर खड़ा हो गया और त्रिलोकमण्डन हाथी पर सवार हो गया। वह शोक से व्याकुल सीता के पास गया। उसने सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर, सीता का मन मोहने के लिए बड़े वैभव के साथ नगरी में प्रवेश किया। वह स्वर्ण निर्मित, तोरणों से अलंकृत लंका नगरी को दिखाने लगा; परन्तु सीता उसे तृण से भी अधिक तुच्छ समझती थी। स्वभाव से ही निर्मल सीता के मन को रावण लोभ प्राप्त कराने में समर्थ न हो सका। बाद में वह सीता को 'प्रमद' नामक वन में ले गया। उसमें लम्बे-लम्बे सात सघन वन नंदनवन से भी अधिक सुंदर थे। रावण ने सीता को प्रमद वन में उतारा। उस प्रमद वन के अशोक वृक्ष से आच्छादित एक देश में बैठी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् लक्ष्मी हो। वहाँ रावण की आज्ञानुसार अनेक स्त्रियाँ संगीत, गीत, नाटक आदि विभिन्न कार्यों द्वारा सीता को प्रसन्न करने की चेष्टा करती थी; परन्तु सीता की कहीं पर बाह्य दृष्टि नहीं थी। उसका मन तिल मात्र भी विचलित नहीं होता था। वह अपने में दृढ़ थी। सीता को अपने अनुकूल नहीं कर सकने के कारण रावण दु:खरूपी सागर में डूब गया। रावण की ऐसी दशा देखकर संभिन्नमति मंत्री ने सबसे कहा कि, लंका में शत्रु पक्ष का कोई भी व्यक्ति न आ सके इसका उपाय करना चाहिए। तब विभीषण ने यन्त्र आदि के द्वारा लंका के कोट को अति दुर्गम कर दिया; तथा नाना प्रकार की विद्याओं के द्वारा लंका को चारों ओर से सुरक्षित कर दिया।

राम और सुग्रीव का मिलन

सुग्रीव किष्किन्धापुर का स्वामी था। साहसगति नामक एक विद्याधर माया के बल से सुग्रीव का रूप धरकर उसके महल में प्रविष्ट हो गया; तथा सुग्रीव को उसके महल से बलपूर्वक निष्कासित कर दिया। असली सुग्रीव राज्य तथा स्त्री के विरह से अत्यंत दु:खी होकर इधर उधर भटकता हुआ उसी जगह आ पहुँचा, जहाँ खरदूषण और लक्ष्मण का युद्ध हुआ था। वहाँ आकर

उसने देखा कि, कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं तो कहीं शूरवीर योद्धा मृत तथा घायल अवस्था में पड़े हैं। 'यह क्या है?' इस प्रकार पूछने पर किसी ने उसे बताया कि, सीता का हरण हो चुका है और खरदूषण मारा गया है।

खरदूषण की मृत्यु से सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ। वह विचारने लगा कि, मैंने सोचा था कि, खरदूषण की मदद से मैं पुनः अपनी स्त्री को प्राप्त करूँगा; परन्तु अब वह नहीं रहा। उसने धैर्य धारण किया और हनुमान के निकट गया। हनुमान उसकी सहायता के लिए किष्किन्धापुर आए; परन्तु उसकी तथा राजमहल में निवास करने वाले सुग्रीव दोनों की एक सी आकृति देखकर असली तथा कृत्रिम सुग्रीव के निर्णय में वह असमर्थ रहे। असफल होकर हनुमान अपने नगर को लौट गये। सुग्रीव अत्यंत दुःखी होकर मन में विचारने लगा कि, यदि मैं संकट के निवारण के लिए रावण के समीप जाता हूँ, तो सम्भवतः वह हम दोनों का एक सा रूप देखकर मुझ दीन को ही कृत्रिम सुग्रीव समझकर वध कर डाले अथवा हम दोनों के प्राण हरण कर मेरी स्त्री का अपहरण कर ले, क्योंकि कामान्ध प्राणियों का कोई विश्वास नहीं। अतएव जिसने खरदूषण जैसे महाबली का युद्ध में वध किया है, मैं उसी शूर वीर की शरण में जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा। राम को भी स्त्री का विरह हुआ है और मैं भी स्त्री के विरह से दुःखी हूँ, इसलिए एक समान दुःख होने से यह समय उनके पास जाने योग्य है; क्योंकि पृथ्वी पर समान अवस्था वाले मनुष्य ही पारस्परिक प्रीति को प्राप्त होते हैं! ऐसा विचारकर सुग्रीव ने विराधित के पास अपना एक दूत भेजा। विराधित दूत द्वारा सुग्रीव का संदेश प्राप्त होने पर अत्यंत प्रसन्न हुआ। सुग्रीव जैसे महापुरुष के साथ प्रीति सम्बन्ध स्थापित होता देखकर उसे अत्यंत आनंद हुआ। विराधित की स्वीकारोक्ति प्राप्त होने पर सुग्रीव विराधित से मिलने पाताल लंका (अलंकारपुर) गया। उसके साथ वादक मण्डली भी थी। वादित्रों की मधुर ध्वनि सुनकर लक्ष्मण ने विराधित से पूछा– हे भद्र! इस समय यह मधुर ध्वनि किसलिए हो रही है? तब विराधित

ने कहा कि, हे देव! यह महाबल से सहित, वानरवंशियों का स्वामी सुग्रीव प्रेम से युक्त हो आपके पास आया है। बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धापुर के स्वामी हैं। राजा सूर्यरज के पुत्र हैं। पृथ्वी पर प्रसिद्ध हैं। इनमें बालि नाम से जो प्रसिद्ध था, वह शील, शूरवीरता आदि गुणों से विख्यात था; तथा अभिमान के लिए मानो सुमेरू ही था, उसने रावण को नमस्कार नहीं किया था। बालि ने सर्व राज्यलक्ष्मी सुग्रीव के आधीन कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली थी। सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्री तथा अंग और अंगद नामक पुत्रों के साथ किष्किन्धापुर में निष्कण्टक राज्य करता है। उसकी विमल कीर्ति सब ओर फैली है। विराधित अभी इतना ही कह पाया था कि, सुग्रीव अपने मित्रों और विद्याधरों सहित वहाँ आ पहुँचा। राजा सुग्रीव भक्तिपूर्वक श्रीराम एवं लक्ष्मण से मिले।

राजा सुग्रीव के साथ आये हुए एक वृद्ध विद्याधर ने श्रीराम से निवेदन किया कि, हे देव! राजा सुग्रीव किष्किन्धापुर का स्वामी हैं। कुछ काल पूर्व कोई दुष्ट विद्याधर इनका राज्य तथा इनकी रानी सुतारा को हस्तगत करने की इच्छा से इनका रूप बनाकर महल में प्रविष्ट हो गया है। यह सुनकर श्रीराम मन में विचारने लगे कि, यह तो मुझ से भी अधिक दु:खी है; क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुँचा रहा है। यद्यपि इसके पास राज्य, वैभव सर्व प्रकारेण सम्पदा है; तथापि यह अपने शत्रु का निराकरण करने में पूर्णत: निरुपाय है।

लक्ष्मण की जिज्ञासा पर राजा सुग्रीव के चतुर मंत्री जाम्बूनद ने कृत्रिम सुग्रीव का वृत्तान्त सविस्तार सुनाकर कहा– यद्यपि सुतारा रानी ने कृत्रिम सुग्रीव को भली प्रकार पहचान लिया था; तथापि रानी सुतारा की बातों पर विश्वास करना अन्य मंत्रियों ने उचित नहीं समझा; क्योंकि उनका मत था कि, बालक, अतिवृद्ध, मद्यपायी, वेश्या व्यसनी और स्त्री इनके वचनों का विश्वास नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के शील की शुद्धि रखना अनिवार्य है। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि, जब तक सत्यासत्य का निर्णय न हो जाय, तब तक दोनों

सुग्रीव अन्त:पुर में प्रवेश न करें। अंग नाम का पुत्र पिता की भ्रान्ति से कृत्रिम बनावटी सुग्रीव के पास गया और अंगद नाम का पुत्र माता के वचनों के अनुरोध से असली सुग्रीव के पास गया। संशय के कारण सात अक्षौहिणी सेना एक सुग्रीव के पास गयी और उतनी ही सात अक्षौहिणी सेना कृत्रिम सुग्रीव के आधीन हुई। नगर के दक्षिण भाग में कृत्रिम सुग्रीव रखा गया तथा असली सुग्रीव को उत्तर भाग में रखा गया।

इधर बालि के पुत्र चन्द्ररश्मि ने संशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि, इन दोनों में से जो कोई भी सुतारा के महल में प्रवेश करेगा, उसे वह खड्ग से मार डालेगा। इस कारण राजा सुग्रीव सुतारा के महल में प्रवेश करने का साहस न कर सका। अत: आप उसकी सहायता कीजिये।

राम और सुग्रीव की प्रतिज्ञा

अत्यंत दयालुचित्त राम ने विचारा– हम दोनों एक समान दु:खी हैं। मुझे इसका उपकार करना चाहिए। यदि प्रत्युपकार में इसने मेरे लिए कुछ न किया, तो मैं निर्ग्रंथ मुनि हो जाऊँगा। इस प्रकार श्रीराम ने विराधित आदि के साथ मन्त्रणा कर सुग्रीव को बुलाकर उससे कहा कि, तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव हो या चाहे कृत्रिम सुग्रीव, मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मारकर तुम्हें सुतारा सहित तुम्हारा राज्य पुन: दिलवा दूँगा।

जब तुम्हारा कार्य हो जाय तब तुम मेरी सीता की खोज कर उसका समाचार बतला देना। राजा सुग्रीव ने नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो! मेरा कार्य होने के पश्चात् यदि मैं सात दिन के भीतर आपकी प्रिया का पता न करवा सका तो स्वयं अग्नि में प्रवेश करूँगा। राजा सुग्रीव के आशापूर्ण वचन सुनकर श्रीराम का मुखकमल खिल उठा। भगवान के जिनालय में जाकर दोनों धर्म मित्र हुए; तथा परस्पर विश्वासघात न करने की प्रतिज्ञा की।

राम द्वारा मायावी सुग्रीव साहसगति की मृत्यू

तदनन्तर राम लक्ष्मण सुग्रीव एवं अनेक शूरवीर सामंतो के साथ उत्तम रथ पर आरूढ़ हो किष्किन्धापुर की ओर चले। नगर के समीप पहुँचकर राजा

सुग्रीव ने युद्धार्थ कृत्रिम सुग्रीव के पास अपना एक दूत भेजा । कृत्रिम सुग्रीव तत्काल विशाल सेना सहित युद्ध के लिए सम्मुख आया । दोनों सुग्रीव में घोर युद्ध हुआ । अन्धकार होते-होते कृत्रिम सुग्रीव ने असली सुग्रीव को घायल कर मूर्च्छित कर दिया और उसे मृत समझकर अत्यंत प्रसन्न होता हुआ नगर को लौट गया । मूर्च्छा भंग होने पर असली सुग्रीव ने श्रीराम से कहा- हे प्रभो! आये हुए शत्रु को अपने पुनः नगर में क्यों लौट जाने दिया । तब राम ने कहा कि, हे मित्र! मैं तुम्हारा और उसका एक समान रूप देखकर संदेह में पड़ गया । मुझे भय हुआ कि, कहीं कृत्रिम सुग्रीव के स्थान पर मेरे हाथों तुम्हारा अहित न हो जाय, तुम तो मेरे परम मित्र हो ।

दूसरे दिन श्रीराम ने कृत्रिम सुग्रीव को युद्धार्थ पुनः बुलवाया । कुपित होकर वह पुनः सेनासहित युद्ध भूमि में आया । इस बार श्रीराम उसके सम्मुख गये । लक्ष्मण ने असली सुग्रीव को पकड़कर रखा, ताकि वह स्त्री के वैर के कारण शत्रु के सन्मुख पहुँचकर श्रीराम को संदेह में न डाल सके । श्रीराम को देखते ही कृत्रिम सुग्रीव की वैताली विद्या उसके शरीर से निकल गई । वैताली विद्या के चले जाने से वह अपने असली रूप (साहसगति विद्याधर) में प्रकट हो गया । यह सब देखकर कृत्रिम सुग्रीव की समस्त सेना असली सुग्रीव के पक्ष में हो गई । दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ और अंत में श्रीराम ने उसे प्राणरहित कर दिया ।

कृत्रिम सुग्रीव को मरा देख राजा सुग्रीव ने श्रीराम और लक्ष्मण की बहुत स्तुति की और उन्हें बड़ी धूमधाम से नगर में प्रविष्ट कराया । बड़ा भारी उत्सव किया । तथा अपनी तेरह कन्याओं का विवाह श्रीराम के साथ किया; परन्तु श्रीराम को सीता के अलावा अन्य कुछ नहीं सुहाता था । राजा सुग्रीव दीर्घ कालावधि उपरान्त रानी सुतारा को पुनः प्राप्त कर इस प्रकार सुख भोग में संलग्न हुए कि, उसे श्रीराम के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा का कुछ भी ध्यान न रहा ।

जब राजा सुग्रीव को सुतारा के साथ सुख भोगते हुए अनेक दिवस

व्यतीत हो गये तथा वह श्रीराम के पास नहीं आए, तब श्रीराम ने मन में अनुमान लगाया कि, कदाचित मेरे वियोग से सीता मरण को प्राप्त हुई है; लेकिन यह वार्ता कहने में असमर्थ होने के कारण वह मेरे समक्ष नहीं आया है अथवा रानी और राज्य को प्राप्तकर मेरे समक्ष की हुई प्रतिज्ञा को भूल गया है । इस प्रकार अनेक संकल्प विकल्प करते हुए राम के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी । श्रीराम की ऐसी अवस्था देख लक्ष्मण सुग्रीव पर कुपित हुआ और तलवार लेकर उसके राजमहल में जा पहुँचा । लक्ष्मण की ऐसी मुद्रा देखकर सुग्रीव ने उसका क्रोध शांत किया और श्रीराम के पास जाकर अपने अपराध की क्षमा माँगी ।

सुग्रीव द्वारा सीता की खोज

सुग्रीव ने चतुर विद्याधरों को बुलाकर उन्हें सीता की खोज में दशों दिशा में भेजा । भामण्डल को भी सीता हरण का समाचार भेजा गया । सीता के हरण का समाचार सुनकर भामण्डल भी अत्यंत दु:खी हुआ और सीता को ढूँढ़ने के लिए प्रयास करने लगा । राजा सुग्रीव भी विमान पर आरूढ़ हो विद्याधरों के नगरों में सीता की खोज करने चला । उसने दूर से ही जम्बूद्वीप के एक पर्वत पर हवा के झौंके से हिलती ध्वजा देखी, जहाँ रावण द्वारा विद्यारहित होकर रत्नजटी विद्याधर अपने दु:ख का काल व्यतीत कर रहा था । सुग्रीव उसके निकट पहुँचकर स्नेह से उससे मिला । रत्नजटी ने सीताहरण तथा उसके विरोध करने पर अपनी विद्याहरण का समस्त वृत्तान्त राजा सुग्रीव को कह सुनाया ।

सीता का रावण द्वारा हरण का पता चलना । लंका और रावण के बल की जानकारी राम को देना

राजा सुग्रीव अत्यन्त हर्षित हुआ और रत्नजटी विद्याधर को अपने संग श्रीराम और लक्ष्मण के समीप ले आया । रत्नजटी ने राम को नमस्कार कर सीताहरण और अपनी विद्याहरण का समस्त वृत्तान्त सुनाया । यह सुन श्रीराम ने रत्नजटी को अपने हृदय से लगा लिया और सभी विद्याधरों से पूछा की-

यहाँ से लंका कितनी दूर है? सभी विद्याधर मौन हो गये । फिर कुछ काल पश्चात् शीश झुकाकर बोले कि, हे देव! कहाँ हम सामान्य विद्याधर और कहाँ महापराक्रमी लंकाधिपति रावण! हे प्रभो! फिर भी आप यदि उसके बारे में जानना चाहते हैं तो कहने में क्या दोष है? लवण समुद्र में अनेक आश्चर्यकारी स्थानों से प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है । जो सब ओर से सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन की परिधि है । उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है । सुवर्ण तथा नाना प्रकार की मणियों की शिलाओं से व्याप्त है । अजितनाथ भगवान के समय राक्षसों के इन्द्र भीम ने वह राजा मेघवाहन के लिए दिया था । उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नामकी नगरी है । जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथ्वी के समान जान पड़ती है । लंका के समीप में और भी ऐसे स्वभाविक प्रदेश हैं जो रत्न मणि तथा स्वर्ण से निर्मित हैं । वह स्थान स्वर्ग के समान जान पड़ता है । रावण अपने परिवार और इष्टजनों के साथ वहाँ रहता है । रावण को क्रीड़ा करते देख इन्द्र भी आश्चर्यचकित होता है । रावण का भाई विभीषण अत्यधिक बलवान, युद्ध में अजेय और राजाओं में श्रेष्ठ है तथा 'त्रिशूल' नामक महाशस्त्र से सुसज्जित कुम्भकर्ण नाम का महापराक्रमी एक छोटा भाई भी है । युद्ध में ख्याति को प्राप्त 'इन्द्रजित्' उसी का पुत्र है । इन सबको आदि लेकर रावण के ऐसे अनेक किंकर हैं जो नाना प्रकार की विद्याओं के आश्चर्य से सहित हैं । सहसा लिया गया रावण का नाम अथवा चित्र भी शत्रुओं को भय उत्पन्न कराने में समर्थ है । हे श्रीराम! इस रावण को युद्ध में जीतने के लिए कौन बलवान समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए इस कथा को छोड़ कोई दूसरा उपाय सोचिए । तब लक्ष्मण क्रोधपूर्वक मेघवत् गर्जना करते हुए बोला कि, हे विद्याधरों! एक अबला स्त्री को चुरा कर ले जाने वाले को तुम शूर-वीर कहते हैं वह तो कपटी, भीरु, मोही और नीच राक्षस है । राम ने कहा- व्यर्थ का विवाद करने से क्या लाभ? अब तो सीता को उसके चंगुल से छुड़ाना है ।

क्षणभर ठहरकर वृद्ध विद्याधरों ने कहा कि हे पद्माभ! सीता की प्राप्ति का प्रण आप त्याग दीजिये? उसके बदले विद्याधरों की सर्वगुणसम्पन्ना सुन्दर पुत्रियों के स्वामी होकर सुख भोग कीजिये। श्रीराम ने मस्तक हिलाकर कहा कि, मुझे शची के समान सुन्दरी अन्य स्त्रियों से कोई प्रयोजन नहीं। मुझे तो सिर्फ सीता ही चाहिए।

लक्ष्मण का कोटिशिला उठाना

जाम्बूनद आदि सभी विद्याधरों ने परस्पर में विचार कर श्रीराम से कहा कि, हे राजन्! एक बार रावण ने हर्षपूर्वक अनंतवीर्य योगीन्द्र से अपनी मृत्यु का कारण पूछा था। तब अनन्तवीर्य स्वामी ने कहा था कि, 'जो देवों द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला- कोटि शिला को उठावेगा वहीं तेरी मृत्यु का कारण होगा। यदि आप कोटि शिला उठा सके, तो हम रावण के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मण ने कहा कि, हम लोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है। तब जाम्बूनद, सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, नल और नील राम-लक्ष्मण को विमान पर बैठाकर रात्रि के सघन अंधकार में ही आकाशमार्ग से वहाँ गये। वे सब हाथ जोड़ मस्तक से लगा उस सिद्धशिला के समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुगन्धित पुष्पों से उस शिला की पूजा की। तथा सफेद चंदन का लेप लगाया। उन सब लोगों ने भक्तिपूर्वक उस शिला की प्रदक्षिणा दी तथा अनेकों स्तुति और स्तोत्र पढ़े। लक्ष्मण भी कमर कसकर स्तुति करने लगे। विद्याधरों ने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि, इस शिला से जो सिद्ध हुए हैं वे सब तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप हो। अरहंत, सिद्ध, सर्व साधु और जिनशासन मंगलरूप हो। इस प्रकार विद्याधरों की मंगल ध्वनि के साथ लक्ष्मण ने शीघ्र ही उस शिला को हिलाकर अपनी भुजाओं से घुटने प्रमाण ऊपर उठा दिया। उस समय आकाश से देवों ने जय-जयकार का महाशब्द किया और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए।

तदनन्तर श्रीराम लक्ष्मण विद्याधरों सहित श्री सम्मेद शिखर, कैलाशगिरी

तथा भरतक्षेत्र के समस्त तीर्थक्षेत्रों की वन्दना कर संध्या के समय किष्किन्धापुर वापस लौट आए । रात्रि भर विश्राम कर प्रभात होते ही सब एकत्र होकर विचार विमर्श करने लगे और श्रीराम से विनयपूर्वक बोले कि, हे देव! हमारी ओर से कोई प्रमाद नहीं है; परन्तु आप निश्चय कर कहें कि, मुख्य प्रयोजन सीता को लाना है अथवा राक्षसवंशियों से युद्ध करना है । क्योंकि यह कोई सामान्य युद्ध न होगा । युद्ध में दोनों पक्षों के असंख्य प्राणियों का नाश होगा । तब श्रीराम ने कहा कि, मुझे तो सीता से प्रयोजन है, युद्ध से नहीं ।

सुग्रीव ने हनुमान को बुलाने दूत भेजा

तब मंत्रियों ने विचार विमर्श कर निश्चय किया कि, लंका सब ओर से मायामयी यंत्रों द्वारा वेष्ठित है । उसके भीतर कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता है । हाँ, पवनञ्जय का पुत्र हनुमान महाविद्यावान, बलवान, राजनीति में पूर्ण दक्ष है और रावण का परम मित्र भी है । इस कार्य के लिए उसी को लंका भेजना उचित है । तत्काल हनुमान के पास श्रीभूति नाम का दूत भेजा गया ।

श्रीभूति आकाशमार्ग से तत्काल ही श्रीपुर नगर जा पहुँचा । फिर राजमहल के द्वार पर गया । द्वारपालिका उसे खरदूषण के पुत्री (हनुमान की रानी) अनंगकुसुमा के पास ले गई । श्रीभूति दूत ने उसे दण्डक वन में श्रीराम और लक्ष्मण का आगमन, शम्बूक का वध, खरदूषण से युद्ध तथा युद्ध में खरदूषण के मरण का सारा वृत्तान्त अनंगकुसुमा को कह सुनाया, जिसे सुन वह शोक से मूर्च्छित हो गई । हनुमान भी शम्बूक तथा खरदूषण के मरण के कारण शोक मग्न हो गये तथा उन्हें भी क्रोध आ गया । श्रीभूति ने हनुमान का क्रोध शांत करने के लिए राम और लक्ष्मण द्वारा राजा सुग्रीव का कष्ट निवारण करने का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । तब हनुमान का क्रोध शांत हुआ और उनका मुखकमल खिल उठा । हनुमान ने श्रीराम और लक्ष्मण का परम उपकार मानकर उनकी खूब प्रशंसा की । तथा हनुमान की दूसरी रानी पद्मरागा (राजा सुग्रीव की पुत्री) अपने पिता के कष्ट निवारण होने से बहुत प्रसन्न हुई । इस प्रकार हनुमान

के महल में पहली रानी अनंगकुसुमा ने तो अपने पिता एवं भाई के मरण का शोक मनाया तथा दूसरी रानी पद्मरागा ने अपने पिता के कष्ट निवारण का उत्सव किया। संसार की ऐसी ही विचित्र दशा है।

राम और हनुमान का मिलन

हनुमान अपने सामन्तों तथा अन्य अनेक राजागण अपनी सेना सहित निमिष मात्र में किष्किन्धापुर जा पहुँचे। राजा सुग्रीव ने सब का स्वागत किया। हनुमान शीघ्र ही श्रीराम और लक्ष्मण के समीप उपस्थित हुए। वह श्रीराम को देख अत्यंत प्रसन्न हुए और उनसे स्नेहपूर्वक मिले। हनुमान विनयपूर्वक श्रीराम से कहने लगे कि, हे देव! मैं तो आपके सद्‌गुणों से बहुत आकृष्ट हुआ हूँ। मैंने आपकी जैसी महिमा सुनी थी, उसे आज प्रत्यक्ष देख लिया है। हे राघव! मैं अपनी देह का त्याग कर आप के कार्य साधन के लिए अपनी सम्पूर्ण सेना सहित तत्पर हूँ। मैं शीघ्र ही लंका जाकर रावण को सर्वविधि समझाऊँगा। आप नि:संदेह सीता को शीघ्र ही अपने पास देखेंगे।

हनुमान का लंका की ओर प्रस्थान

श्रीराम अत्यंत प्रसन्न होकर हनुमान को एकान्त में ले जाकर कहने लगे– हे वायुपुत्र! तुम लंका जाकर सीता से कहना, हे महासती! तुम्हारे वियोग से श्रीराम को पल भर भी चैन नहीं है। तुम अत्यंत निर्मल और शीलवती हो। श्रीराम के वियोग से अपने प्राण नहीं तजना। श्रीराम ने अपनी अँगुली से मुद्रिका उतारकर हनुमान को देकर कहा कि, हे पवनसुत! मेरी इस मुद्रिका को देखकर सीता तुम पर विश्वास करेगी। और आते समय मुझे विश्वास उत्पन्न कराने वाला सीता का महाकान्तिवान चूड़ामणि यहाँ ले आना। ''जैसी आज्ञा हो'' ऐसा कहकर हनुमान श्रीराम और लक्ष्मण को नमस्कार कर अपने दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर लंका की ओर चल दिया।

आकाश से गमन करते हुए हनुमान ने अपने नाना राजा महेन्द्र का नगर देखा। बालपन की स्मृति उदित होते ही वे राजा महेन्द्र पर कुपित हुए। हनुमान

ने विचारा, राजा महेन्द्र बड़ा दुष्ट है; क्योंकि उसने मेरे गर्भवास के समय मेरी माता को शरण नहीं दी थी । आज मैं इसका गर्व अवश्य नष्ट करूँगा । ऐसा विचार कर हनुमान ने राजा महेन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा एवं युद्ध में अपने मामा प्रसन्नकीर्ति को जीवित बन्दी बना लिया । तथा घमासान युद्ध कर हनुमान ने राजा महेन्द्र को भी जीत लिया । राजा महेन्द्र ने हनुमान को अत्यंत बलवान समझकर अपने हृदय से लगा लिया और कहा कि, हे पुत्र! मैंने जैसी तेरी महिमा सुनी थी आज वैसी ही देख भी ली । हनुमान ने भी राजा महेन्द्र से अपने द्वारा किये गये अविनय की क्षमा माँगी और मामा प्रसन्नकीर्ति को मुक्त कर दिया ।

हनुमान ने उन्हें राजा सुग्रीव के पास श्रीराम और लक्ष्मण के आगमन की सूचना दी तथा शीघ्र ही श्रीराम की सेवा में जाने को कहा । उसने कहा– मैं भी श्रीराम का कार्य करने के लिए ही लंका जा रहा हूँ । ऐसा कहकर हनुमान लंका की ओर प्रस्थान कर गया ।

राजा महेन्द्र पहले अपनी पुत्री अञ्जना से मिलने श्रीपुर गये । पश्चात् किष्किन्धापुर जाकर श्रीराम और लक्ष्मण से मिले । राजा महेन्द्र ने श्रीराम को उनके कार्य में सहायक होने का वचन दिया ।

हनुमान द्वारा मुनिराज का उपसर्ग निवारण

मार्ग में हनुमान को दधिमुख द्वीप में दधिमुख नाम का सुन्दर नगर मिला । उस नगर के वन में दो चारण ऋद्धिधारी मुनि ८ दिन का कायोत्सर्ग लेकर ध्यानस्थ थे । उन मुनियों से पाव कोस की दूरी पर तीन अत्यंत सुन्दर कन्याएँ विधिपूर्वक घोर तप कर रही थी । हनुमान ने देखा कि, दोनों मुनिराज महा अग्नि से ग्रस्त हो रहे हैं और तीनों कन्याएँ भी अत्यधिक धुंए से घिर गई हैं । भक्ति से भरे हनुमान ने शीघ्रता से समुद्र का जल खींचकर, मेघ हाथों में धारण किया और आकाश में ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की । वह अग्नि शांत हो गई । हनुमान नाना प्रकार की पुष्पादि सामग्री से उन दोनों मुनियों की पूजा

करता है । उन तीनों कन्याओं को भी विद्या सिद्ध हो गई एवं मुनियों के दर्शनार्थ वहाँ आई । हनुमान ने उनसे पूछा कि, इस भयंकर निर्जन वन में आप लोग कौन हैं? उन कन्याओं में ज्येष्ठ कन्या कहने लगी कि, हम तीनों दधिमुख नगर के राजा गन्धर्व की अमरा नामक रानी की पुत्रियाँ हैं । प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरंगमाला है । एक बार हमारे पिता ने अष्टांगनिमित्त के ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि, हे भगवन्! मेरी पुत्रियाँ किस स्थान में जायेगी? तब मुनिराज ने कहा था कि, जो युद्ध में साहसगति को मारेगा वह कुछ ही दिनों में इन कन्याओं का पति होगा । अतएव हमारे पिता ने अंगारक के अनेक बार याचना करने पर भी उससे हमारा विवाह नहीं किया । हम तीनों साहसगति को नष्ट करने वाले वीर को देखने के लिए मनोनुगामिनी विद्या सिद्धि हेतु इस वन में आयी थी । दुष्ट अंगारक ने हमें इस वन में विद्या सिद्ध करते देखकर ईर्ष्यावश वन में अग्नि लगा दी । यह विद्या छह वर्ष से भी अधिक समय में बड़ी कठिनाई से सिद्ध होती है; परन्तु उपसर्ग सहन करने से हमें बारह दिन में ही विद्या सिद्ध हो गयी । यदि आप वात्सल्यभाव से प्रेरित होकर अग्नि शांत नहीं करते, तो हम तीनों बहनों सहित मुनिराज भी अग्नि में भस्म हो जाते । यह सुनकर हनुमान ने उन्हें अनेक साधुवाद देकर साहसगति के संहारक श्रीराम और लक्ष्मण का किष्किन्धापुर आगमन और उनके ही कार्य के साधनार्थ अपनी लंका यात्रा का वृत्तान्त कह सुनाया ।

राजा गंधर्व भी हनुमान के मुख से श्रीराम और लक्ष्मण का किष्किन्धापुर में आगमन सुनकर अपनी तीनों कन्याओं सहित वहाँ पहुँचा । राजा गंधर्व ने अपने तीनों कन्याओं का विवाह श्रीराम से कर दिया; परन्तु श्रीराम को तो सीता के अलावा अन्य कुछ नहीं दिखता था ।

हनुमान द्वारा लंका के मायामयी कोट का नष्ट करना

महाबलवान हनुमान त्रिकूटाचल के समीप पहुँचते हैं; परन्तु अचानक उनकी सेना स्तम्भित हो जाती है । यह देख उन्होंने अपने मंत्रियों से इसका

कारण पूछा तब पृथुमति मंत्रि ने बताया कि, हे देव! यहाँ क्रूर यंत्रों से युक्त मायामयी कोट बनाया गया है। तब हनुमान ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोट को देखा। वह कोट अनेक आकार के मुखों से सहित था। सर्वभक्षी पुतलियाँ विषरूपी अग्नि की ज्वलाएँ उगल रही थी। विकराल दीर्घकाल भयंकर सर्प जिह्वा लपलपाते हुए हनुमान को दिखाई पड़े। यदि कोई उस कोट में प्रवेश करने की चेष्टा करे तो उसे वे मेंढक के समान निगल जायेंगे। लंका का कोट ज्योतिषी चक्र से भी ऊँचा तथा दुर्लंघ्य देखकर हनुमान ने अपने मन में विचारा कि, अहो! मायामयी कोट का निर्माण करने वाले रावण ने अपनी पहले ही सरलता छोड़ दी है। मैं अपनी विद्या से इस बलिष्ठ यंत्र को इस प्रकार उखाड़ता हूँ जिस प्रकार कि, ध्यानी मनुष्य मोह को उखाड़ता है।

बुद्धिमान हनुमान ने युद्ध का संकेत देकर अपनी सेना को आकाश में खड़ा कर दिया और स्वयं विद्यामय कवच धारण कर तथा गदा हाथ में ले पुतली के मुख में घुस गया तथा चारों ओर से हड्डियों से आवृत उस पुतली के उदर को विद्यामयी तीक्ष्ण नखों से अच्छी तरह चीर डाला। गदा के प्रहार से चूर-चूर कर डाला। भंग को प्राप्त हुई आशालिक विद्या का चट-चट शब्द हुआ, जिससे मायामय कोट नष्ट हो गया।

हनुमान का लंका में प्रवेश, लंका सुन्दरी से युद्ध तथा मोहित होना, बिभीषण से मिलना

यंत्रमय कोट को नष्ट होता देख, कोट की रक्षा का अधिकारी वज्रायुध नाम का राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ होकर हनुमान के सन्मुख आया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। हनुमान के चक्र द्वारा वज्रायुध का शिर काटकर आकाश से नीचे गिरा दिया। युद्ध में अपने पिता के वध की जानकारी प्राप्त होने पर वज्रायुध की पुत्री लंकासुंदरी शोक को रोककर, क्रोध से हनुमान की ओर दौड़ी। दोनों में घोर युद्ध हुआ। युद्ध करते-करते हनुमान उस पर मोहित हो गये और लंकासुंदरी भी हनुमान पर मोहित हो गई। युद्ध शांत हो

गया । कुछ काल तक हनुमान लंकासुन्दरी के नगर में रहे । पश्चात् अपनी समस्त सेना को लंकासुन्दरी की देखरेख में छोड़कर तथा थोड़े से सामन्तों को लेकर नि:शंक होकर लंका में प्रवेश किया । सर्वप्रथम वह विभीषण से मिले । विभीषण से कहा कि, हे भद्र! तीन खण्ड का अधिपति, राक्षस वंश शिरोमणि रावण किसी क्षुद्र मनुष्य की तरह परस्त्री की चोरी करता है, तो क्या ऐसा करना उचित है । यदि राजा ही अनाचार करेगा तो क्या प्रजा उसका आचरण नहीं करेगी? आप रावण से न्याय की रक्षा करने वाले वचन कहिये । विभीषण ने कहा कि, मैंने रावण को इस बारे में अनेक बार समझाया है, पर वह उस समय से मेरे साथ बात ही नहीं करता है । मैं कल रावण के पास जाकर इस विषय में पुन: बात करूँगा । आज सीता को आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है, तब भी रावण उससे विरक्त नहीं हुआ ।

हनुमान का प्रमद उद्यान में जाना, सीता को राम की अंगुठी और सन्देश देना

विभीषण के यह वचन सुन हनुमान प्रमद उद्यान में गया । वहाँ उसने शोक से संतप्त, अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित सीता को देखा और दयार्द्र भाव से मन में विचार किया कि, मैं शीघ्र ही श्रीराम और सीता का मिलन करवाऊँगा । हनुमान वेष बदलकर सीता के निकट गया और सीता की गोदी में श्रीराम की अँगूठी को डाल दिया । उसे देखकर सीता सहसा हँस पड़ी । सीता की ऐसी अवस्था देखकर वहाँ की स्त्रियों ने यह शुभ समाचार रावण के पास जाकर बता दिया । रावण ने उन स्त्रियों को भेंट देकर सम्मान किया तथा मन्दोदरी को समस्त अन्त:पुर सहित सीता के पास जाने को कहा ।

सीता के पास जाकर मंदोदरी ने कहा कि, हे महाभागे! अब समस्त शोक छोड़कर जगत्पति रावण की शरण में जाकर देवाङ्गनाओं के समान सुख भोग । सीता ने अत्यंत क्रोधित होकर मंदोदरी से कहा कि, हे विद्याधरि! आज मेरे पति का समाचार आया है, इसलिए मेरे मुख पर प्रसन्नता है । तब मंदोदरी

सहित सभी स्त्रियों ने यह सोचा कि, ग्यारह दिन से अन्न जल नहीं ग्रहण करने से वायु दोष के कारण यह ऐसा बोल रही है । तदनंतर सीता ने उत्सुक होकर कहा कि, इस महाभयदायक द्वीप में मेरा कौन बंधु आया है, जिसने मुझे श्रीराम की मुद्रिका दी है । कृपाकर सामने आकर दर्शन देवे । यह सुन हनुमान, देवी सीता के समीप गया और उसे नमस्कार किया । हनुमान ने सीता को अपना परिचय दिया तथा श्रीराम का संदेश कहा कि, हे पतिव्रते! तुम्हारे वियोग से श्रीराम को कहीं पर भी चैन नहीं मिलता है, समस्त भोगोपभोग का त्याग कर श्रीराम सिर्फ आपका ही ध्यान करते हैं ।

पति की वार्ता सुनकर हर्ष से रोमांचित सीता ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से हनुमान से कहा कि, हे कपिध्वज! तुम्हारे मुख से पति का कुशल समाचार सुनकर मुझे परम हर्ष हुआ है । इसके उपलक्ष में तुम्हें क्या दूँ? हनुमान ने विनयपूर्वक कहा कि, मैं तो आपके दर्शन मात्र से ही परम संतोष को प्राप्त हो गया हूँ । जिस समय सीता और हनुमान वार्तालाप कर रहे थे उस समय मन्दोदरी ने हनुमान से कहा कि, तू उत्कृष्ट गुणों का धारी, भूमिगोचरियों का दूत बनकर यहाँ कैसे आया? क्या यह तुझे शोभा देता है । तब हनुमान ने मंदोदरी से कहा कि, अहो! तुम पट्टरानी होकर, परस्त्री में आसक्त रावण की दूती का कार्य कर रही हो । जान पड़ता है अब तुम दूती अर्थात् साधारण स्त्री हो गई हो ।

सीता द्वारा मन्दोदरी को फटकार

हनुमान के वचनों से मंदोदरी को बहुत क्रोध आ गया और वह हनुमान का अपने वचनों द्वारा अपमान करने लगी, तब सीता ने कहा कि, हे मन्दोदरि! बहुत कहने से क्या लाभ? मेरे पति श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के साथ शीघ्र ही समुद्र को तैरकर यहाँ आ जायेंगे और युद्ध में तुम्हारे पति को प्राणरहित कर देंगे । तब विधवा होकर तू विलापपूर्वक रुदन करेगी । इतना सुनते ही रावण की अठारह हजार रानियाँ सब की सब एक साथ सीता को मारने के लिए दौड़ी । हनुमान ने बीच में आकर सबको रोक दिया । विवश होकर क्रोध से भरी सब

रानियाँ रावण के पास चली गयीं ।

ग्यारहवे दिन हनुमान द्वारा राम का सन्देश सुनकर सीता ने अन्न–जल ग्रहण किया

हनुमान ने सीता को नमस्कार कर अन्नजल ग्रहण करने की प्रार्थना की । सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी । ऐसी सीता ने राम की कुशलता सुनने के बाद ग्यारहवे दिन प्रासुक आहार ग्रहण किया । हनुमान ने भी विभीषण के महल में भोजन किया । भोजन करने के बाद जब सीता कुछ विश्राम को प्राप्त हो चुकी तब हनुमान ने जाकर पुन: सीता से निवेदन किया कि, हे माता! तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ । मैं अभी शीघ्र ही समुद्र लाँघकर तुम्हें श्रीराम के पास ले चलूँगा । तब हाथ जोड़कर रोते हुए सीता ने कहा कि, स्वामी की आज्ञा के बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । श्रीराम ही आकर यथायोग्य कार्य करेंगे । हे भाई! जब तक रावण की ओर से कोई उपद्रव नहीं होता तब तक तू शीघ्र ही यहाँ से चला जा । यहाँ क्षणभर भी रुककर विलम्ब मत कर । हे भाई! यह उत्तम चूड़ामणि प्राणनाथ को दिखाना; क्योंकि यह उन्हें अत्यंत प्रिय था । इतना कहकर सीता रोने लगी । हनुमान ने सीता को धैर्य बँधाकर कहा कि, हे माता! शीघ्र ही तुम्हारा श्रीराम से मिलाप होगा । हनुमान सीता को प्रणाम कर उस स्थान से बाहर निकल आये । सीता ने श्रीराम के अँगूठी को अपनी अँगुली में पहनकर ऐसा माना, जैसे पति का समागम ही प्राप्त हुआ है ।

हनुमान द्वारा प्रमद वन और लंका को उजाड़ना

जब रावण ने श्रीराम का दूत बनकर हनुमान के लंका में आने का समाचार सुना तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया । उसने अपने अनुचरों को आज्ञा दी की, पुष्पोद्यान से जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है, उसे शीघ्र ही मार दिया जाये । स्वामी की आज्ञा पाकर अनेक क्रूर अनुचर हनुमान को पकड़ने के लिए शस्त्र लेकर दौड़ पड़े । जब वे हनुमान के निकट पहुँचे तो हनुमान ने कितने ही अनुचरों को पाद एवं मुष्टि के प्रहार से मार डाला । धीर

शिरोमणि हनुमान यद्यपि शस्त्ररहित थे; तो भी उन्होंने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओं के समूह को उखाड़कर फेंक दिया । अकेले हनुमान ने ही समुद्र के समान भारी सेना की वह दशा की कि, वह व्याकुल होकर क्षणभर में प्राण बचाकर भाग गयी । हनुमान के प्रहार से सभा, वापिफा, विमान तथा बाग बगीचों से सुशोभित मकान सभी चूर-चूर हो गये थे, वहाँ केवल भूमि ही शेष रह गयी थी । हनुमान के चरणों के प्रहार से विदीर्ण हुई भूमि में महल नीचे धँस गये थे । हनुमान के भय से लंका व्याकुल हो गयी । नगर और उपवनों की ऐसी दुर्दशा देखकर मेघवाहन एवं इन्द्रजीत सेना लेकर आ गये । उनका हनुमान के साथ घोर युद्ध हुआ । अन्त में इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपाश में बाँध लिया और रावण के समीप ले गया । रावण हनुमान पर पहले से ही कुपित था, फिर हनुमान के द्वारा किये गये अपराधों को सुनकर और आग बबूला हो गया । उसने उसे लोहे की साँकलों से बँधवा दिया । रावण हनुमान के प्रति निर्दयता के साथ कठोर वचन कहने लगा कि, मेरे कारण तू प्रभुता को प्राप्त हुआ है । अब तूने पापी भूमिगोचरियों का दूत बनकर निंदनीय कार्य किया है । यह सुनकर हनुमान को भी क्रोध आ गया उसने रावण से कहा कि, तू हजारों स्त्रियों से भी तृप्त नहीं हुआ, अब परस्त्री की तृष्णा से दुर्गति को प्राप्त होगा । श्रीराम और लक्ष्मण शीघ्र ही विशाल सेनासहित यहाँ आने वाले हैं । वे किसी के रोके न रुकेंगे । होनहार होकर रहती है, विनाश काल में बुद्धि नष्ट हो जाती है । तेरे ही कारण समस्त राक्षसवंशियों का विनाश होगा ।

इस प्रकार कहने पर रावण क्रोध से लाल हो गया । उसने कहा कि, नगर के बीच ले जाकर इस दुष्ट की दुर्दशा की जाये । लोहे की मोटी और लम्बी साँकलों से इसकी गर्दन, हाथ व पाँव बाँधे जाये । कठोर वचनों से इसकी हँसी करें एवं घर-घर घुमावे । ताकि यह अपनी दुर्दशा देख रो उठे । उन विविध प्रकार के अपशब्दों से परम क्रोध को प्राप्त हनुमान ने सब बन्धनों को तोड़ डाला । उनके पैर रखने से ही ऊँचे-ऊँचे गोपुर तथा अन्य दरवाजे टूट गये और वह आकाश में जा उड़ा । हनुमान का इस प्रकार का पराक्रम सुन सीता को

बहुत हर्ष हुआ ।

हनुमान द्वारा राम को सीता का समाचार प्राप्त होना

हनुमान अत्यंत हर्षसहित किष्किन्धापुर की ओर चले । वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजा सुग्रीव को सारा वृत्तान्त सुनाया और फिर श्रीराम के पास गये । श्रीराम को नमस्कार कर सीता का कुशल समाचार सुनाकर हनुमान ने सीता का चूड़ामणि उन्हें सौंप दी । सीता का चूड़ामणि देख श्रीराम रोने लगे । उन्होंने उस चूड़ामणि को मस्तक पर धारण किया और हनुमान को आलिंगन कर श्रीराम ने पूछा कि, क्या सचमुच मेरी प्रिय सीता जीवित है? हनुमान ने कहा कि, हे नाथ! जीवित है; परन्तु वह तुम्हारे विरह से निरन्तर रोती रहती है । वेणी बंधन छूट जाने से उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं । आपके वियोग से उसका शरीर कृश हो गया है । वह अत्यंत दु:खी है और अपनी चिंता छोड़कर निरन्तर आपका ही ध्यान करती रहती है । रावण की क्रोध भरी स्त्रियाँ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं । अत: हे देव! आपकी प्राणवल्लभा दु:खमय जीवन व्यतीत कर रही है । आपको उसे लाने का यथायोग्य प्रयत्न करना चाहिए । यह सब सुन श्रीराम शोक सागर में डूब गये । तब हनुमान ने श्रीराम की ऐसी दशा देखकर सबसे कहा कि राजा सुग्रीव दूरदृष्टि है और सीता का भाई भामण्डल भी बार-बार बुलाने पर भी आने में विलम्ब क्यों कर रहा है? अब हम लोग ही नौकाओं अथवा भुजाओं से ही समुद्र तैरकर कल ही नीच रावण की लंका नगरी चलेंगे ।

राम-लक्ष्मण का सेनासहित लंका पर जढ़ाई करना

यह सुनकर सिंहनाद विद्याधर कहने लगा कि, हे हनुमान! आप विद्वान पुरुष हैं, आपने जो कार्य लंका में जाकर किया है उससे निश्चित ही रावण क्रोधित हो गया है । अब हमारी मृत्यु निश्चित है । तब चन्द्रमारीचि विद्याधर ने कहा कि, हम व्यर्थ ही रावण से भयभीत हो रहे हैं, भयभीत तो रावण को होना चाहिए । अपनी सेना में भी महापराक्रमी योद्धा हैं जिन्होंने अनेकों बार

भयंकर से भयंकर संग्रामों में विजयश्री प्राप्त की है । इतना कह कर वे सब श्रीराम की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे, फिर श्रीराम और लक्ष्मण को कुपित देखकर उनका यथार्थ अभिप्राय समझ गये । समस्त विद्याधर अपनी-अपनी सेनाओं सहित अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर लंका पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये । मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी के दिन सूर्योदय के समय उत्साहसहित, शुभ शकुनों सहित श्रीराम-लक्ष्मण ने लंका की ओर प्रयाण किया ।

समस्त विद्याधर विविध वाहनों पर आरूढ़ होकर निमिष मात्र में वेलन्धर पर्वत पर जा पहुँचे । वहाँ के राजा समुद्र के साथ बलशाली नल का युद्ध हुआ । नल, राजा समुद्र को पराजित कर श्रीराम के समीप ले आया । श्रीराम ने उसे बन्धनमुक्त कर दिया । राजा समुद्र ने अपनी चार कन्याओं सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला का विवाह लक्ष्मण से कर दिया । उस नगर में एक रात्रि ठहरकर वे सब सुवेलनगर को चले गये । वहाँ के राजा सुबेल विद्याधर को युद्ध में परास्त कर उन्होंने अक्षय वन में रात्रि व्यतीत की । प्रभात होते ही वहाँ से चलकर हंसपुर जा पहुँचे । वहाँ के राजा हंसरथ को पराजित कर भामण्डल के पास पुन: अपना दूत भेजा और भामण्डल के आने की प्रतीक्षा में वे सब आठ दिन वहीं ठहरे ।

बिभीषण, इंद्रजित, रावण का संवाद

शत्रु की बड़ी भारी सेना को लंका के निकट आया जानकर रावण क्रोधित हो उठा और सबके साथ मिलकर रण की चर्चा करने लगा । उसने नगर में रणभेरी बजवाई । जिसे सुन विभीषण रावण के समीप आये और नमस्कार करके कहने लगे कि, हे प्रभो! आपकी निर्मल कीर्ति आकाश और पृथ्वी सब जगह फैली हुई है । परस्त्री के कारण यह निर्मल कीर्ति नष्ट न हो जाये इसलिए शीघ्र ही सीता को राम के पास भेज दीजिये अथवा श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सम्मान कर सीता उन्हें सौंप दें । तब अपने पिता रावण के मन की बात जाननेवाले इन्द्रजित ने विभीषण से कहा कि, हे भले पुरुष! तुम्हें क्या अधिकार

है, इस प्रकार कहने का? यदि तुम डरपोक हो तो अपने महल में जाकर बैठो। शूर-वीरों को यह शोभा नहीं देता कि, अत्यंत दुर्लभ स्त्रीरत्न को पाकर मूर्ख पुरुष की तरह छोड़ दिया जाये। विभीषण ने कहा कि तू मलिन चित्त का धारक, रावण का पुत्र नहीं, अपितु शत्रु है। घर में लगी अग्नि में सूखा इंधन डाल रहा है। रावण लंका में सीता को नहीं लाया है बल्कि प्राणों की हर्ता विष औषधि लाया है। जो राक्षस वंश का नाश कर देगी। उनके पास वज्रावर्त सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण है। लक्ष्मण जैसा आज्ञाकारी भाई है; भामण्डल, हनुमान, सुग्रीव, विराधित आदि महाबलशाली योद्धा हैं। विभीषण के यह सब शब्द सुनकर रावण तलवार लेकर खड़ा हो गया, विभीषण ने भी वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया। युद्ध के लिए उद्यत दोनों भाईयों को मंत्रियों ने बड़ी कठिनाई से रोका। रावण ने कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि से कहा कि, उस दुष्ट विभीषण से कहो कि मेरे नगर से निकल जावे। अगर यह लंका में रहेगा तो मैं इसे शीघ्र ही मृत्यु प्राप्त करवाऊँगा। विभीषण ने कहा कि "मैं भी रत्नश्रवा का पुत्र हूँ। मुझसे इस प्रकार कहते हुए आपको लज्जा नहीं आई?" इतना कहकर बिभीषण अन्याय से बचने अपनी कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी सेना सहित श्रीराम के पास हंसव्दीप में पहुँचे।

बिभीषण का राम के धर्म पक्ष में आना

विभीषण को सेनासहित आया जानकर समस्त वानरवंशी भयभीत हो गये। श्रीराम तथा लक्ष्मण अपने धनुषबाण को लेकर सावधान हो गये। विभीषण ने अपना बुद्धिमान मधुरभाषी द्वारपाल श्रीराम के पास भेजा। द्वारपाल राम को प्रणाम कर बोला, हे देव! विभीषण ने रावण को बहुत प्रकार से समझाया कि वह सीता को वापिस आपके पास भेज दे; परंतु रावण ने उनकी एक न सुनी। इस पर दोनों भाइयों में परस्पर विरोध हो गया। अब विभीषण आपकी शरण में आना चाहते हैं। यह सुनकर मतिक्रांत मंत्री ने कहा कि, शत्रु पर क्या विश्वास किया जाए? हो सकता है रावण ने ही इसे कपट से यहाँ भेजा

हो? तब मतिसागर मंत्री ने कहा कि, लोगों से तो सुना है कि दोनों भाईयों में परस्पर विरोध हो गया है और विभीषण धर्म का पक्ष ग्रहण करने वाला महा नीतिमान पुरुष है । वह श्रीराम से कदापि कपट नहीं करेगा । इसलिए विभीषण पर संदेह करना योग्य नहीं है । फिर आदरपूर्वक विभीषण को बुलाया गया ।

विभीषण ने श्रीराम के पास आकर विनयपूर्वक नमस्कार किया और कहा कि, हे प्रभो! इस जन्म में आप ही मेरे स्वामी हैं, भवभव में वीतराग भगवान तो हैं ही । आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा । विभीषण की प्रतिज्ञा सुनकर श्रीराम ने उसके प्रति संशयरहित होकर कहा कि, हे विभीषण! रावण पर विजय प्राप्त कर मैं तुम्हें निःसंदेह लंका का स्वामी बनाऊँगा । इधर जब विभीषण का समागम होने से उत्सव मनाया जा रहा था तभी अपनी सेनासहित भामण्डल श्रीराम के पास आ गये । तदनन्तर उस हंस नगर में आठ दिन बिताकर श्रीराम ने विशाल सेनासहित लंका की ओर प्रस्थान किया । वीर वानरवंशी राजा युद्ध भूमि में सबसे पहले जा पहुँचे । इस रणभूमि की चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाई का कुछ प्रमाण नहीं था । अनेक नगरों के स्वामी प्रसिद्ध विद्याधर रावण की सहायता के लिए आये । रावण की सेना चार हजार अक्षौहिणी प्रमाण थी । राजा सुग्रीव के सेना का प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी था और भामण्डल के सेना का प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी था ।

अक्षौहिणी का प्रमाण

हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेना के चार अंग हैं । इनकी गणना के लिए आठ भेद प्रसिद्ध हैं । प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पांचवा वाहिनी, छठा पूतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी । जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है । तीन पत्ति की एक सेना होती है, तीन सेनाओं का एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुख का एक गुल्म होता है, तीन गुल्मों की एक वाहिनी होती

है, तीन वाहिनी की एक पूतना होती है, तीन पूतनाओं की एक चमू होती है और तीन चमूओं की एक अनीकिनी होती है । दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होती है ।

एक अक्षौहिणी में रथों की संख्या इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर होती है । हाथियों की संख्या भी उतनी ही होती है । घोड़ों की संख्या पैंसठ हजार छह सौ दस होती है और पदाति की संख्या एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास होती है ।

राक्षस व वानर वंशियों का युद्ध

श्रीराम की विशाल सेना अत्यंत निकट आई सुनकर लंकावासी कहने लगे– ''देखो जो शास्त्रज्ञान का भण्डार है आज यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारी की इच्छारूपी मेघों से आच्छादित हो रहा है । राक्षसवंशी और वानरवंशी में से किसका विनाश होगा? कोई–कोई दशानन और उसके वीर योद्धाओं का गुणगान करने लगे । दशानन, इन्द्रजित, कुम्भकर्ण, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा उत्तमोत्तम शस्त्रों से सुसज्जित होकर, कवच धारण करके, नाना प्रकार के रथों पर आरूढ़ होकर रण भूमि की ओर अग्रसर हुए । सेना के परिवार की स्त्रियों ने भी अपने–अपने पतियों को युद्ध में जीतने के लिए प्रेरित किया और युद्ध के लिए उनकी तैयारियों में मदद की । तेज और ओजपूर्ण शब्दों से उनका उत्साह बढ़ाकर उनको युद्ध के लिए बिदाई दी ।

लहराते हुए सागर के समान रावण की उस सेना को देख श्रीराम की सेना अपने कटक से बाहर निकली । दोनों विशाल सेनाओं का परस्पर में समागम हुआ । दोनों सेना भयंकर दिखने लगी । दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा । लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे और अत्यधिक शक्तिशाली भी थे; इसलिए उन्होंने वानर पक्ष के योद्धाओं को उस तरह पराजित कर दिया जिस तरह सिंह हाथियों को पराजित कर देता है । यह देख शीघ्र ही प्रतापी वानर राजाओं ने राक्षस योद्धाओं को मारना शुरू किया । रावण की सेना को

सब ओर से नष्ट होती देख हस्त-प्रहस्त सामंत सामने आये । ''डरो मत, डरो मत'' शब्द कहकर सेना का उत्साह वर्धन किया । वानरवंशी नल और नील ने उन दोनों का सामना किया । चिरकाल तक युद्ध के पश्चात् नल ने हस्त को और नील ने प्रहस्त को निर्जीव बना दिया । हस्त-प्रहस्त को मरा देख रावण की सेना भाग खड़ी हुई । इसलिए दूसरे दिन क्रोध से भरे बहुत से राक्षसवंश के योद्धा युद्ध करने रण भूमि में प्रविष्ट हुए । राक्षसवंश के योद्धाओं को सामने देख वानर वंश के प्रधान राजा युद्ध करने के लिए उद्यत हुए । दोनों पक्ष के लोगों का एक दूसरे को ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ। जब सूर्य अस्त हुआ और उस दिन के युद्ध का उपसंहार हुआ । अपने अपने पति को मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागर में निमग्न हुई । दूसरे दिन प्रात:काल से युद्ध पुनः आरभ्म हुआ । अपनी सेना को नष्ट होती देख परम क्रोध से भरा राजा सुग्रीव स्वयं युद्ध करने को तैयार हुआ । हनुमान भी हाथियों से जुते सुवर्णमय रथ पर सवार हो युद्धक्षेत्र में आए । हनुमान को देख राक्षस सामंतों का समूह भयभीत हो इधर उधर भागने लगा । तब राक्षसों का शिरोमणी माली हनुमान के सामने आया । कानों तक खींच खींचकर चढ़ायें हुए बाणों से उन दोनों का महायुद्ध हुआ । योग्य युद्ध करने में तत्पर सचिव-सचिवों के साथ, रथ-रथियों के साथ और घुड़सवार-घुड़सवारों के साथ जूझ पड़े । हनुमान की शक्ति से माली को नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर सामने आया । चिरकाल तक युद्ध करने के बाद हनुमान ने उसे कई बार रथरहित कर दिया, पश्चात् प्राणरहित कर दिया । यह देख रावण का पुत्र जम्बूमाली अपने पक्ष के लोगों की मृत्यु से कुपित हो हनुमान के सामने खड़ा हुआ । उसने हनुमान की ध्वजा छेद डाली । तब हनुमान ने ऐसा बाण चलाया कि, जम्बूमाली के रथ में जुते सौ सिंह छूट गये । उन सिंहों ने उछलकर अपनी समस्त सेना की विह्वल कर दिया । सब सामंतों के भाग जाने पर हनुमान ने कुछ दूर खड़े रावण को देखा । वह रावण की ओर दौड़ा । रावण ने ज्यों ही युद्ध का विचार किया त्यों ही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक युद्ध के लिए सामने आया । दोनों में प्रचण्ड युद्ध शुरू हो गया । समस्त राक्षस

राजाओं ने चारों ओर से हनुमान को घेर लिया, फिर भी धीर, वीर हनुमान विचलित नहीं हुए । हनुमान को घिरा देख वानर पक्ष के योद्धा युद्ध करने के लिए सामने आये । उन्होंने रावण की सेना को ध्वस्त कर दिया । राक्षस पक्ष के लोगों को व्याकुल देख कुम्भकर्ण उनको सहारा देने सामने आया । क्रोध से भरे कुम्भकर्ण ने निद्रा नामक विद्या द्वारा राम पक्ष के योद्धाओं को सुला दिया । तब सुग्रीव ने प्रतिबोधिनी नाम की विद्या के प्रभाव से सबको निद्रारहित कर सचेत कर दिया ।

हनुमान सचेत होकर अत्यंत रोषसहित राक्षस पक्ष की सेना का विध्वंस करने लगे । योद्धाओं के रक्त से समस्त रणभूमि लाल हो गई । इन्द्रजित अपनी सेना को दबा देख युद्ध करने सामने आया । तब सुग्रीव और भामण्डल इन्द्रजीत से युद्ध करने लगे । इन्द्रजीत ने दोनों को नागपाश से बाँध लिया । हनुमान को भी कुम्भकर्ण ने पकड़ लिया । यह देखकर सुग्रीव के पुत्र अंगद ने छिपके से जाकर कुम्भकर्ण का अधोवस्त्र खोल दिया, जिस से वह लज्जा से व्याकुल हो वस्त्र को सँभालने में लग गया; तब हनुमान उसके भुजपाश के मध्य से निकल भाग गया । विभीषण भी सुग्रीव और भामण्डल को नागपाश से छुड़ाने के लिए इन्द्रजीत के सामने गया ।

मेघवाहन और इन्द्रजीत विभीषण को सम्मुख आता देख कर मन में विचारने लगे कि, इनमें और हमारे पिता में कोई अंतर नहीं है । अतएव हमारा इनके साथ युद्ध करना योग्य नहीं हैं । भामण्डल और सुग्रीव नागपाश में बंध कर प्राणरहित हो चुके हैं, ऐसा विचार कर वह दोनों काका विभीषण के सामने से हट गये । तब विभीषण सुग्रीव और भामण्ड़ल को उसी मूर्च्छित अवस्था में उठाकर सुरक्षित स्थान में ले आये ।

सुग्रीव और भामण्ड़ल की ऐसी अवस्था देख लक्ष्मण ने राम से कहा कि, हे नाथ! जब ये दोनों महा बलवान विद्याधरों के स्वामी रावण के पुत्रों द्वारा नागपाश से बाँध लिये गये हैं, तब क्या रावण हमारे द्वारा जीता जा सकता है? तब पुण्योदय से उस समय राम को देशभूषण-कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग दूर

करने पर गरुड़ेन्द्र से प्राप्त वर का स्मरण आ जाता है । वह महालोचन नाम के गरुड़ेन्द्र का ध्यान करते हैं । अवधिज्ञान से सब समाचार जानकर गरुड़ेन्द्र ने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिंतावेग नामक देव श्रीराम के पास भेजा । उस देव ने श्रीराम को सिंहवाहिनी तथा लक्ष्मण को गरुड़वाहिनी विद्या दी । वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत शस्त्र उस देव ने उन्हें दिये । छत्र और अनेक रत्न भी दिये । विद्युद्वक्त्र नाम की गदा लक्ष्मण को तथा हल और मुसल श्रीराम को दी ।

रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना

परम महिमासम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषण के साथ रणभूमि के मध्य आये । शीघ्र ही गरुड़वाहिनी विद्या के बल से लक्ष्मण ने नागपाश से मूर्च्छित भामण्डल और सुग्रीव को पुन: चैतन्य किया । उन्हें स्वस्थ देखकर वानरवंशी दल में उत्साह की लहर दौड़ गई । वे दुगने उत्साह के साथ युद्ध करने में तत्पर हो गये।

दूसरे दिन रावण अपने भाई आदि के साथ रण भूमि में स्वयं युद्ध करने आया । उसे युद्ध में प्रवृत्त देखर वानरवंशी भयभीत हो गये । परन्तु विभीषण ने उन्हें धैर्य बंधा करके युद्ध के लिए उत्साहित किया और स्वयं रावण के सम्मुख खड़ा हो गया । रावण विभीषण को देखकर कहने लगा कि, तू छोटा भाई है अत: मुझे तुझको मारना योग्य नहीं है । तू सामने से हट जा । तेरे समान मूर्ख अन्य कौन होगा, जो विद्याधर की संतान होकर भी दीन, हीन भूमिगोचरियों की शरण में गया है । विभीषण ने कहा कि, हे रावण! अब भी समय है, सम्भल जा । श्रीराम के साथ मित्रता कर और सीता को उन्हें समर्पित कर दें । अहंकार छोड़कर राम को प्रसन्न कर, स्त्री के निमित्त अपने वंश को कलंकित मत कर ।

विभीषण के वचन सुनकर रावण क्रोध से उन्मत्त हो गया और तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर विभीषण की ओर दौड़ा । दोनों भाईयों में घोर युद्ध होने लगा । दोनों पक्ष के योद्धा भी परस्पर भीषण युद्ध करने लगे । उन धीर वीरों की गर्जना

से और तुरही के उन्नत शब्दों सें दशों दिशायें ऐसी जान पड़ती थी मानो रुधिर की वर्षा से अन्धकारयुक्त और पागल होकर चिल्ला रही हो । इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओं को क्षय करनेवाला महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्राजित तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्मण को और लक्ष्मण इन्द्रजीत को आच्छादित करने में लीन थे । वीर लक्ष्मण ने इन्द्रजित को और राम ने कुम्भकर्ण को रथ से नीचे गिराकर नागपाश से वेष्टित कर मूर्च्छित कर दिया ।

नागपाश बाण– ये बाण बड़े ही विचित्र होते हैं, जब वे धनुष पर चढ़ाये जाते तब बाणरूप रहते, चलते समय उल्का के समान मुख वाले हो जाते और शरीर पर जाकर नागरूप हो जाते थे ।

कुम्भकर्ण को भामण्डल तथा इन्द्रजित को विराधित की देखरेख में छोड़ श्रीराम और लक्ष्मण वीरतापूर्वक युद्ध करने लगे । रावण ने क्रोधपूर्वक विभीषण पर अग्नि स्फुलिंगों से प्रज्वलित शूल चलाया तब लक्ष्मण ने अपने बाणों से बीच में ही उसे समाप्त कर दिया । शूल शस्त्र को नष्ट हुआ देख रावण ने भयानक शक्ति उठायी लेकिन लक्ष्मण विभीषण को अलग कर स्वयं रावण के सामने आ गये । तब रावण ताड़न करते हुए बोला कि, जब मैंने दूसरे का वध करने के लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होने का क्या अधिकार है? अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण! यदि तू मारना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार झेल । ऐसा कह रावण ने जिससे ताराओं के समान तिलगों का समूह निकल रहा था और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता ऐसी अमोघ विजया शक्ति लक्ष्मण के ऊपर चलायी । उस शक्ति से लक्ष्मण का वक्ष:स्थल खण्डित हो गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़े । उन्हें भूमि पर पड़ा देख श्रीराम, तीव्र शोक को रोककर शत्रु का घात करने के लिए उद्यत हुए ।

श्रीराम ने अपनी प्रचण्ड बाण वर्षा से रावण को व्याकुल कर दिया । उन्होंने रावण का छह बार धनुष तोड़ा और छह बार उसे रथरहित किया । फिर भी वह जीता न जा सका । तब राम ने रावण से कहा कि, हे विद्याधरराज! पुण्य कर्म ने ही तेरी रक्षा की है । लेकिन मेरे जिस भाई को तूने शक्ति के द्वारा घायल

किया है वह मरने के सम्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ। यह सुन रावण 'एवमस्तु' कहकर वैभव के साथ लंका की ओर चला गया।

'यह एक महाबलवान शत्रु मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदय में कुछ धैर्य प्राप्त हुए रावण ने अपने भवन में प्रवेश किया। परन्तु भाई कुम्भकर्ण और दो पुत्र इन्द्रजित और मेघवाहन शत्रु के पास हैं यह सुन रावण शोक करने लगा और शीघ्र ही उन्हें छुड़ाने का उपाय सोचने लगा।

श्रीराम भी तुरंत उस स्थान पर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे। लक्ष्मण को चेष्टा रहित देखकर राम भी मूर्च्छित हो गये। चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोक से विलाप करने लगे। वे कहने लगे, "हे वत्स! तू सदा मेरी भक्ति में तल्लीन रहता था। आज मौन क्यों बैठा है? उठ मुझसे बात कर। तू जानता है की, मैं तेरा वियोग सहन नहीं कर सकता हूँ। उठ, मेरे हृदय से लग जा। माता-पिता ने तुझे धरोहर रूप में मुझे सौंपा था। मैं निर्लज्ज अब उन्हें क्या उत्तर दूँगा? समस्त लोग जब मुझसे पूछेंगे कि, लक्ष्मण कहाँ है ? तब मैं क्या कहुँगा? हे भाई! मुझे तेरे बिना सीता से क्या प्रयोजन है ? मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथ्वी पर सोया हुआ देख रहा हूँ। हे विद्याधरों के राजा सुग्रीव! तुमने अपनी मित्रता दिखायी। अब अपने देश जाओ। हे भामण्डल! तुम भी अपने देश जाओ। मैं कल लक्ष्मण के साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा। हे विभीषण! मुझे सीता और लक्ष्मण के वियोग का इतना दु:ख नहीं जितना तुम्हारे द्वारा मेरे ऊपर किये उपकार का दु:ख है। तुमने मेरे लिए अपने भाई का विरोध किया, अपमान सहा और मैं तुम्हारे लिए कुछ भी न कर सका। हे भामण्डल और सुग्रीव! शीघ्र ही चिता बनाओ। मैं परलोक जाऊँगा।"

यह कह श्रीराम लक्ष्मण के शरीर को स्नेहवश स्पर्श करने लगे। तब जाम्बूनद ने उन्हें रोक कर कहा कि, हे देव! लक्ष्मण दिव्यास्त्र के प्रहार से मूर्च्छित हुआ है, उसे मत छुओ; क्योंकि ऐसा करने से कोई हानि भी हो सकती है। आप धैर्य रखे लक्ष्मण नारायण हैं, नारायण का असमय में मरण नहीं होता। विषाद से भरे सभी विद्याधर राजा विचार करने लगे कि, दिव्य शक्ति

औषधियों के द्वारा दूर नहीं की जा सकती हैं । सूर्योदय के पूर्व ही इसका प्रतिकार नहीं किया तो लक्ष्मण का जीवित रहना कठिन हो जायेगा ।

किंकरों ने उस युद्ध भूमि को शुद्ध किया और वहाँ कपड़े के ऊँचे-ऊँचे डेरे और मण्डप आदि खड़े कर दिये । उस भूमि को सात चौकों से युक्त कर दिया ताकि कोई भी वहाँ प्रवेश न कर सके । नील, नल, विभीषण, कुमुद, सुषेण, सुग्रीव और भामण्डल शस्त्रों से सुसज्जित हो क्रमश: एक एक चौक पर पहरा देने लगे । पूर्व द्वार के मार्ग पर शरभ, पश्चिम द्वार के मार्ग पर जाम्बूनद, उत्तर द्वार के मार्ग पर चन्द्ररश्मि और दक्षिण द्वार के मार्ग पर वानरध्वज राजा पहरा देने लगे ।

इधर रावण को यह निश्चय हो गया कि, शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा उसके प्रतिकार स्वरूप राम पक्ष के लोगों ने कुम्भकर्ण, इन्द्रजित और मेघवाहन को अवश्य मार डाला होगा । इस विचार से वह मन ही मन बहुत दु:खी हुआ । जब सीता ने सुना कि, लक्ष्मण शक्ति से घायल हो पृथ्वी पर गिर पड़ा है, तब वह विलाप करने लगी- 'हाय भाई लक्ष्मण! तू मुझ अभागिनी के कारण इस अवस्था को प्राप्त हुआ है । मैं तुम्हारा दर्शन भी नहीं कर पा रही हूँ । देव सब प्रकार से तुम्हारी रक्षा करें ।'

चंद्रप्रतिम द्वारा विशल्या (अनंगसरा) का परिचय

इसी बीच जहाँ लक्ष्मण था वहाँ एक मनुष्य डेरे के भीतर प्रवेश करने लगा । तब भामण्डल ने उसे रोकते हुए पूछा कि, तुम कौन और कहाँ से आये हो? इसके उत्तर में उस पुरुष ने कहा कि, मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया है । मैं राम का दर्शन करना चाहता हूँ; परन्तु अब तक उनका दर्शन नहीं हो सका है । यदि आप लोग शीघ्र ही लक्ष्मण को जीवित देखना चाहते हो तो मुझे श्रीराम के दर्शन करने दो । भामण्डल शीघ्र ही उसे श्रीराम के पास ले गया । उस व्यक्ति ने श्रीराम को नमस्कार कर कहा कि, हे महाराज! खेद मत कीजिए । कुमार निश्चित ही जीवित है । मैं देवगतिपुर के राजा चन्द्रमण्डल और

रानी सुप्रभा का पुत्र चन्द्रप्रतिम हूँ। एक समय राजा वेलाध्यक्ष के पुत्र सहस्रविजय ने मुझ पर चण्डरवा नाम की शक्ति का प्रहार किया था। जिसके प्रभाव से मैं अयोध्या के महेन्द्रोदय उद्यान में गिरा था, तब अयोध्या के राजा भरत ने विशेष प्रकार के चन्दन का जल मेरे ऊपर छींटक कर मेरे शरीर से शक्ति का प्रभाव दूर कर दिया था। मेरे पूछने पर उन्होंने उस गंधोदक की विशेषता बताते हुए कहा कि, एक बार उनके देश में भयानक रोग का उपद्रव हुआ था, जिससे सब लोग उस रोग की चपेट में आ गये थे। केवल द्रोणमेघ राजा अपने परिवार, मंत्रियों और पशुओं सहित निरोग बचा था। उन्होंने उनसे कहा कि, जैसे वे और उनकी समस्त प्रजा निरोगी हैं, वैसा उन्हें भी कर दें। तब द्रोणमेघ राजा ने उन पर सुगंधित जल छींटा, जिस से वे रोग मुक्त हो गये। वही जल प्रजाजन पर छींटकने से वे भी निरोगी हो गई। जब राजा भरत ने उस जल के बारे में राजा द्रोणमेघ से पूछा तो उन्होंने बताया कि, हे भरत! मेरी कन्या विशल्या सर्व गुणसम्पन्न और जिनशासन की भक्ति में अत्यंत प्रवीण है। जब वह अपनी माता के गर्भ में आई तब उसकी माता के सर्व रोग दूर हो गये। उसी विशल्या के स्नान के सुगंधित जल के छींटकने से समस्त रोग दूर जाते हैं। तब राजा भरत ने उस कन्या की पूजा की। जब वह वापिस आ रहे थे तब उन्हें मुनिराज मिले। राजा भरत ने उनसे विशल्या का चरित्र पूछा।

सत्यहित मुनिराज ने कहा कि, ''हे भरत! विदेह क्षेत्र में पुण्डरीक नाम का देश है। उसके चक्रधर नगर में त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती रहता था। उसकी पुत्री अनंगशरा अत्यंत रूपवती और महागुणवती थी। चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्द का एक पुनर्वसु नाम का सामंत था। वह प्रतिष्टपुर नगर का स्वामी था। उसने अनंगशरा के रूप पर मोहित हो उसका अपहरण कर लिया। क्रोध से भरे चक्रवर्ती की आज्ञा पाकर सेवकों ने उसका पीछा किया और युद्ध कर उसका विमान नष्ट कर डाला। तब पुनर्वसु ने अनंगशरा को पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा आकाशमार्ग से नीचे उतार दिया। अनंगशरा क्रूर हिंसक प्राणियों से परिपूर्ण भयानक 'श्वापद' नाम की अटवी में आयी। अपने माता-पिता तथा कुटुम्बीजनों

का बारम्बार स्मरण कर वह करुणाजनक विलाप करने लगी । वह पृथ्वी पर गिरे पक्के फल खाकर अपनी क्षुधा शांत करने लगी । बेला तेला के कठिन उपवासों से उसका शरीर अत्यंत कृश हो गया था । इस प्रकार अनंगशरा ने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया । जब वह आशा रहित हो गई तब विरक्त हो उसने चारों प्रकार के आहार का त्यागकर सल्लेखना धारण कर ली और यह नियम भी ग्रहण कर लिया कि, मैं सौ हाथ से बाहर की भूमि में नहीं जाऊँगी ।

उसे सल्लेखना का नियम लिये जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी तब लब्धिदास नाम का पुरुष मेरु पर्वत की वन्दना कर लौट रहा था उसने उस कन्या को देखा । वह उसे उसके पिता के घर ले जाने के लिए उद्यत हुआ; परन्तु अनंगशरा ने कहा की, मैंने सल्लेखना धारण कर ली है और सौ हाथ भूमि से आगे गमन न करने का नियम भी ले लिया है । तब लब्धिदास तुरन्त त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती के पास गया और उसे अनंगशरा के पास ले आया । जब वे वन में पहुँचे तब एक भयंकर मोटा अजगर अनंगशरा को निगल रहा था । पिता को अपनी रक्षार्थ उद्यत देखकर अनंगशरा ने उन्हें रोका और अजगर को अभयदान दिलवाया । सल्लेखनापूर्वक मरण कर वह तीसरे स्वर्ग में गई । त्रिभुवनानन्द राजा अपनी कन्या की ऐसी अवस्था देखकर महावैराग्य को प्राप्त हुआ और उसने अपने बाईस हजार पुत्रों के साथ दीक्षा ले ली ।

जब पुनर्वसु युद्ध में समस्त विद्याधरों को परास्त कर अनंगशरा को ढूंढ़ने आया तब वह उसे नहीं मिली । वह बहुत दु:खी हुआ, उसने द्रुमसेन मुनिराज के पास दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । घोर तप किया । निदान के साथ मरण कर वह स्वर्ग में देव हुआ और वहँ से च्युत होकर लक्ष्मण हुआ है । अनंगशरा का जीव जो मरकर तीसरे स्वर्ग में गया था वहाँ की आयु पूर्ण कर राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या हुई ।''

विशल्या का पूर्व चरित्र सुनकर राजा भरत ने सत्यहित मुनिराज से अपने राज्य में रोग फैलने का कारण पूछा; तब मुनिराज ने कहा कि, ''एक बार विन्ध्य नाम का व्यापारी, व्यापार करने के निमित्त से, प्रचुर द्रव्य सामग्री गधे,

ऊँट और भैसों पर लादकर गजपुर से अयोध्या नगरी आया । वह अयोध्या नगरी में ग्यारह माह तक रहा । तब उसका एक भैंसा तीव्र रोग से पीड़ित होकर नगर के बीच में गिर पड़ा और अकाम निर्जरा से मरण कर वायुकुमार जाति का वाय्वावर्त नाम का देव हुआ । अवधिज्ञान से उसने अपने पूर्वभव को जान लिया । उसे विदित हो गया कि, मैं पहले भैंसा था, अयोध्या में आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । मैं भूख प्यास से व्याकुल था । रोग से पीड़ित होने के कारण मार्ग की कीचड़ में गिर गया था । लोग मुझे पीटते थे । निर्दयी होकर सब लोग मेरे मस्तक पर पैर रखकर जाते थे । इस प्रकार उसने अवधिज्ञान से जानकर, क्रोधित होकर अयोध्या में नाना रोगों को उत्पन्न करने वाली वायु चलायी । तब विशल्या के स्नान के जल से क्षण भर में उसके द्वारा फैलाये गये सब रोग दूर हो गये ।''

चन्द्रप्रतिम द्वारा लक्ष्मण के शक्ति निवारण का उपाय

चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से कहता है कि, ''यह कथा सत्वहित मुनिराज ने राजा भरत को कहीं थी, राजा भरत ने कृपा कर मुझे सुनाई । हे राघव! अब किसी को भेजकर विशल्या के स्नान का जल शीघ्र मँगाओ । लक्ष्मण की प्राण रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं है ।'' चन्द्रप्रतिम के वचन सुनकर राम को अत्यंत हर्ष हुआ और शीघ्र ही मन्त्रणाकर हनुमान, भामण्डल और अंगद को अयोध्या की और रवाना किया । वे निमेष मात्र में अयोध्या जा पहुँचे । उस समय राजा भरत सोये हुये थे, इसलिए सहसा उन्हें उठाने से दु:ख न हो ऐसा विचारकर भामण्डल आदि ने कर्ण और मन को हरण करने वाला सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया । जिसे सुनकर राजा भरत जाग उठे । हनुमान ने उन्हें सीता हरण और लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार का समस्त समाचार संक्षेप में कह सुनाया । यह सुनते ही राजा भरत बहुत क्रोधित हो गये । उन्होंने तत्काल ही युद्ध की भेरी बजवाई । भेरी का शब्द सुनते ही अनेक सामन्त तथा योद्धा अर्द्ध रात्रि में ही शस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा भरत के पास आये । शत्रुघ्न भी मंत्रियों और

योद्धाओं को संग लेकर भरत के पास आया । राजा भरत ने सबको रावण से युद्ध करने के लिए लंका प्रस्थान करने का आदेश दिया ।

भामण्डल आदि राजा भरत को युद्ध के निमित्त गमनार्थ उद्यत देख कर बोले कि, ''हे देव! लंका यहाँ से बहुत दूर, अगम्य और समुद्र के मध्य स्थित है । वहाँ जाना सहज नहीं है ।'' तब भरत ने जिज्ञासा की, तो उन्हें क्या करना चाहिए? उन सबने विशल्या का मनोहर चरित्र सुनाकर कहा कि, ''आप केवल राजा द्रोणमेघ की कन्या विशल्या के स्नान का जल शीघ्र ही दिलाओ । जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे । नहीं तो लक्ष्मण का जीवित रहना असम्भव है ।'' राजा भरत ने कहा की, ''विशल्या के स्नान का जल क्या ले जाना, विशल्या को ही ले जाओ । मुनिराज ने कहा भी था कि, यह लक्ष्मण की पत्नी होगी ।''

विशल्या द्वारा लक्ष्मण की शक्ति का निवारण

राजा भरत अपनी माता केकई को लेकर तुरन्त राजा द्रोणमेघ के पास गये एवं उन्हें समस्त वृत्तान्त सुनाकर विशल्या को लंका भेजने का आग्रह किया । राजा द्रोणमेघ ने तत्काल एक हजार से भी अधिक कन्याओं सहित विशल्या को हनुमानादि के साथ लंका की ओर विदा कर दिया । निमेष मात्र में वह युद्धभूमि में पहुँच गयी । समस्त विद्याधरों ने अर्घ्य देकर उसका यथायोग्य सम्मान किया । महाभाग्यशालिनी विशल्या जैसे ही लक्ष्मण के पास गयी वैसे ही वह शक्ति लक्ष्मण के वक्ष:स्थल से निकल गयी । हनुमान ने उछलकर उसे पकड़ लिया । तब वह दिव्य स्त्री के रूप में परिणत हो हाथ जोड़कर हनुमान से बोली, ''हे नाथ! मुझे मुक्त कर दो, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है । जो मेरी साधना करता है, मैं उसी के वशीभूत हो जाती हूँ । मेरा नाम अमोघविजया है, मैं प्रज्ञप्ति की बहन हूँ । जब बालि मुनिराज कैलाश पर्वत पर ध्यानस्थ थे, तब रावण ने जिन प्रतिमाओं के समीप अपनी भुजा की नाड़ी रूपी तंत्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान का दिव्य एवं शुभ चरित्र वीणा द्वारा गाया था । रावण की भक्ति

से प्रसन्न होकर धरणेन्द्र ने मुझे रावण के लिए दिया था। मैं देवों को भी पराजित कर देती हूँ; परन्तु इस विशल्या ने दूर रहने पर भी मुझे पृथक कर दिया। यह इसके पूर्वभव के तप का प्रभाव है। मुझे क्षमा कीजिये। अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ।'' हनुमान ने उसकी प्रार्थना सुन उसे मुक्त कर दिया।

लज्जायुक्त विशल्या श्रीराम के चरणारविन्द में नमस्कार कर लक्ष्मण के समीप खड़ी हो गई। सबके जाने के बाद विशल्या ने लक्ष्मण को अपने कोमल हाथों से स्पर्श किया तथा गोशीर्ष चन्दन से समस्त शरीर चर्चित किया। कुछ-कुछ काँपते हुए हाथ से श्रीराम को भी चन्दन का लेप लगाया। विशल्या के साथ जो अन्य एक हजार कन्याएँ आई थी, उन्होंने विशल्या के हाथ से स्पर्शित चन्दन अन्य समस्त घायल विद्याधरों पर छिड़का, जिससे वे पूर्ववत् स्वस्थ हो गए। श्रीराम की आज्ञानुसार विशल्या के हाथ का छुआ चंदन इन्द्रजित, मेघवाहन और कुम्भकर्ण के पास भी भेजा गया। इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीर के धारक जो अन्य योद्धा, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे, विशल्या के स्नान के जल से पूर्ववत् स्वस्थ हो गये।

जिस प्रकार उपपाद शय्या को छोड़कर उत्तम शरीर का धारक देव उठकर खड़ा होता है, उसी प्रकार लक्ष्मण भी खड़े हो गये और सब तरफ देखते हुए क्रोध से बोले कि, ''वह रावण कहाँ गया?'' तब श्रीराम ने लक्ष्मण का आलिंगन कर कहा कि, ''रावण तो शक्ति के द्वारा आपको मारकर चला गया है। हे भ्राता! इस कन्या के प्रसाद से तुम स्वस्थ हुए हो तथा इसी के प्रसाद से कटक के समस्त आहत विद्याधर, हाथी, घोड़े आदि स्वस्थ हो गए हैं।'' जब लक्ष्मण ने विशल्या की ओर अनुराग दृष्टि से देखा, तब विशल्या के साथ आई हुयी कन्याओं ने लक्ष्मण से कहा कि, ''हे स्वामिन्! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग विशल्या के साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं।'' यह सुन लक्ष्मण ने मुस्कुराते हुए कहा कि, ''जहाँ प्राणों का संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्र में यह किस प्रकार उचित है?'' परन्तु लोगों की प्रार्थना से लक्ष्मण ने स्वीकृति दे दी और युद्धभूमि में लक्ष्मण और विशल्या का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ।

रावण ने जब अपने गुप्तचरों से विशल्या के द्वारा लक्ष्मण का स्वस्थ होना एवं उन दोनों का पाणिग्रहण का समाचार सुना तब ईर्ष्या के कारण मन्दहास्य करने लगता है । मृगांक आदि मंत्रियों ने रावण से प्रार्थना की कि, ''हे देव! आप चाहे कुपित हो या संतुष्ट, लेकिन हम निर्भीक होकर आपके लिए हितकारी वचन कहेंगे । हे देव! आप देख चुके हैं राम-लक्ष्मण को बिना यत्न के सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी हैं । आपके दोनों पुत्र और भाई उनके यहाँ बन्धन में पड़े हैं और दिव्य शक्ति भी व्यर्थ हो गई है । यद्यपि आप शत्रु को जीत ले; तथापि आपके भाई और पुत्रों का विनाश निश्चित ही हो जायेगा । इसलिए हे देव! सीता को वापिस कर, राम के साथ सन्धि करना ही उचित है ।'' रावण ने उनसे कहा कि, ''आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा ।''

तब मंत्रियों ने श्रीराम के पास दूत भेजने का निश्चय किया । लेकिन रावण ने उसे संकेत द्वारा अपना कुटिल अभिप्राय समझा दिया । वह दूत श्रीराम के पास जाकर कहता है कि, ''विद्याधरों के अधिपति रावण ने कहा है कि, मैं विद्याधरों से सहित समुद्र पर्यंत की समस्त पृथ्वी और लंका के दो भाग कर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ । तुम मेरे भाई और दोनों पुत्रों को भेजकर सीता देना स्वीकार करो । उसी में तुम्हारा कल्याण होगा । यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो, सीता तो हमारे पास है ही और भाई और पुत्रों को हम बलपूर्वक छीन ले जायेंगे ।''

श्रीराम ने कहा कि, ''मुझे राज्य से प्रयोजन नहीं है । तुम सीता को मेरे पास भेज दो । मैं तुम्हारे भाई और पुत्रों को तुम्हारे पास भेज दूँगा । मैं सीता के साथ वन में सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा, तुम समग्र पृथ्वी का उपभोग करो ।'' दूत कहता है कि, ''सीता की बात तो छोड़ो, रावण के कुपित होने पर अपने जीवन की आशा भी छोड़ो । इसलिए दोनों ओर से भ्रष्ट मत होओ ।'' इस प्रकार दूत के कहने पर भामण्डल ने क्रोध से उसे मारने के लिए तलवार उठा ली तब लक्ष्मण ने उसे रोक लिया एवं अन्य लोगों ने तिरस्कारपूर्वक दूत को निकाल

दिया ।

अपमान से संक्लेशित होता हुआ वह दूत रावण के पास गया । वहाँ जाकर उसने कहा कि, ''हे नाथ! मैंने आपके आदेशानुसार वचन श्रीराम से कहे; परंतु वे सीता को वापिस लेने का हठ कदापि नहीं त्यागते हैं । श्रीराम ने कहा कि, ''यदि रावण परस्त्री के उद्देश्य से मरने के लिए उद्यत हुआ है तो मैं अपनी निज की स्त्री के लिए प्रयत्न क्यों न करूँ? रावण अपनी लंका का वैभव स्वयं ही भोगे, वे तो सीता सहित वन में जीवन व्यतीत कर लेंगे । हे नाथ! वानरों के अधिपति सुग्रीव ने तुम्हारी हँसी उड़ा कर कहा था कि, लगता है तुम्हारा वह स्वामी किसी पिशाच अथवा तीव्र वायु रोग से ग्रसित हो गया है, इसलिए ऐसी बकवास कर रहा है । लगता है लंका में कुशल वैद्य नहीं है, अब संग्राम में लक्ष्मण ही तेरे स्वामी रावण के सर्व रोगों को हरेगा ।''

रावण अपने दूत के वचन सुनकर, चिंतित होकर दोनों गालों को हथेली पर रखकर नीचे मुख कर सोचने लगा कि, यदि युद्ध में शत्रुओं को जीतता भी हूँ तो भाई और दोनों पुत्रों की हानि दिखाई देती है । इसलिए जब शत्रु समूह सो जावे तब अज्ञात रूप से धावा देकर उनको वापिस ले आऊँ? अथवा क्या करूँ जिससे भाई और पुत्रों को शत्रुओं से मुक्त कराकर वापिस लंका ले आऊँ? तभी रावण ने विचार किया कि, में बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता हूँ जिससे देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ।

रावण का बहुरूपिणी विद्या सिद्धि

फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी पर्यन्त अष्टाह्निका महापर्व आया । रावण ने शीघ्र ही किंकरों को बुला कर आदेश दिया कि, शांतिनाथ जिनालय की उत्तम तोरण आदि से सजावट करो । नगर के समस्त जिनालयों में जिनदेव की पूजा की जाए । नन्दीश्वर पर्व में दोनों सेनाओं के लोग युद्ध नहीं करने का निश्चय करते हैं । रावण मंदोदरी को बुलाकर कहता है कि, ''हे प्रिये! यमदण्ड मंत्री आदि समस्त मंत्रियों को बुलाकर घोषणा

करवाओ कि, अष्टाह्निका पर्व के समय समस्त प्रजाजन नियम–संयम में तत्पर होकर दया से युक्त होवें । अन्य सब कार्य छोड़कर जिनदेव की पूजा करें, याचकों के लिए इच्छानुसार धन दिया जावे । यदि किसी नीच मनुष्य की ओर से अत्यधिक तिरस्कार भी किया जाए तो उसे सहन कर लेना । इन दिनों में जो कोई भी क्रोध करेगा या आदेश का पालन नहीं करेगा, वह मेरे द्वारा वध्य होगा । इस प्रकार आज्ञा प्रदान कर रावण अपने महल में जो सुवर्णमयी हजारों खम्बों से सुशोभित अतिशय ऊँचा शान्तिनाथ जिनालय था उसमें विद्या साधने की इच्छा से प्रवेश करता है । रावण ने वादित्रसहित अभिषेकों, अत्यन्त मनोहर मालाओं, धूपों, नैवेद्यों और उत्तम वर्ण के विलेपनों से श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की पूजा की । शुक्ल वस्त्र धारण किए हुए रावण ने मन, वचन, काय से श्री शान्तिनाथ भगवान को प्रणाम किया । रावण पुष्परागमणि से निर्मित भूमि पर शान्तिनाथ भगवान के सामने बैठ गया । उसके हाथों में स्फटिकमणि से निर्मित अक्षमाला थी । उसने नेत्र नासा के अग्र भाग पर केन्द्रित कर रखे थे । ऐसे धीर रावण ने विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ किया ।

बहुरुपिणी विद्या द्वारा अनर्थ नहीं हो अत: रावण की साधना में विघ्न लाना

'रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है' यह समाचार जब राम की सेना में सुनाई पडा तो सब विद्याधर राजा आपस में विचार विमर्श कर कहने लगे कि, 'यह बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिन में सिद्ध होती है और देवों का भी मद भञ्जन करने वाली है इसलिए यह विद्या जब तक रावण को सिद्ध नहीं होती है तब तक शीघ्र ही जाकर रावण को क्रोध उत्पन्न कराना चाहिए । सब विद्याधर श्रीराम के पास इस विषय में सलाह लेने जाते हैं । लेकिन श्रीराम स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि, ''जो नियम लेकर जिनमंदिर में बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना योग्य नहीं है ।''

हमारे स्वामी राम महापुरूष है ये अधम प्रवृति नहीं करेंगे ऐसा निश्चय कर विद्याधर राजा स्वयं तो लंका नहीं जाते हैं; परन्तु अपने–अपने कुमारों को

उपद्रव हेतु लंका की ओर रवाना कर देते हैं। सेना और शस्त्रों से सुसज्जित वे कुमार लंका में भयानक उत्पात मचाते हैं। रावण के राजमहल में भी सर्वत्र व्याकुलता कर देते हैं तब मंदोदरी के पिता राजा मय क्रोधित होकर रावण के महल में पहुँचते हैं; परन्तु मंदोदरी उन्हें रावण की आज्ञा का स्मरण करवाकर शान्त रहने के लिए कहती है। तब राजा मय अपने जिनालय में चले जाते हैं।

इसी बीच लोगों को भयभीत देख शान्ति जिनालय के शासनदेव दयालुचित्त हो कपि कुमारों को जिनालय में आने नहीं देते और नाना वेष धारण कर वानरों की सेना पर झपट पड़ते हैं और उन्हें क्षणभर में खदेड़ देते हैं। तब वानरों के हित में तत्पर रहने वाले देव जो शिबिर के जिनालयों में रहते थे वे भी युद्ध करने के लिए आ जाते हैं। अपने पक्ष के देवों को पराजित होते देख पूर्णभद्र और मणिभद्र ये दोनों यक्षेन्द्र कहते हैं कि, 'रावण तो आहार छोड़ ध्यान में बैठा है। शरीर से भी निस्पृह है और शान्त चित्त है फिर भी ये वानर पक्ष के लोग उसे मारने के लिए उद्यत हैं। हमें रावण पर हो रहे उपसर्ग को रोकना चाहिये।' यह कह कर दोनों यक्षेन्द्र वानर पक्ष के देवों से युद्ध करने के लिए उद्यत होते हैं। यक्षेन्द्रों को आया देखकर सभी कुमार और उनके सहायक देव अपने कटक में जा पहुँचे। उनका पीछा करते हुए दोनों यक्षेन्द्र उलाहना देने के अभिप्राय से राम के पास आये और कहने लगे कि, "आप तो महान धर्मात्मा तथा राजा दशरथ के पुत्र हो। अप्रशस्त कार्यों से सदा दूर रहते हो। आपकी सेना के लोगों ने लंका के लोगों को नष्ट भ्रष्ट किया है, तथा लंकापुरी को विध्वस्त कर दिया है। क्या यह कार्य उचित है?"

तब लक्ष्मण ने कहा कि, "दुष्ट रावण श्रीराम की प्रिया को कपटपूर्वक हरकर ले गया, फिर भी तुम उस पर दया कर रहे हो? हे यक्षराज! हमने तुम्हारा क्या अपकार किया है और रावण ने कौन सा उपकार किया है, जो तुम हम पर दोषारोपण करने यहाँ आए हो?" सुग्रीव दोनों यक्षेन्द्रों को सुवर्णपात्र से अर्घ्य देकर कहता है कि, "हम लंका में उपद्रव नहीं करेंगे। परन्तु सच बात तो यह

है कि, रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, हम उसे उत्तेजित कर विद्या सिद्धि में बाधा डालना चाहते हैं; क्योंकि रावण पहले ही बहुत बलवान है और यदि उसे विद्या सिद्ध हो गई तो उस पर विजय प्राप्त करना और भी कठिन हो जायेगा।'' तब यक्षेन्द्रों ने कहा, ''लंका में अणुमात्र भी पीड़ा नहीं करना और रावण के शरीर की कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न कराना।'' इतना कहकर वे दोनों यक्षेन्द्र अपने स्थान पर चले गये।

यक्षराज को शांत देख सुग्रीव पुत्र अंगद किष्किन्धकाण्ड हाथी पर सवार होकर नील आदि कुमारों के साथ लंका में आया। अंगद की सुन्दरता देख लंका की स्त्रियों में हलचल मच जाती है। रावण के अद्भुत सुन्दर महल में प्रवेश कर उसके भीतर रत्नजड़ित मंदिर की सुन्दरता का अवलोकन कर वह आश्चर्यचकित होता है। फिर अंगद कुमार शान्तिनाथ भगवान के उत्तम जिनालय में प्रवेश कर विधिपूर्वक वन्दना करता है। वह भगवान के सम्मुख अर्धपर्यङ्कासन में बैठे रावण को देखता है। रावण को देखते ही अंगद को क्रोध आ जाता है, वह तिरस्कारपूर्वक उससे कहता है कि, ''रे रावण! तूने जिनेन्द्र देव के सामने यह क्या कपट फैला रखा है? तुझ पापी को धिक्कार है।'' इस प्रकार अनेक कटु वचन कहकर अंगद ने उसी के उत्तरीय वस्त्र से उसे पीटा। रावण के हाथ से अक्षमाला लेकर तोड़ डाली, फिर धागे में पिरोकर उसके हाथ में दे दी। अंगद ने रावण के समीप उसके अन्त:पुर को व्याकुल कर दिया। उसने रावण से कहा– ''अरे नीच राक्षस! तूने माया से सीता का अपहरण किया था अब मैं तेरे देखते–देखते तेरी सब स्त्रियों का अपहरण करता हूँ। तेरी शक्ति हो तो प्रतिकार कर।'' इस प्रकार कहकर अंगद पट्टरानी मंदोदरी की चोटी पकड़कर खींच लाता है। 'अब यह राजा सुग्रीव की चमर ढ़ोरनेवाली होगी' ऐसा कहता है।

तब करुणाजनक विलाप करती हुई मंदोदरी रावण से बोलती है कि, ''हे नाथ! मेरी रक्षा करो। तुम्हारे इस पराक्रम को धिक्कार हो जो खड्ग से इस पापी का शिर नहीं काटते हो।'' यह सुनकर भी रावण मेरु के समान अचल

ध्यानस्थ रहा । तभी समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती एवं 'जय जय' शब्द का उच्चारण करती हुई बहुरूपिणी विद्या रावण के सामने खड़ी हो गई । वह कहने लगी– ''हे देव! मैं सिद्ध हो गई हूँ । आज्ञा दो, चक्रधर को छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोक को आपके आधीन कर सकती हूँ ।'' विद्या सिद्ध होने से रावण का ध्यान पूर्ण हो चुका था, वह मन्दिर की प्रदक्षिणा देता है । तब अंगद मंदोदरी को छोड़ आकाश में उड़कर राम के पास लौट आता है ।

रावण की अठारह हजार स्त्रियाँ एक साथ रूदन करती हुई कहती हैं कि, ''हे नाथ! आप के विद्यमान रहते हुए भी अंगद ने हमारा घोर अपमान किया है ।'' सबको सान्त्वना देकर रावण ने कहा कि, ''हे वल्लभाओं! वह दुष्ट मृत्यु के पाश में बद्ध हो चुका है । अब मुझे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई है । मैं कल ही रणाङ्गण में सुग्रीव को निर्ग्रीव, भामण्डल को तमोमण्डल और कीट के समान उन भूमिगोचरी राम–लक्ष्मण को नष्ट कर दूँगा ।''

बड़ी–बड़ी ऋद्धियों से सम्पन्न, विद्या के प्रभाव से एक बड़ी सेना बना रावण चक्ररत्न धारण करता हुआ प्रमद वन में सीता के पास गया । रावण का बल देख सीता विचार करती है– 'मैं बड़ी अभागिनी हूँ, जो युद्ध में राम–लक्ष्मण अथवा भाई भामण्डल के मरने का समाचार सुनूँगी । भय से काँपती हुई सीता के पास आकर रावण बोला कि, ''हे देवि! मैंने तुम्हें छल से हरा लेकिन यह उचित कार्य नहीं है । कर्म की दशा है । मैंने अनन्तवीर्य केवली की पादमूल में व्रत लिया है, 'जो स्त्री मुझे नहीं वरेगी, मैं उसके साथ रमण नहीं करूँगा ।' अब मेरे बाणों से तुम्हारा राम मरने वाला है इसलिए पुष्पक विमान में आरूढ़ हो, मेरे संग विहार करो ।''

रोते हुए सीता ने कहा कि, ''हे दशानन! युद्ध में जब राम तुम्हारे सामने आये तो उनसे कहना कि, हे राम! मैंने अभी तक प्राण नहीं छोड़े हैं सो आपके समागम की इच्छा से नहीं छोड़े हैं ।'' इतना कहकर वह मूर्च्छित हो गई । सीता की वैसी दशा देखकर रावण परम दु:खी हुआ और विचारने लगा कि, ''अहो!

इनका यह स्नेह कभी छूटने वाला नहीं है। मैं अत्यंत पापी हूँ। मैंने प्रेम से युक्त इस युगल का वियोग कराया। अपने कुल को कलंकित किया। जो सीता मुझे पहले मनोहर लगती थी आज वही विषकुंभ के समान प्रतीत हो रही है। हाय! मैंने विभीषण की बात क्यों नहीं मानी? यदि इस समय मैं राम को सीता सौंपता हूँ तो लोग मुझे कायर और शक्तिहीन कहेंगे।''

इस प्रकार अनेक संकल्प विकल्पों से सहित रावण ने निश्चय किया कि, मैं राम और लक्ष्मण को युद्ध में पराजित कर जीवित पकड़ लूँगा और बाद में बड़े वैभव के साथ सीता को उन्हें सौंप दूँगा। ऐसा करने से मुझे संताप भी नहीं होगा और लोकापवाद भी नहीं होगा। अत: रावण युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर अन्त:पुर चला जाता है।

मन्दोदरी द्वारा रावण को सम्बोधन; परन्तु रावण का क्रोधी होना

दूसरे दिन सूर्योदय होने पर रावण सभामण्डप में आता है। उसे देख सभी मंत्री आदि भयभीत हो जाते हैं। लाल-लाल नेत्रों को करता हुआ रावण शस्त्रागार में जाता है। वहाँ नाना प्रकार के अपशकुन होते हैं। मन्दोदरी मंत्रियो से रावण को समझाने के लिए कहती है तब वे कहते हैं कि, ''हे देवि! हमने दशानन को बहुत बार समझाया है; परन्तु वह अपनी हठ नहीं छोड़ते हैं।'' तब मन्दोदरी स्वयं रावण के पास जाकर कहती है कि, ''स्वामिन्! मेरे लिए पति की भीख देओ। उन्मार्ग पर गए चित्त को रोक लीजिए। सीतारूपी हठ छोड़ दीजिए।'' रावण ने कहा, ''हे कान्ते! तू व्यर्थ में भयभीत हो रही है। मैंने तुझे सीता की रक्षा करने में नियुक्त किया था, यदि तू इस कार्य को करने में असमर्थ है तो उसे मुझे सौंप दे।'' मन्दोदरी ने कहा- ''यदि आपका मुझ पर प्रेम भाव है तो परस्त्री से रति की याचना छोड़ दीजिए। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सीता को राम के पास लेकर जाती हूँ और तुम्हारे पुत्रों और भाई को मुक्त करा लाती हूँ। व्यर्थ हिंसा से क्या लाभ है?''

यह सुन रावण कुपित होकर कहता है- ''जा, जा, वहाँ जा, जहाँ मुझे तेरा मुख भी न दिखे। मेरी पट्टरानी होकर ऐसे दीन वचन कहती है। तेरे समान

दूसरी कोई कायर स्त्री नहीं है ।'' मन्दोदरी कहती है- ''हे नाथ! राम अष्टम बलभद्र है, लक्ष्मण अष्टम नारायण है । आपने दीर्घकाल तक सांसारिक सुख का भोग किया है, अब मुनिव्रत धारण कर अपने समस्त पापों का क्षय करो ।'' इतना कहकर मन्दोदरी रावण के चरणों में हाथ जोड़कर गिर पड़ती है ।

निर्भय रावण ने भयभीत मन्दोदरी से कहा- ''तू स्त्री पर्याय के स्वभाव अनुसार व्यर्थ चिंता कर रही है । तुमने जो कहा कि, ये दोनों बलभद्र और नारायण हैं, तो सिर्फ नाम मात्र से बलभद्र या नारायण होने से क्या होता है? युद्ध में इस नारायण नामधारी को मैं अनारायण बना दूँगा । तू चिंता मत कर । रात्रि के समय घर में सभी लोग 'कल ना जाने क्या होगा' इस आशंका से एक दूसरे से मिलते हैं ।

रावण का राम लक्ष्मण से युद्ध प्रस्थान में अपशकुन

सूर्योदय होते ही रावण युद्ध भूमि के लिए लंका से निकलता है । बहुरूपिणी विद्या के बल से एक हजार हाथियों से जुते ऐन्द्र नामक रथ पर आरूढ़ होता है । दश हजार विद्याधर राजाओं से घिरा रावण सुग्रीव और भामण्डल को देख कुपित होता हुआ उनके सन्मुख गया । रावण की दक्षिण दिशा में भालू अत्यंत भयंकर शब्द कर रहे थे । आकाश में गीध मँडरा रहे थे । ये अपशकुन मृत्यु को सूचित कर रहे हैं यह जानते हुए भी वे आगे बढ़े जाते हैं ।

अपनी सेना के मध्य में स्थित राम ने आश्चर्यचकित हो सैनिकों से पूछा कि, ''हे भद्र पुरुषों! इस नगरी के बीच में सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरों से अलंकृत बिजली के समान चमकने वाला, कान्तिमान कौन सा पर्वत है?'' सभी लोग उत्तर देने में असमर्थ थे पर बार-बार पूछने पर जाम्बुनद ने कहा कि, ''हे राम! बहुरूपिणी विद्या के बल से रावण ने इस महारथ का निर्माण किया है । अंगद ने जो लंका में जाकर रावण को क्रोध उत्पन्न कराने का असफल प्रयत्न किया था, उस कारण ही यह विद्या शीघ्र सिद्ध हो गई ।''

यह सुन लक्ष्मण ने सारथि से कहा कि, ''शीघ्र ही रथ लाओ ।'' सारथि ने रथ लाकर उपस्थित कर दिया । श्रीराम तथा लक्ष्मण क्रमश: सिंह तथा गरुड़ के रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध करने के लिए निकले । उनके साथ वानरवंशी भी अनेक आयुध से सुसज्जित हो कटक से बाहर निकले । राम लक्ष्मण के प्रस्थान करते समय विजयसूचक अनेक शुभ शकुन हुए । दोनों पक्षों में घोर युद्ध हुआ । अनेक योद्धा आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । हनुमान ने राक्षसों की बड़ी भारी सेना को उन्मत्त जैसा कर दिया तब मन्दोदरी के पिता मय ने आकर हनुमान पर प्रहार किया । हनुमान ने मय राजा को रथ रहित कर दिया । यह देख रावण ने बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित प्रज्वलितोत्तम रथ राजा मय के पास भेजा । तब राजा मय ने हनुमान के साथ युद्ध कर उसे रथ रहित कर दिया । तब वानरों की सेना भाग खड़ी हुई । हनुमान को शस्त्र रहित देख भामण्डल हनुमान की सहायता के लिए दौड़ा; परन्तु राजा मय ने उसे भी रथ रहित कर दिया । तब सुग्रीव सामने आता है लेकिन राजा मय उसे भी शस्त्र रहित कर देता है । यह देख क्रोध से भरा विभीषण राजा मय से युद्ध करता है । युद्ध करते-करते विभीषण का कवच टूट जाता है और उसके शरीर से रुधिर की धारा बहने लगती है । विभीषण की ऐसी अवस्था देख तथा वानरों की सेना को विह्वल, भयभीत और बिखरी हुई देखकर राम शीघ्रतापूर्वक राजा मय के सामने आते हैं । राम से बल पाकर सबका भय छूट गया और वानरों की सेना पुन: युद्ध करने के लिए उद्यत हुई । राम के अविरल बाण वर्षा से राजा मय विह्वल हो गया । तब राजा मय की ऐसी दशा देखकर रावण अत्यंत क्रोधित होकर और शस्त्र लेकर राम की ओर दौड़ा । लक्ष्मण ने उसे मध्य में ही रोककर कहा- ''अरे पापी! दुष्ट! चोर! परस्त्रीरूपी दीपक पर मर मिटने वाले लोभी पतंगे! कहाँ जाता है? खड़ा रह, खड़ा रह मुझसे युद्ध कर । धर्ममय बुद्धि को धारण करने वाले श्रीराम ने तुझ चोर का वध करने के लिए मुझे आज्ञा दी है ।''

तदनन्तर क्रोध से भरे रावण ने लक्ष्मण से कहा कि, ''अरे मूर्ख! मैं समस्त पृथ्वी का स्वामी हूँ, पृथ्वी पर सम्पूर्ण सुन्दर तथा उत्कृष्ट वस्तुएँ मेरी

हैं। जिस प्रकार हाथी का घण्टा कुत्ते के गले में शोभा नहीं देता उसी प्रकार योग्य वस्तु मेरे महल में ही शोभा देती हैं, तेरी झोपड़ी में नहीं। तू दीन है, रंक है, तुझसे मैं क्या युद्ध करूँ?'' लक्ष्मण ने कहा– ''अरे पापी! बहुत कहने से क्या लाभ? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ।'' इस प्रकार लक्ष्मण और रावण में भीषण युद्ध हुआ। युद्ध करते हुए दस दिन बीत गये। तदनन्तर चन्द्रवर्धन विद्याधर राजा की आठ कन्याएँ आकाश में विमान पर बैठी युद्ध देख रही थीं। तब एक अप्सरा ने उनसे कहा– ''लगता है लक्ष्मण में आप लोगों की अधिक भक्ति है।'' तब उन कन्याओं ने सीता स्वयंवर का समस्त वृत्तान्त सुना कर कहा कि, ''हमारे पिता ने हम सबका विवाह लक्ष्मण के साथ करना निश्चित किया था, इसलिए लक्ष्मण पर हमारा अनुराग है। लक्ष्मण इस समय महासंग्राम में विद्यमान है और इस संग्राम में लक्ष्मण की जो दशा होगी वही हमारी होगी, ऐसा हम सबने निश्चित किया है।'' उन कन्याओं के मनोहर वचन सुनकर लक्ष्मण ने ऊपर की ओर देखा। तब उन कन्याओं ने कहा कि, ''हे नाथ! तुम सब प्रकार से सिद्धार्थ हो। सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक अस्त्र का स्मरण आ गया। लक्ष्मण ने सिद्धार्थ महास्त्र से रावण के सब विघ्नविनाशक अस्त्र को नष्ट कर दिया।

लक्ष्मण के हाथों रावण की मृत्यु

तदनन्तर रावण बहुरूपिणी विद्या के बल से लक्ष्मण से युद्ध करने लगा। लक्ष्मण रावण का एक शिर काटता तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे। दो भुजाएँ कटती तो चार भुजाएँ हो जाती थी; अर्थात लक्ष्मण रावण की जितनी भुजाएँ और शिर काटते थे उससे दूने शिर और भुजाएँ रावण के प्रकट हो जाती थी। तब भी लक्ष्मण ने उन सब का वीरतापूर्वक निवारण किया। विद्यामयी युद्ध करते करते रावण जब आकुल व्याकुल हो गया तब उसने प्रलयकारी चक्ररत्न का स्मरण किया। स्मरण करते ही अपरिमित कान्ति का धारक, जो वैडूर्यमणि के हजार आरों से सहित था, हजार यक्ष जिसकी रक्षा करते थे,

यमराज के समान ऐसा चक्र रावण के हाथ में आ गया । लक्ष्मण ने सोचा अब तो मरना ही होगा, फिर भी धीर वीर लक्ष्मण ने रावण से कहा कि, ''हे नराधम! इस चक्र को पाकर भी कृपण के समान क्यों खड़ा है, यदि शक्ति है तो प्रहार कर?'' इतना सुनते ही रावण ने घुमाकर चक्ररत्न छोड़ा ।

सामने आते हुए चक्र को देखकर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणों से उसे रोकने की कोशिश करने लगे । राम एक हाथ से वज्रावर्त धनुष से और दूसरे हाथ में हल से, सुग्रीव गदा से, भामण्डल तलवार से, विभीषण त्रिशूल से, हनुमान उल्का, मुद्गर, लांगूल तथा कनक आदि से, अंगद परिघ से, अंग कुठार से और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र- शस्त्रों से एक साथ मिलकर चक्र को रोकने की कोशिश करने लगे; परन्तु रोकने में समर्थ न हो सके । भाग्य की बात देखो कि, चक्ररत्न लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उसके हाथ में आकर रुक गया ।

लक्ष्मण के हाथ में चक्र आया देखकर समस्त मित्रवर्ग विद्याधर राजाओं में हर्ष छा जाता है । इस आश्चर्यजनक घटना को देख वे सब कहने लगे कि, ''पूर्व में अनन्तवीर्य केवली ने कहा था लक्ष्मण अष्टम नारायण और श्रीराम अष्टम बलभद्र हैं, उनका कथन सत्य प्रमाणित हुआ है ।'' लक्ष्मण के हाथ में चक्र देख रावण विचारने लगा कि, मुझसे अनन्तवीर्य केवली ने कहा था वह सत्य हुआ । आश्चर्य है कि, युद्ध में भूमिगोचरियों ने मुझे जीत लिया । इस राज्यलक्ष्मी को धिक्कार है । संसार में वही पुरुष धन्य है जो इस राज्य को विषमिश्रित अन्न के समान छोड़कर रत्नत्रय की आराधना कर के परम पद प्राप्त करते हैं ।

लक्ष्मण ने विभीषण की ओर देखकर रावण से कहा कि, ''हे विद्याधरों के पूज्य! यदि अब भी तुम सीता को सौंप कर यह वचन कहो कि मैं राम के प्रसाद से जीवित हूँ, तो तुम्हारी राज्यलक्ष्मी तुम्हारे पास रहेगी ।'' रावण मन्द हास्य कर बोला कि, ''तू व्यर्थ ही गर्व कर रहा है । अरे नीच! मैं रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ।'' तब लक्ष्मण ने कहा कि, ''इस विषय में बहुत

कहने से क्या लाभ है? मैं तुम्हें मारने वाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ।'' रावण ने व्यङ्गपूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि, ''तू क्या इच्छा मात्र से नारायण बन गया? तेरे पिता ने तुझे घर से निकाल दिया। वन-वन भटकता रहा, अब निर्लज्ज हो नारायण बनने चला है। तू इस अलातचक्र से कृत्यकृत्यता को प्राप्त हुआ है। मैं आज तुझे इन पापी विद्याधरों के साथ, चक्र के साथ और वाहन के साथ पाताल भेजता हूँ।'' यह वचन सुन नारायण लक्ष्मण ने क्रोध वश रावण की ओर चक्ररत्न फेंका। क्रोध से भरे रावण ने बाणों से, तीक्ष्ण दण्ड से, वेगशाली वज्र से, चन्द्रहास खड्ग से उस चक्ररत्न को रोकने का प्रयास किया; परन्तु चक्ररत्न नहीं रुका और उसने रावण के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर दिया। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने स्वामी को प्राण रहित भूमि पर पड़ा देख राक्षसवंशी सेना भागने लगी तब भामण्डल, हनुमान, सुग्रीव ने उन्हें धैर्य बँधाकर निर्भय किया।

अपने भाई को प्राणरहित देख विभीषण को बहुत शोक हुआ। तीक्ष्ण छुरी से वह आत्मघात करने को उद्यत हुआ। राम ने तत्काल अपने रथ से उतर कर उसको अपने वक्ष से लगा लिया। विभीषण मूर्च्छित हो गया। पुनः जब सचेत हुआ तब विलाप करने लगा कि, ''हे भाई! तुमने मेरे हितकारी वचन क्यों नहीं सुने? शोकरूपी सागर में डुबे हुए मुझे सान्त्वना दो।'' जब रावण की मृत्यु का समाचार उसके रनिवास में पहुँचा, तब मन्दोदरी आदि अठ्ठारह हजार रानियाँ रणभूमि में आकर रावण से लिपटकर करुणाजनक विलाप करती हुई रोने लगती हैं। राम, लक्ष्मण, भामण्डल, हनुमान आदि सबको सान्त्वना देते हैं।

पद्म सरोवर पर रावण का अन्त्यसंस्कार

श्रीराम ने कहा कि, ''विद्वानों का वैर तो मरणपर्यंत ही होता है। अतः अब रावण के साथ वैर किस बात का? चलो, उसका दाह संस्कार करें।'' राम की बात का सब समर्थन करते हैं। तदनन्तर कपूर, गोशीर्ष, अगरू और चन्दन आदि उत्तम पदार्थों से रावण का अन्त्यसंस्कार कर सब पद्म सरोवर पर गये।

राम ने सरोवर के किनारे बैठकर कहा की, ''सब सामन्तों के साथ कुम्भकरणादि छोड़ दिये जाये। विद्याधर राजाओं ने राम की इस बात का विरोध किया तब राम ने कहा कि, ''सोते हुए, बँधन में बंधे हुए, नम्रीभूत, भयभीत तथा दाँतो में तृण दबाये हुए आदि योद्धा मारने योग्य नहीं हैं। यह क्षत्रिय धर्म है।''

श्रीराम की आज्ञा पाकर जब शूर-वीर मेघवाहन, इन्द्रजित, कुम्भकरण और मय आदि अनेक उत्तम विद्याधर राजाओं को बन्धनमुक्त करने के लिए जाने लगे, तब वानरवंशियों को कुछ शंका हुई कि, कहीं रावण की जलती हुई चिता को देखकर इन सबको क्रोध आ जाय और वे युद्ध के लिए उद्यत हो जावें। विभीषण का भी कोई विश्वास नहीं है कदाचित भाई और रावण के पुत्रों से मिलकर दुख से संतप्त रहने वाले इस विभीषण को कोई विकार उत्पन्न हो जाये। तभी भामण्ड़ल आदि के द्वारा कुम्भकर्णादि राम लक्ष्मण के पास लाये गये। वे सभी राग-द्वेष से रहित हो हृदय से मुनिपना को प्राप्त हो चुके थे। उन्होंने राम लक्ष्मण से कहा कि, ''आप लोगों का धैर्य, गाम्भीर्य, बल सभी उत्कृष्ट हैं। आपने देवों द्वारा अजेय ऐसे रावण को मृत्यु प्राप्त करा दी।'' लक्ष्मण ने उनसे कहा कि, ''आप सब पहले की तरह भोगोपभोग करते हुए आनंद से रहिये।'' परन्तु उनका मन भोगोपभोग और संसार से उदासीन हो गया था। राम ने उन्हें बन्धनमुक्त कराया। बन्धनमुक्त कुम्भकर्णादि ने पद्म सरोवर में स्नान किया, पश्चात् वे सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। लंका में सर्वत्र शोक फैल गया।

रावण की मृत्यु के बाद अनन्तवीर्य मुनिश्री का लंका आगमन

जिस दिन रावण की मृत्यु हुई थी उसी दिन के अंतिम प्रहर में अनन्तवीर्य मुनिराज महासंघ के साथ लंका नगरी में आये। छप्पन हजार आकाशगामी मुनियों के साथ वे कुसुमायुध उद्यान में ठहरे। यदि रावण के जीवित रहते हुए वे महामुनि लंका आये होते तो लक्ष्मण के साथ रावण की घनी प्रीति होती, क्योंकि जिस देश में ऋद्धिधारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते

हैं वहाँ दो सौ योजन तक की पृथ्वी स्वर्ग के समान सब प्रकार के उपद्रवों से रहित होती है और उनके निकट रहने वाले सभी जीव वैर रहित हो जाते हैं ।

इन्द्रजित, मेघवाहन, कुम्भकर्ण आदि दीक्षा धारण करके मोक्ष गये हैं

निर्मल शिलातल पर शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हुए उन मुनिराज को उसी रात्रि में केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है । देवगण लंका में अनन्तवीर्य मुनिराज का केवलज्ञान महोत्सव मनाने अर्ध रात्रि में आ जाते हैं । श्रीराम, लक्ष्मण, इन्द्रजित, मेघवाहन, कुम्भकर्ण आदि अनेक वानरवंशी और राक्षसवंशी विद्याधर केवली भगवान के दर्शनार्थ जाते हैं । वहाँ केवली की दिव्यध्वनि श्रवणकर इन्द्रजित और मेघवाहन ने उनसे अपने पूर्वभव पूछे । तब इसके उत्तर में उन्होंने इन्द्रजित, मेघवाहन और मन्दोदरी का पूर्व परिभ्रमण का वृत्तान्त सुनाया जिसे सुनकर दोनों भाई (इन्द्रजित और मेघवाहन) दीक्षा लेकर मुनि हो गये । कुम्भकर्ण, मारीचि, राजा मय (मन्दोदरी के पिता) आदि अन्य अनेक विद्याधर, राजाओं सहित संसार से विरक्त हो मुनि हो गये । कुम्भकर्ण, इन्द्रजित और मेघवाहन युद्ध में नहीं मारे गये ।

मन्दोदरी आदि ४८ हजार स्त्रियों की दीक्षा

मोह के वशीभूत होकर पट्टरानी मन्दोदरी अपने पति के मरण से तथा पुत्रों के दीक्षा धारण करने के कारण विलाप करते हुए कहने लगी– ''हे पुत्रों! तीव्र दुःख से संतप्त माता की उपेक्षा कर तुम लोगों ने दीक्षा क्यों ले ली? हे पिता! तुभ भी पुत्री को शोक अवस्था में छोड़कर मुनि हो गये । पिता, पति और पुत्र ये ही स्त्रियों के रक्षक हैं, अब मैं किसकी शरण में जाऊँ?'' तब शशिकान्ता आर्यिका ने उसे समझाया । आर्यिका का उपदेश श्रवण कर और संसार की असारता का मन में चिन्तवन करती हुई मन्दोदरी ने, चन्द्रनखा (रावण की बहन) ने अड़तालीस हजार स्त्रियों के साथ शशिकान्ता आर्यिका से दीक्षा ले ली ।

लंका में राम सीता का मिलाप समागम

श्रीराम और लक्ष्मण ने समस्त वानरवंशी विद्याधरों के साथ लंका में

प्रवेश किया । श्रीराम के रूप, धैर्य, पुण्यवैभव को देखकर लंका की जनता परस्पर में उनकी प्रशंसा कर रही थी, सीता के सौभाग्य को सराह रही थी । राजमार्ग से चलकर राम उस वाटिका में पहुँचते हैं जहाँ सीता स्थित थी । चिरकाल के बाद प्राणनाथ श्रीराम का मुखकमल देख सीता को ऐसा लगा मानो वह दिवास्वप्न देख रही है । उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था; परन्तु श्रीराम को निकट आते देख कर वह कमल की तरह प्रफुल्लित हो उठी । आल्हाद से गदगद होकर प्रणाम करने वह राम के चरणों में गिर पड़ी । पुरुषोत्तम श्रीराम ने तत्काल अपने दोनों हाथों से सीता को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया । सीता कल्पवृक्ष की बेल की तरह श्रीराम से लिपट गई । सीता और श्रीराम का मिलाप देखकर आकाश में स्थित देवों ने उन पर पुष्पवृष्टि और गंधोदक की वर्षा की ।

लक्ष्मण सीता के चरण युगल को नमस्कार कर सामने खड़े हो जाते हैं । भामण्डल भी स्नेहपूर्वक बहन सीता से मिलता है । सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, अंगद, विराधित, जाम्बूनद आदि समस्त विद्याधर अपना-अपना परिचय देकर सीता को नमस्कार करते हैं । वे सब सीता को कल्पवृक्षों के सुगंधित पुष्पों की माला एवं सुंदर वस्त्राभूषण भेट करते हैं । वे कहते हैं कि, ''हे देवि! तुम देवों के द्वारा स्तुत्य हो, तुम्हारा शरीर मंगलरूप है, तुम बलदेव श्रीराम के साथ चिरकाल तक जयवंत रहो ।''

तदनन्तर श्रीराम सीता के साथ हाथी पर आरूढ़ होकर रावण के महल में गये । महल के भीतर भगवान शान्तिनाथ का अनुपम चैत्यालय देखकर हाथी से उतरकर भक्तिपूर्वक स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने चैत्यालय में प्रवेश किया । भक्तिपूर्वक स्तुति, वन्दना कर सब एक स्थान पर बैठ गये । विभीषण परिवार में सबको सम्बोधन कर सान्त्वना देकर अपने राजमहल में चले गये ।

राजमहल में जाकर व्यवहार कुशल विभीषण ने अपनी पट्टरानी विदग्धा जो एक हजार स्त्रियों में प्रधान थी, उसे श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को निमंत्रण देने के लिए भेजते हैं । वे स्वयं भी श्रीराम के समीप पहुँचकर उन्हें वादित्रों सहित आदरपूर्वक महल में ले आते हैं । रत्नों से अर्घ्य देकर उनका सत्कार करते

हैं। सीता सहित राम और लक्ष्मण ने विभीषण के भवन में प्रवेश किया और भवन के मध्य में श्री पद्मप्रभु भगवान के मंदिर का सबने दर्शन किया। पूजा के पश्चात् विभीषण ने श्रीराम, लक्ष्मण, सीता तथा विशल्या को षट्रसयुक्त भोजन कराया तथा अन्य समस्त विद्याधरों को भी भोजन कराके यथोचित सम्मान कर के संतुष्ट किया।

राम और लक्ष्मण का क्रमश: बलदेवत्व और अर्धचक्रवर्तित्व पद की प्राप्ति के कारण विभीषण उनका अभिषेक करने की इच्छा प्रकट करते हैं; परन्तु श्रीराम कहते हैं कि, ''पिता दशरथ के द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ था ऐसा भरत अयोध्या में विद्यमान हैं उसी का राज्याभिषेक होना चाहिए।'' तब विभीषण कहते हैं कि, ''राजा भरत अत्यंत धीर, वीर और गंभीर हैं, आपके भक्त हैं। अतएव विकार को प्राप्त नहीं होंगे।'' इस प्रकार युक्तिपूर्ण वचनों से उन्हें संतुष्ट कर सबने श्रीराम और लक्ष्मण का अभिषेक किया। कुछ काल व्यतीत होने पर राम लक्ष्मण ने अपनी समस्त विवाहित पत्नियों को, जिन्हें वनवास के समय प्राप्त किया था उन्हें बुला लेते हैं। वे सब आनंद से लंका में निवास करते हैं। श्रीराम लक्ष्मण को लंका में रहते हुए छह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं।

इधर इन्द्रजित, मेघवाहन और कुम्भकर्ण मुनिराज शुक्लध्यान में आरूढ़ होकर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। जम्बुमाली मुनि अहमिन्द्र पद को प्राप्त करते हैं। भविष्य में ऐरावत क्षेत्र से सिद्ध पद प्राप्त करेंगे। मन्दोदरी के पिता राजा मय कठिन तप के प्रभाव से चारण मुनि होकर अनेक क्षेत्रों की वन्दना करते हुए आयु के अन्त में मरकर देव हुये। मारीचि मुनि कल्पवासी देव हुए।

अयोध्या में राम के आगमन की तैयारी

अयोध्या में पुत्र के विरह से आतुर कौशल्या निरन्तर दु:खी रहती है। वन में राम और लक्ष्मण को अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे होंगे यह विचार कर वह रोने लगती है। उसी समय नारद आकाश से उतरकर उसके पास जाते हैं तथा रोने का कारण पूछते हैं?

कौशल्या नारद को अयोध्या में अब तक जो भी घटनाएँ हुयी थी, उनका विस्तार से वर्णन करती है। राजा दशरथ की दीक्षा, राम लक्ष्मण व सीता का वनवास, सीता हरण, लक्ष्मण को शक्ति लगना, विशल्या को वहाँ पहुँचाना आदि।

नारद कहते हैं कि, ''हे देवी! मैं शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए उनका समाचार लाता हूँ।'' और नारद लंका की ओर चल पड़ते हैं। लंका जाकर नारद किसी पुरुष से, रावण की कुशलता पुछते हैं। तब वह पुरूष कहता है– ''रावण के वर्ग का तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँ से आ गया और उसे अंगद के पास ले जाते हैं। अंगद के सामने नारद ने कहा कि, ''मुझे रावण से कोई कार्य नहीं है।'' अंगद ने हँसकर कहा कि, ''इसे शीघ्र ही पद्मनाभ के दर्शन कराओ।'' सेवक जब बलपूर्वक खींचकर नारद को ले जाने लगे तब वह सोचते हैं कि, 'यह पद्मनाभ कौन है? हे देवि मेरी रक्षा करो।' लेकिन जब विभीषण के महल में दूर से ही राम को देखते हैं, तो परम हर्ष को प्राप्त होते हैं। राम उनका आदर सत्कार करते हैं। नारद राम से कहते हैं कि, ''आपकी माता कौशल्या और लक्ष्मण की माता सुमित्रा आपके दु:ख से बहुत व्याकुल हो रही हैं। यदि आप शीघ्र ही उनके दर्शन नहीं करते हैं तो उनके प्राण छूट जायेंगे।'' यह सुन राम लक्ष्मण अयोध्या की ओर जाने को तैयार हो जाते हैं, पर विभीषण राम के चरणों में मस्तक झुकाकर, सोलह दिन तक और लंका में ठहरने की प्रार्थना करता है। राम जिस किसी तरह विभीषण की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। इसी बीच विभीषण, विद्याधर कारीगरों को भेजकर अयोध्या पुरी का नवनिर्माण कराता है। भरपूर रत्नों की वर्षा करता है और विद्याधर दूत भेजकर राम लक्ष्मण की कुशल वार्ता भरत के पास भेजता है।

राम, सीता और लक्ष्मण का वापस अयोध्या प्रवेश

राम, लक्ष्मण और सीता सोलह दिन के बाद पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर सूर्योदय के समय लंका से अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। श्रीराम मार्ग में आने वाले विशिष्ट–विशिष्ट स्थानों का सीता को परिचय देते हैं।

अयोध्या के समीप आने पर भरत बड़े हर्ष के साथ उनका स्वागत करते हैं। अयोध्यावासी नर-नारियों के उल्लास का पार नहीं रहता। राम लक्ष्मण के साथ सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, भामण्डल तथा विराधित आदि भी अयोध्या आते हैं। श्रीराम उनका परिचय सबको देते हैं। कौशल्या आदि चारों माता, राम, लक्ष्मण व सीता को देखकर परम हर्ष को प्राप्त होती हैं और वे भी उनके चरणस्पर्श कर आशीर्वाद लेते हैं। उस समय उन्हें जो सुख प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हीं को हो रहा था, अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं।

भरत यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियों के स्वामी थे, भोगोपभोग से परिपूर्ण सुन्दर महलों में उनका निवास था; तथापि वह संसार से सदा विरक्त रहते थे। एक दिन भरत मन में विचार करते हैं कि, मैं इन भोगों को भोगता हुआ थक गया हूँ, अब इस राजमहल में मेरा मन नहीं लगता है। वह वन में तपस्या करने के लिए उद्यत होते हैं; परन्तु लक्ष्मण उनका हाथ पकड़कर रोक लेते हैं। माता केकयी विलाप करने लगती है। भरत की स्त्रियाँ भी रुदन करती हैं तभी राम और लक्ष्मण की अनेकों स्त्रियाँ वहाँ आ जाती हैं और कहती हैं, ''देवरजी! हम आपके साथ जलक्रीड़ा करना चाहती हैं। आप भौजाईयों के समूह की यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये। जिसका चित्त तत्त्व के चिन्तन में लगा हुआ था, क्रीड़ा से निस्पृह था ऐसा भरत केवल भाभियों के अनुरोध से ही जलक्रीड़ा के लिए गया था।

त्रिलोकमंडन हाथी को जातिस्मरण

इसी बीच, राम लक्ष्मण जिस त्रिलोकमण्डन हाथी को लंका से अयोध्या लेकर आये थे, वह खम्भे को तोड़कर अपने निवास स्थान से बाहर निकल गया। उसकी विशाल गर्जना से सभी लोग भयभीत हो गये। इधर-उधर भागने लगे। वह हाथी गोपुर को तोड़कर भरत की ओर आया। सभी स्त्रियाँ भयग्रस्त होकर भरत के समीप आ गयीं। विद्याधर महावत भी उस हाथी को नहीं रोक

पा रहे थे । हाथी क्रोधपूर्वक चिंघाड़ रहा था । जैसे ही हाथी भरत के पास आया उसे अपना पूर्व भव का स्मरण हो गया । हाथी सूँड को शिथिल कर के, भरत के आगे विनयपूर्वक बैठ गया । वह अत्यन्त शान्तचित्त हो गया और विचारने लगा कि, यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में मेरा मित्र था । यह पुण्य के कारण उत्तम मनुष्य हुआ तथा मैं निन्दित कार्य करता हुआ, इस तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुआ हूँ । अब मैं वह कार्य करता हूँ जिससे आत्महित की प्राप्ति हो । इस प्रकार वह हाथी महावैराग्य को प्राप्त हुआ और भरत के समीप बैठकर शुभ भावों में स्थित हो गया।

राम लक्ष्मण ने धीरे से उस हाथी के पास जाकर उसे अपने वश में कर लिया । तत्पश्चात् राजा भरत ने सीता व विशल्या के साथ त्रिलोकमण्डन हाथी पर सवार होकर राजमहल की ओर प्रस्थान किया । चार दिन के बाद महावत ने आकर राम लक्ष्मण के सामने त्रिलोकमण्डन हाथी की दुःखमय अवस्था को बताया । वह हाथी न ग्रास खाता है, न शब्द करता है, न ही विहार करता है और न ही जल की इच्छा करता है । सब कार्य छोड़ वह शिथिल शरीर धारण कर के ध्यान की अवस्था में आरूढ़ रहता है । यह सब सुन राम लक्ष्मण भी चिन्तित हो जाते हैं कि, किस कारण से वह उदासीन अवस्था को प्राप्त हुआ है ।

अयोध्या में केवली देशभूषणजी, कुलभूषणजी का आगमन, भरत की दीक्षा तथा हाथी के पूर्वभवकथन

अयोध्या के महेन्द्रोद्यान में अनेकों मुनियों सहित भ. श्री देशभूषण और कुलभूषण केवली आते हैं । सर्वत्र आनन्द छा जाता है । राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाई, चारों माताएँ, रानियाँ, सुग्रीव आदि विद्याधर मुनिराज के दर्शन के लिए जाते हैं । वहाँ जाकर उनका धर्मोपदेश सुनते हैं । उसी बीच लक्ष्मण मुनिराज से पूछते हैं कि, ''हे प्रभो! त्रिलोकमण्डन गजराज खम्भे को तोड़कर किस कारण क्षोभ को प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही

शान्त हो गया ।'' देशभूषण केवली कहते हैं कि, ''भगवान ऋषभदेव के समय अयोध्या नगरी में दो भाई सूर्योदय और चन्द्रोदय रहते थे । वे दोनों ऋषभदेव के साथ जिनधर्म में दीक्षित हुए । किन्तु बाद में अभिमान से प्रेरित होकर महाव्रत छोड़कर भरत चक्रवर्ती के पुत्र मारीचि के द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मत में दीक्षित हो गये । जिस के फलस्वरूप संसार के दु:ख से दु:खी हो कर्मों का फल भोगते हुए, चिरकाल तक संसार में भ्रमण करते रहें । एक बार चन्द्रोदय के जीव ने सम्यग्दर्शन सहित चौंसठ हजार वर्षों तक घोर तप किया । आयु के अन्त में समाधिमरणपूर्वक मरकर ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्ग में देव हुआ । वहीं से च्युत होकर चरमशरीरी भरत हुआ है ।

सूर्योदय का जीव 'मृदुमति' नाम का मनुष्य हुआ । मृदुमति जुआ, चोरी, वेश्या सेवन में रत रहता था । एक दिन राजा नन्दिवर्धन के राजमहल में वह चोरी करने गया । वहाँ राजा द्वारा अपनी रानियों को दिया जा रहा वैराग्यवर्धक धर्मोपदेश सुनता है और प्रतिबोध को प्राप्त होता है । वह जिनदीक्षा धारण कर लेता है और कठोर तपस्या करता है ।

गुणनिधि नामक एक मुनिराज ने दुर्गगिरी नामक पर्वत के शिखर पर आहार का परित्याग कर चार माह के लिए वर्षायोग धारण किया । सुर और असुरों ने उनकी स्तुति की तथा वे चारणऋदि के धारक धीर, वीर मुनिराज चार माह का नियम समाप्त कर कहीं विधिपूर्वक आकाश मार्ग से चले गए । संयोग की बात है कि, तभी मृदुमति मुनिराज आलोकनामा नगर में आ गये । सो राजा सहित नगरवासी लोगों ने यह जानकर कि, ये वे ही महामुनि हैं, जो पर्वत के अग्रभाग पर स्थित थे । उन्हें आते देख संभ्रम से भक्ति सहित उनके दर्शन किये, उनकी पूजा की और नाना प्रकार का आहार देकर संतुष्ट किया । नगरवासी लोगों ने उनसे कहा की, आप वहीं मुनिराज हो जो पर्वत के अग्रभाग पर स्थित थे, तथा देवों ने जिनकी वन्दना की थी और जिन्होंने चार माह तक आहार का परित्याग किया था । इस प्रकार कहने पर उन्होंने अपना सिर नीचे कर लिया; किन्तु यह नहीं कहा कि, मैं वह नहीं हूँ । इस प्रकार भोजन के स्वाद में लीन

मृदुमति मुनिराज ने अज्ञान अथवा अभिमान के कारण दुःख के बीजस्वरूप मायाचारी की। उन्होंने गुरु के आगे अपनी यह माया शल्य नहीं निकाली। मरण कर वह उसी ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में गये जिस में भरत का जीव था। वहाँ दोनों में घनिष्ट मित्रता थी। वहाँ से च्युत होकर मायाचार के कारण त्रिलोकमण्डन हाथी हुआ। अत्यन्त उत्कट बल को धारण करने वाला यह हाथी पहले तो बन्धन का खम्भा उखाड़ कर क्षोभ को प्राप्त हुआ; परंतु बाद में भरत को देखने से पूर्वभव का स्मरण कर शान्त हो गया।

भरत आदि की दीक्षा तथा केवलज्ञान

देशभूषण केवली के मुख से अपने भवान्तर सुन भरत का वैराग्य उमड़ पड़ता है और वे उन्हीं देशभूषण केवली के पास दीक्षा ले लेते हैं। भरत के अनुराग से प्रेरित हो एक हजार से भी कुछ अधिक राजा दिगम्बर दीक्षा धारण कर लेते हैं। भरत के दीक्षित हो जाने पर उसकी माता केकयी बहुत दुःखी होती है। राम लक्ष्मण उसे सान्त्वना देकर शान्त करते हैं। पर वह संसार से इतनी विरक्त हो जाती है कि तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमति आर्यिका के पास दीक्षा ग्रहण कर लेती है।

त्रिलोकमण्डन हाथी का अणुव्रत तथा सल्लेखना

त्रिलोकमण्डन हाथी ने देशभूषण केवली से अणुव्रत धारण किये। वह एक पक्ष अर्थात १५ दिन अथवा एक मास आदि का उपवास करता था, तथा उपवास के बाद अपने आप गिरे हुए सुखे पत्तों से दिन में एक बार पारणा करता था। लोग पारणा के दिन उसके लिए बड़े सत्कार के साथ मीठे-मीठे लड्डू और नाना प्रकार की पूरियाँ देते थे। जिसके शरीर और कर्म दोनों ही अत्यन्त क्षीण हो गये थे ऐसे उस हाथी ने चार वर्ष तक उग्र तप किया और धीरे-धीरे भोजन का परित्याग कर के सल्लेखनापूर्वक मरण कर के ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में गया। तथा महाव्रती, निस्पृही धीर, वीर भरत महामुनिराज लोक अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं।

राम लक्ष्मण का राज्याभिषेक

भरत के दीक्षा ले लेने के कारण लक्ष्मण अपने आपको सुना–सा मानते हैं । सभी राजा आपस में विचार विमर्श कर राम के पास आकर कहते हैं कि, ''हे नाथ! हम ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी । हम लोगों पर प्रसन्न होइये और राज्याभिषेक की स्वीकृति दीजिये ।'' राम कहते हैं कि, ''सभी गुणों व ऐश्वर्य को धारण करने वाला राजाओं का राजा लक्ष्मण प्रतिदिन हमारे चरणों में नमस्कार करता है, तो हमें राज्य की क्या आवश्यकता है? आप लोग लक्ष्मण का राज्याभिषेक कीजिये ।'' सभी लोग लक्ष्मण के पास आते हैं और नमस्कार कर लक्ष्मण को राज्याभिषेक स्वीकृत करने की बात बोलते हैं । इसके उत्तर में लक्ष्मण राम के पास आते हैं । बड़े महोत्सव के साथ बलभद्र राम और त्रिखण्डाधिपति नारायण लक्ष्मण साथ–साथ अभिषेक के आसन पर आरूढ़ होते हैं और दोनों का विधिपूर्वक अभिषेक होता है । उसके पश्चात विद्याधर राजाओं ने राम की पट्टरानी सीता और लक्ष्मण की महादेवी विशल्या का भी अभिषेक किया । तदनन्तर राम ने विभीषण के लिए 'त्रिकूटाचल' के शिखर का, सुग्रीव को 'किष्किन्धा' पर्वत का, हनुमान को 'श्री पर्वत' का, विराधित को 'श्रीपुर' नगर, नल व नील को 'किष्किन्धपुर' का विशाल साम्राज्य दिया । भामण्डल को 'रथनुपुर' का और रत्नजटी को 'देवोपुनीत' नगर का राजा बनाया । शेष लोग भी यथायोग्य देशों के स्वामी बनाये गये । पश्चात् सभी राजा अपने अपने चिरस्थाई राज्य में चले गए ।

शत्रुघ्न का मथुरा पर विजय, मधुराजा की दीक्षा, चमरेन्द्र का प्रकोप महामारी

राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न से कहते हैं कि, तुम्हें जो देश इष्ट हो उसे ले लो । शत्रुघ्न मथुरा लेने की इच्छा प्रकट करता है । इस पर राम और लक्ष्मण मथुरा के राजा मधुसुन्दर की बलवत्ता का वर्णन कर, अन्य कुछ लेने की प्रेरणा करते हैं; परन्तु शत्रुघ्न नहीं मानता । राम लक्ष्मण बड़ी सेना के साथ, शत्रुघ्न को

मथुरा की ओर रवाना करते हैं पर मंत्रियों का समूह चिंतित था कि, क्या यह बालक महाशक्तिशाली विद्याधरों के द्वारा भी दु:साध्य राजा मधु को कैसे जीत सकेगा? मंत्रीजनों के आदेश से गुप्तचर मथुरा नगरी जाते हैं। लौटकर विधिपूर्वक सब समाचार देते हैं कि, मथुरा नगरी में अत्यंत सुन्दर कुबेरच्छन्द नाम के उपवन में, राजा मधु अपनी जयंती नाम की महादेवी के साथ छह दिन से, सब कार्य छोड़कर निवास कर रहा है। उसे आपके आगमन की सूचना नहीं है।

शत्रुघ्न अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर जब सब लोग निद्रा मग्न थे तब मथुरा के द्वार में प्रवेश करता है और फिर वह राजा मधु के घर में घुसकर दिव्य आयुधशाला को अपने नियंत्रण में कर लेता है। शत्रुघ्न को मथुरा में प्रविष्ट जानकर महाबलवान मधुसुन्दर क्रोध से उद्यान से बाहर निकलता है। नाना उपाय करने पर भी वह मथुरा में प्रवेश नहीं कर पाता है। वह उस समय शूल से रहित था; परन्तु अभिमानी होने के कारण शत्रुघ्न से सन्धि की प्रार्थना नहीं करता है। दोनों की सेना में युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। शत्रुघ्न राजा मधु के बाण और कवच छेद डालता है जिससे वह घायल हो जाता है। मधु शत्रु को दुर्जेय देखकर विचार करता है कि, मेरा अंत होने वाला है। उस समय उसे मुनियों के वचन याद आ जाते हैं। महा संवेग से भरा, ध्यान पर आरूढ़, राजा मधु अंतरंग व बहिरंग दोनों परिग्रहों को छोड़ देता है और हाथी पर बैठे-बैठे अपने केश उखाड़कर फेंक देता है। यह देख शत्रुघ्न उन्हें नमस्कार करता है, और कहता है मुझ पापी के लिए आप क्षमा प्रदान कीजिये। राजा मधु समाधिमरण धारण करके क्षण मात्र में ही सानत्कुमार स्वर्ग में उत्तम देव होता है। और इधर उत्तम तेज का धारक शत्रुघ्न बड़ी प्रसन्नता से मथुरा में रहने लगता है।

मधुसुन्दर का वह दिव्य शूलरत्न यद्यपि अमोघ था; परन्तु शत्रुघ्न के प्रभाव से निस्तेज हो गया था। खेद और शोक को धारण करता हुआ वह अपने स्वामी चमरेन्द्र के पास चला जाता है। शूलरत्न के द्वारा मधु के मरण का समाचार जानकर चमरेन्द्र क्रोधित होकर पाताल से निकलकर मथुरा जाता है। वहाँ पहुँच कर, वह समस्त लोगों को उत्सव करते देखता है, तो विचार करता

है यह लोग बहुत दुष्ट हैं जो अपने स्वामी के मरण होने पर उत्सव मना रहें हैं। क्रोधित होकर वह मथुरा नगरी में महामारी फैला देता है। उपसर्ग देखकर कुलदेवता शत्रुघ्न को अपनी सेना के साथ अयोध्या जाने के लिए कहते हैं।

राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से पूछा, शत्रुघ्न का मथुरा के प्रति अत्यधिक स्नेह क्यों था? उत्तर में वह कहते हैं कि, शत्रुघ्न के अनेक भव मथुरा में हुए हैं, जिस के कारण उसे मथुरा के प्रति अत्यधिक प्रीति है।

मथुरा में सप्तऋषि का आगमन और महामारी का निवारण

एक बार आकाश मार्ग से सात निर्ग्रन्थ मुनि विहार करते हुए मथुरा नगरी आए। उनके नाम थे सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिश्चिय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस और जयमित्र। प्रभानगर के 'राजा श्रीनंदन' की स्त्री 'धरणी' के ये सात पुत्र थे। प्रीतिंकर मुनिराज के केवलज्ञान के समय पिता के साथ सातों पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए। पिता श्रीनंदन केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये। इन सातों मुनिराजों ने मथुरा नगर में वटवृक्ष के नीचे वर्षायोग चातुर्मास स्थापित किया। इन मुनियों के प्रभाव से, मथुरा नगरी में चमरेन्द्र द्वारा फैलाई गई महामारी नष्ट हो गई। मथुरा की पृथ्वी उपजाऊ हो गई। ये सप्तर्षि नाना प्रकार के रस परित्याग आदि तथा वेला, तेला आदि उपवासों के साथ अत्यन्त उत्कट तप करते थे। तथा आकाशमार्ग से निमेष मात्र में दूर-दूरवर्ती नगरों में जाकर पारणा करते थे। किसी एक दिन वे मुनिराज पारणा के लिए, अयोध्या नगरी आए। वे मुनि विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठ के घर पहुँचे। उन मुनियों को देखकर सेठ ने विचार किया कि, अयोध्या नगरी के निकट जितने भी मुनिराज हैं वे वर्षायोग में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन नहीं करते हैं। लगता है ये मुनिराज आगम व चारित्र के विपरीत कार्य करने वाले हैं। इसलिए इस समय यहाँ घूम रहे हैं। अर्हद्दत्त सेठ की पुत्रवधू ने असमय में आए हुए इन मुनिराज को भक्तिपूर्वक पड़गाहन कर आहार दिया। तत्पश्चात् सातों मुनिराज मुनिसुव्रतनाथ भगवान के मंदिर में गए। मंदिर में भट्टारक 'द्युति' ने उन्हें पहचान

लिया कि, ये चारणऋद्धिधारी मुनिराज हैं । द्युति भट्टारक ने खड़े होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी पूजा की । इसी बीच अर्हद्दत सेठ वहाँ आ जाते हैं । 'द्युति' भट्टारक उससे कहते हैं कि, आज चारण ऋद्धिधारी मुनिराज मंदिर में आए थे । यह सुनकर सेठ अर्हद्दत्त पश्चाताप करने लगता है कि, धिक्कार है मुझे जो कि घर में आए हुये मुनियों को आहार भी नहीं दिया है । मेरे समान दूसरा कोई अधर्मी नहीं है । अब तो जब तक मैं उन मुनिराजों के दर्शन नहीं कर लेता तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी ।

कार्तिक पूर्णिमा को नजदीक जानकर सेठ अर्हद्दत्त सर्व परिवार सहित उन मुनिराजों के दर्शन-पूजन हेतु मथुरा नगरी पहुँचता है । और उनकी वंदना-पूजा करता है । यह वृत्तान्त सुनकर शत्रुघ्न भी सप्तऋषि मुनिराजों के पास दर्शन हेतु जाता है । उसकी माता सुप्रभा भी वहाँ जाती है । शत्रुघ्न उनसे कहता है कि, आपके यहाँ आने से मथुरा नगरी सब ओर से समृद्ध और पवित्र हो गई है, आप कुछ काल तक इस नगरी में और ठहरिये । वे मुनिराज शत्रुघ्न के लिए आने वाले समय के प्रभाव का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि, हे शत्रुघ्न! इस अधम काल के आने से पहले तू कुछ शुभ व स्थाई कार्य कर । आगे के आने वाले काल में मुनियों के लिए भिक्षा देना अपने गृहदान वसतिकादान के समान एक महान कार्य होगा इसलिए तू आहार दान देकर शीलव्रत का नियम धारण कर और मथुरा नगरी की चारों दिशाओं में सप्तऋषियों की प्रतिमा स्थापित कर । उसी से सब प्रकार की शान्ति होगी । जिस घर में अँगूठा प्रमाण भी जिनप्रतिमा होगी उसके घर में मारी का प्रवेश नहीं होगा । वह कहता है, जैसी आपकी आज्ञा वैसा ही होगा । वे सब साधु आकाश में उड़कर गमन कर जाते हैं । निर्वाण क्षेत्रों की प्रदक्षिणा देकर वे सप्तऋषि मुनिराज अयोध्या नगरी आते हैं और सीता के घर उनका विधिपूर्वक पारणा होता है । शत्रुघ्न मथुरा के बाहर व भीतर ऊँचे-ऊँचे शिखर वाले मंदिर बनवाता है और सुखपूर्वक राज्य करता है ।

सीता का लोकापवाद तथा वनवास

श्री राम लक्ष्मण वैभव के साथ राज्य कर रहे थे । एक दिन सीता ने रात्रि के पिछले प्रहर में दो स्वप्न देखे । पहले स्वप्न में उसने अपने मुख में दो अष्टापद को प्रवेश करते हुए देखा और दूसरे स्वप्न में देखा कि वह पुष्पक विमान से गिरकर पृथ्वी पर आ पड़ी है । सुबह सीता श्री राम से उन स्वप्नों का फल पूछती है, तब राम कहते हैं कि, हे सीते! पहले स्वप्न के अनुसार तू दो वीर पुत्रों की माता होगी और दूसरे स्वप्न का फल शुभ नहीं है तथापि दान, पूजा करने से पापग्रह शान्त हो जाते हैं । इस प्रकार कह के दान पूजादि शुभकार्य करने में लग जाते हैं ।

वसन्त काल आ जाता है । राम सीता से पूछते हैं कि, हे सीते! तुम्हारी कुछ इच्छा हो तो कहो मैं अभी पूरी करता हूँ । सीता कहती है, मैं पृथ्वी तल पर स्थित अनेक चैत्यालयों के दर्शन करना चाहती हूँ । सुवर्ण और रत्नमयी पुष्पों से जिनेन्द्र देव की पूजा करना चाहती हूँ । श्रीराम मंत्री को बुलाकर सभी जिनालयों को सुशोभित करने की आज्ञा देते हैं । और समस्त स्त्रियों, नगरवासियों आदि के साथ राम और सीता हाथी पर आरूढ़ हो महेन्द्रोदय उद्यान में स्थित जिनालयों के दर्शन करने जाते हैं । राम वहाँ दिव्य सामग्री से सीता के साथ मिलकर जिनेन्द्र भगवान की पूजन करते हैं ।

श्री राम अपनी रानियों के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में आनंद के साथ रह रहे थे । उनके दर्शनों की प्यासी जनता वहीं पर पहुँच जाती है । प्रजा का आगमन हुआ है, यह समाचार प्रतिहारी सीता को सुनाते हैं । उसी समय सीता की दाहिनी आँख फड़कने लगती है । सीता चिन्तित हो जाती है । और अशुभ कर्मों को नष्ट करने वाले अभिषेक, पूजा, दान आदि कार्य करने में तत्पर होती है । वह भद्रकलश नामक कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहती है कि, प्रसूति पर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ।

राजा श्रीरामचंद्र इन्द्र के समान सभामण्डप में बैठे थे तब देशवासी लोग डरते-डरते सभामण्डप में आते हैं । प्रणाम करते हैं । राम उनसे उनके आने का

कारण पूछते हैं; परन्तु वे कुछ भी कहने का साहस नहीं करते । तदनन्तर उनमें जो मुखिया था वे टूटे फूटे अक्षरों में बोलता है कि, हे देव! अभयदान देकर प्रसन्न कीजिए । राम ने कहा, हे भद्र पुरुषों! आपको कुछ भी भय नहीं है । निः संकोच होकर अपनी बात कहिए । तब बड़ी कठिनाई से विजय नाम का पुरुष हाथ जोड़कर मंद स्वर में कहता है कि, हे नाथ! इस समय समस्त प्रजा मर्यादा से रहित हो गई है । मनुष्य स्वभाव से ही कुटिल चित्त है, फिर यदि कोई दृष्टान्त मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता है । राजा जैसा काम करता है प्रजा उसका अनुसरण करती है । आजकाल सर्वत्र आपके एक अवर्णवाद के अलावा और कोई चर्चा नहीं है कि, राजा दशरथ का पुत्र राम समस्त शास्त्रों में निपुण होकर भी विद्याधरों के अधिपति रावण द्वारा हरित सीता को पुनः वापिस ले आए । इस प्रकार दुष्ट मनुष्य स्वच्छंद होकर पृथ्वी पर आप का अपवाद कर रहे हैं । आपकी चंद्रमा रूपी कीर्ति मे कलंक लगा रहे हैं । उक्त निवेदन को सुन, राम का हृदय एक क्षण के लिए विचलित हो गया । वे विचार करते हैं कि, मेरे यशरूपी कमलवन में अपयश की अग्नि लग गई है । जिस सीता के लिए मैंने विरहरूपी दुःसह दुःख सहन किया, लक्ष्मण तथा वानरवंशिओं ने उसे वापस मेरे पास लाने में वीरता दिखलाई । वही सीता मेरे यश को कलंकित कर रही है ।

जिस सीता को मैं एक क्षण भी नहीं देखता तो व्याकुल हो जाता हूँ, इसे कैसे मैं छोड़ दूँ? जिस घर का पुरुष दुष्ट है ऐसे पराए घर में स्थित लोकनिन्द्य सीता को मैं क्यों ले आया? स्त्री समस्त बलों को नष्ट कर देती है, ज्ञान को नष्ट कर देती है, वह मोक्ष मार्ग में बाधक है; परन्तु गुणों की भण्डार निर्दोष सीता का मैं कैसे परित्याग करूँ? एक ओर लोकोपवाद है तो दूसरी ओर कठिनाई से छूटने वाला स्नेह । अहो! मुझे भय और राग ने सघन वन के बीच में ला पटका है । यदि प्रीति के कारण सीता को नहीं छोड़ता हूँ तो पृथ्वी पर इसके विषय में मेरे समान दूसरा कोई कृपण न होगा । अत्यधिक संताप से व्याकुल राम का वह समय उन्हें अनुपम दुःखस्वरूप हुआ ।

अथानंतर राम ने लक्ष्मण को बुलाने के लिए द्वारपाल को आज्ञा दी ।

लक्ष्मण शीघ्र ही राम के समीप आते हैं । राम लक्ष्मण को यथाक्रम से अपवाद उत्पन्न होने का समाचार सुनाते हैं । यह सुनकर लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । उन्होंने उसी समय योद्धाओं को तैयार होने का आदेश दिया । मैं अभी मिथ्यावादी लोगों की जीभ से पृथ्वी को आच्छादित कर देता हूँ । जो अनुपम शील की धारक सीता के प्रति द्वेष रखते हैं । राम अपने वचनों से लक्ष्मण को शांत करते हैं और कहते हैं कि, 'मैं जानता हूँ सीता सती व पवित्र हृदय वाली नारी है, पर जब तक वह हमारे घर में स्थित रहती है, तब तक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रों के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है । मैं निर्दोष व शील से सुशोभित सीता को छोड़ सकता हूँ; परन्तु कीर्ति को नष्ट नहीं होने दूँगा । लक्ष्मण ने उनसे कहा कि, मात्र अपवाद से आप शीलसम्पन्न सीता को क्यों छोड़ रहे हैं? साधारण मनुष्य के कहने से विद्वद्‌जन क्षोभ को प्राप्त नहीं होते; क्योंकि कुत्ते के भौंकने से हाथी लज्जा को प्राप्त नहीं होता है । राम कहते हैं कि, लक्ष्मण तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है । लोकापवाद जाने दो, मेरा भी यह बड़ा भारी दोष है कि, मैं परपुरुष द्वारा हरी गई सीता को फिर से घर ले आया । श्रीराम आदेश देते हैं कि कृतान्तवक्त्र सेनापति को शीघ्र ही बुलाया जाय और अकेली गर्भिणी सीता को आज ही मेरे घर से ले जाया जाय ।

इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण हाथ जोड़कर विनम्र भाव से राम से प्रार्थना करते हैं कि, हे देव! गर्भ के भार से आक्रांत कोमलांगी, भोली, अकेली सीता कहाँ जाएगी? रावण ने सीता को देखा यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि दूसरे के द्वारा देखे हुए पुष्प आदि को क्या भक्तजन जिनेन्द्र देव के लिए अर्पित नहीं करते? अर्थात् भगवान को अर्पित करते हैं । दूसरे के देखने में क्या दोष है । राम कहते हैं– हे लक्ष्मीधर! मैंने निश्चय कर लिया है कि, निर्जन वन में सीता अकेली छोड़ी जाएगी । वहाँ वह अपने कर्म से जीवित रहें अथवा मरें । जनता धर्मानुकूल रहे, अवर्णवाद अपकीर्ति नहीं हो अत: सीता मेरे देश में अथवा किसी उत्तम सम्बन्धी के नगर में अथवा किसी घर में क्षण भर के लिए भी न रहे । हमने तो यही निश्चय किया है । अब आगे कोई भी कुछ नहीं

बोले ।

सीता को सिंहनाद अटवी में छुड़वाना

इतने में कृतान्तवक्त्र सेनापति वहाँ आ जाता है और राम को नमस्कार कर कहता है, स्वामी मुझे आज्ञा दीजिये । राम कहते हैं– जाओ सीता को शीघ्र ही अटवी–जंगल में छोड़ आओ । सीता ने जिनमंदिर दर्शन करने का दोहला प्रकट किया था, इसलिए मार्ग में जो जिनमंदिर मिले उनके दर्शन कराते जाना । इस प्रकार दर्शन कराने के बाद उसे सिंहनाद नाम की निर्जन अटवी में ठहराकर तुम शीघ्र आ जाओ ।

सेनापति दु:खी होकर जो आज्ञा ऐसा कह कर सीता के पास जाता है । वह सीता से कहता है, हे देवि! रथ पर सवार होकर जिनमंदिर के दर्शनों को चलो । जिनमंदिर दर्शन को उत्सुक सीता अपनी समस्त सखी जनों को यह कह कर लौटा देती है कि, हे सखियों! मैं जिनालयों के दर्शन कर शीघ्र आती हूँ । इस प्रकार सीता के कहने से और राम का सीता के साथ नहीं जाने का आदेश होने से उन स्त्रियों ने उसके साथ जाने की इच्छा नहीं की ।

सीता सिद्धों को नमस्कार करके रथ पर आरूढ़ हो गई । चलते समय सीता कई अपशकुनों को देखती है; परन्तु जिनेन्द्र दर्शन में उत्सुक चित्त होने से ध्यान नहीं देती और आगे बढ़ती जाती है । मार्ग में सुन्दर–सुन्दर स्थानों को देखकर वह प्रसन्नचित्त थी । सिंहनाद अटवी में रथ खड़ा करके कृतान्तवक्त्र सेनापति जोर–जोर से रोने लगा । सीता ने उससे पूछा– हे कृतान्तवक्त्र! तू दु:खी होके क्यों रो रहा है? तू इतने अत्यधिक हर्ष के अवसर में मुझे भी विषादयुक्त कर रहा है । उसने कहा– हे देवि! दुर्जनों का कथन सुनकर अपकीर्ति के भय से श्रीराम ने दोहले के बहाने से तुम्हें इस घनी अटवी में छुड़वा दिया है । लक्ष्मण ने राम को आपके विषय में हर तरह से समझाया; परन्तु श्रीराम ने अपनी हठ नहीं छोड़ी । हे देवि! तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है और न ही कुटुम्बीजनों का समूह ही शरण है । इस समय तो तेरे लिए मृगों से व्याप्त यह घनी अटवी ही शरण है ।

सीता का राम को सन्देश– प्रजा के भय से धर्म नहीं छोड़ना

सीता उसके वचन सुनकर दु:ख से व्याप्त होकर मूर्च्छित हो गई। बड़ी कठिनाई से चेतना को प्राप्त कर, लड़खड़ाते अक्षरों में सेनापति से बोली– मुझे एक बार स्वामी के दर्शन करा दो। उसने कहा– नगर बहुत दूर रह गया है, अत: राम के दर्शन कैसे कर सकती हो? अत्यधिक अश्रुधारा से जिसका मुख प्रक्षालित हो रहा था, स्नेह के रस से आक्रान्त हो सीता ने कहा– हे सेनापते! तुम मेरी ओर से राम से यह कहना कि, हे प्रभो! आपको मेरे त्याग से विषाद नहीं करना चाहिये। परम धैर्य का अवलम्बन कर, सदा पिता के समान न्यायवत्सल हो, प्रजा की अच्छी तरह से रक्षा करना। अभव्यों के द्वारा की हुई जुगुप्सा से भयभीत होकर सम्यग्दर्शन को कभी भी नहीं छोड़ना। आत्महित को नष्ट करने वाली बातें हृदय में धारण नहीं करना। आप शास्त्रों में प्रवीण हो फिर भी मैंने यह सब प्रेमवश कहा है। प्रजा के भय से सीता को छोड़ दिया है पर प्रजा के भय से धर्म को नहीं छोड़ना, क्षमा करना।

इस प्रकार कहकर सीता तृण और पत्थरों से व्याप्त पृथ्वी पर गिर पड़ती है। निराधार दु:खी सीता को देखकर कृतान्तवक्त्र विचार करता है– हिंसक जीवों के समूह से भरे हुए इस महाभयंकर वन में धीर, वीर मनुष्य भी जीने की आशा नहीं रख सकता है। एक ओर इस भयंकर वन में इस सती को छोड़कर जाना अत्यंत निर्दयतापूर्ण कार्य है। वहीं दूसरी ओर स्वामी की सुदृढ़ आज्ञा है। अहो! मैं पापी इस दु:खरूपी आवर्त में आ पड़ा हूँ। धिक्कार हो इस दासवृत्ति को, जो यन्त्र की चेष्टाओं के समान है। ऐसे सेवक के जीवन की अपेक्षा कुक्कुर का जीवन बहुत अच्छा है। वह लज्जित होता हुआ सीता को छोड़कर अयोध्या की तरफ चला जाता है।

सिंहनाद अटवी में अकेली सीता मूर्च्छित हो गयी थी। चेतना प्राप्त होने पर सीता अत्यंत दु:खी होती है और भगवान का नामस्मरण भी करती है और समूह से बिछुड़ी हुई हरिणी के समान रोने लगती है। उसका करुण क्रन्दन सुनकर मानो वृक्ष भी पुष्परूपी आँसू छोड़कर रो रहे हों। वह कहती है, हे

नरोत्तम! आप आकर मुझे सान्त्वना दो । मैंने पूर्व में जो कर्म किये थे उनका फल आज मुझे प्राप्त हुआ है । मैंने पूर्व भव में कबूतर-कबूतरी अथवा चकवा-चकवी को अलग किया होगा तभी मुझे मेरे स्वामी ने मुझे अपने से अलग कर दिया है । ऐसी अवस्था पाकर भी मेरे प्राण मुझ में स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्र से निर्मित हैं । क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, किसका आश्रय लूँ । हे राम! हे भक्त लक्ष्मण! हा पिता! हा माता! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो? तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हो?

सिंहनाद अटवी में सीता को राजा वज्रजंघ का आधार

सीता विलाप कर रही थी तब उसी समय वज्रजंघ नामक राजा उस वन में हाथी पकड़ने आता है और उस रूदन के शब्द को सुनकर सीता के पास आता है । शस्त्रों से सहित राजा वज्रजंघ के सैनिकों को देखकर सीता भय से काँप उठती है और उन्हें अपने गहने देने के लिए उद्यत होती है; परन्तु वे कहते हैं कि, हमें आभूषणों से क्या प्रयोजन है? हम राजा वज्रजंघ के सैनिक हैं, तुम भय रहित हो और अपने दु:ख का कारण बताओ । इस प्रकार राजा वज्रजंघ के बार-बार पूछने पर सीता उन्हें अपना सम्पूर्ण परिचय देती है और आद्योपान्त उसे वह अपना सारा वृत्तान्त बताती है । उसे सुनकर राजा वज्रजंघ उसे सान्त्वना देता है और कहता है, हे देवी! शोक छोड़ो । मैं पुण्डरीक नगर का स्वामी हूँ । तू धर्म विधि से मेरी बड़ी बहन है । मेरे साथ पुण्डरीक नगर चलो । पश्चाताप से आकुल राम तुम्हारी पुन: खोज करेंगे । सीता को धैर्य प्राप्त होता है और वह वज्रजंघ राजा से कहती है निश्चित ही तू पूर्वभव में मेरा यथार्थ करने वाला भाई ही होगा ।

राजा वज्रजंघ शीघ्र ही सीता के लिए पालकी मँगवाता है । वे सब तीन दिन में उस भयंकर अटवी को पार करके पुण्डरीक नगर पहुँचते हैं । वज्रजंघ बड़ी विनय और श्रद्धा के साथ सीता को अपने यहाँ रखता है । उधर कृतान्तवक्त्र सेनापति सीता को वन में छोड़ जब अयोध्या पहुँचता है, तो राम उससे सीता

का संदेश पूछते हैं । सेनापति सीता का संदेश सुनाता है कि, जिस तरह आपने लोकापवाद के भय से मुझे छोड़ा है उस तरह जिनेन्द्र देव की भक्ति नहीं छोड़ना । परम धैर्य से सदा प्रजा की रक्षा करना, सम्यदगर्शन को कभी नहीं छोड़ना । वन की भीषणता और सीता की गर्भदशा का विचार कर राम बहुत दु:खी होकर रोने लगते हैं । लक्ष्मण आकर उन्हें समझाते हैं ।

लव-कुश का जन्म, क्षु. श्री सिद्धार्थ से अध्ययन तथा लव कुश का विवाह

गर्भावस्था के समय सीता को उभरी हुई तलवार के अग्र भाग में मुख देखना अच्छा लगता था । धनुष की टंकार का शब्द उसके कानों को सुख उत्पन्न कराता था । उसके नेत्र पिंजड़ो में बंद सिंहों के ऊपर परम प्रीति को प्राप्त होते थे और मस्तक तो बड़ी कठिनाई से नम्रीभूत होता था ।

नवम महिना पूर्ण होने पर श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन सीता दो युगल पुत्रों को जन्म देती है । राजा वज्रजंघ ने उनके जन्म का महान उत्सव किया । एक का अनंगलवण नाम रखा तथा दूसरे का मदनांकुश नाम रखा । सीता के हृदय को आनंद देने वाले दोनों बालक क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने लगे । उन बालकों को देखकर सीता अपना समस्त दु:ख भूल गई ।

दोनों बालक जब विद्या ग्रहण करने योग्य बड़े हो गये तब उनके पुण्य के प्रभाव से सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक राजा वज्रजंघ के घर आता है । सीता इच्छाकार आदि के द्वारा उनकी अच्छी तरह पूजा करती है । क्षुल्लकजी जब लवणांकुश को देखते हैं तब उनके सम्बन्ध में वार्ता पूछते हैं । सीता रोते हुए सब वृत्तान्त सुनाती है । तथाऽस्तु कहके क्षुल्लकजी थोड़े ही दिनों में दोनों बालकों को शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्या सीखा देते हैं । दोनों बालक अपने यश व प्रताप के कारण थोड़े ही दिनों में लोक में प्रसिद्ध हो गये ।

उन सुन्दर कुमारों को विवाह के योग्य देखकर राजा वज्रजंघ अपनी रानी लक्ष्मी से उत्पन्न शशिचूला आदि ३२ पुत्रियाँ अनंगलवण को देने का

निश्चय करता है और मदनांकुश के लिए योग्य कन्या की तलाश में लग जाता है। बहुत कुछ विचार करने के बाद पृथ्वीपुर के राजा पृथु की अमृतावती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला कन्या को प्राप्त करने के लिए राजा वज्रजंघ अपना दूत भेजता है। दूत राजा पृथु को राजा वज्रजंघ का समाचार सुनाता है; परन्तु राजा पृथु कहता है कि, वर का कुल श्रेष्ठ होना चाहिए। जिनके कुल का ज्ञान नहीं है, उन्हें कन्या कैसे दी जा सकती है? इस घटना से वज्रजंघ राजा रुष्ट होकर उसका देश उजाड़ना शुरू कर देता है। जब तक राजा पृथु अपनी सहायता के लिए पोदन देश के राजा को बुलाता है तब तक वज्रजंघ अपने पुत्रों को बुला लेता है। लवणांकुश भी युद्ध के लिए जाते हैं। दोनों ओर घनघोर युद्ध होता है। राजा पृथु पराजय से घबराकर भागने लगता है। दोनों कुमार उसका पीछा करते हैं। वे कहते हैं– अरे नीच पृथु! कहाँ भागते हो? जिनके कुल और शील का पता नहीं, ऐसे हम दोनों आ गए। सावधान होकर खड़े हो जाओ, नहीं तो बलात् खड़े किए जाओगे। राजा पृथु उनसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगता है और अपनी पुत्री कनकमाला को मदनांकुश के लिए देता है। विवाह के बाद दोनों पुत्र दिग्विजय कर अनेक राजाओं को अपने आधीन करते हैं।

लव–कुश दोनों कुमारों की अयोध्या पर चढ़ाई, राम लक्ष्मण से युद्ध तथा समागम

कृतान्तवक्त्र सेनापति से सीता के छोड़ने का स्थान पूछकर उसकी खोज करने वाले दु:खी नारद भ्रमण करते हुए पुण्डरीकपुर नगर आते हैं। वहाँ उन्होंने लवणांकुश को देखा। दोनों कुमारों ने उनका सम्मान किया। नारदजी ने उनसे कहा कि, राजा राम लक्ष्मण की जैसी विभूति है वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनों को भी प्राप्त हो। उन्होंने पूछा कि, हे भगवन्! वे राम लक्ष्मण कौन हैं? नारद उन्हें राम लक्ष्मण और सीता का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं। अंकुश ने नारद से कहा– भयंकर वन में सीता को छोड़कर राम ने कुल की शोभा के अनुरूप कार्य नहीं किया। अनंगलवण ने पूछा– हे मुने! यहाँ से

अयोध्या कितनी दूर है? नारद ने कहा, अयोध्या यहाँ से साठ योजन दूर है। यह सुन उन दोनों कुमारों ने कहा कि, हम उन्हें जीतने के लिए चलते हैं। राजा वज्रजंघ को बताकर अयोध्या पर चढ़ाई करने की वे दोनों सब तैयारी कर लेते हैं। उनकी राम के प्रति चढ़ाई सुन सीता रोने लगती है। सीता को रोता देख दोनों कुमार उससे उसके रोने का कारण पूछते हैं तब सीता उन्हें अपनी सब कथा बता देती है और कहती है कि, श्रीराम ही तुम्हारे पिता हैं। अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होने वाला है सो मैं क्या पति की अमांगलिक वार्ता सुनूँगी? या तुम्हारी? अथवा देवर की? इसी ध्यान के कारण खिन्नचित्त होने से रो रही हूँ।

श्रीराम हमारे पिता हैं यह सुन लवणांकुश परम हर्ष को प्राप्त हो आश्चर्यचकित होते हैं और सीता से कहते हैं कि, हे माता! तुम इस विषाद को छोड़ो और शीघ्र ही राम लक्ष्मण का अहंकार खण्डित होता है देखो। यह सुन सीता कहती है– हे पुत्रों! पिता के साथ विरोध करना ठीक नहीं है। तुम दोनों बड़ी विनय के साथ उनके पास जाओ और नमस्कार कर उनका दर्शन करो।

यह सुन लवणांकुश ने कहा कि, हे माता! इस समय वे हमारे शत्रु के स्थान को प्राप्त हैं। अत: हे माता! हम लोग वहाँ जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहें कि, हम आपके सुपुत्र हैं। संग्राम के अग्र भाग में यदि हम लोगों को मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है; परन्तु वीर मनुष्यों को ऐसा दीन विचार करना शोभा नहीं देता है।

तत्पश्चात् वे दोनों बड़ी भारी सेना के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। शत्रु सेना को निकटवर्ती आई जानकर राम लक्ष्मण परम आश्चर्य को प्राप्त होते हुए कहते हैं कि, यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्ध का बहाना लेकर हम दोनों के पास चला आ रहा है। लक्ष्मण ने उसी समय विराधित को युद्ध के लिए सेना तैयार करने की आज्ञा की।

क्षुल्लक सिद्धार्थ और नारद शीघ्र ही जाकर भामण्डल को सीता की सब खबर देते हैं। स्नेह से भरा भामण्डल माता–पिता सहित पुण्डरीकपुर नगर आता

है । भामण्डल पिता-माता को देख जिसका शोक नया हो गया था ऐसी सीता लगातार आसूँओं की वर्षा करते हुए रोने लगती है । भामण्डल उसे सान्त्वना देता है ।

तत्पश्चात् पुत्रवधुओं सहित सीता भामण्डल के विमान में बैठ उसी ओर जाती है जिस ओर दोनों पुत्र गये थे । लवणांकुश की वास्तविक उत्पत्ति सुनकर भामण्डल सहित हनुमान आदि कई विद्याधर राजा उनके पक्ष में आ जाते हैं । विमान पर खड़ी सीता को देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनता को प्राप्त होते हैं । सीता जब दोनों सेनाओं के बीच भयंकर मुठभेड़ देखती है तो भय के मारे काँपने लगती है ।

लवणांकुश के सन्मुख राम लक्ष्मण के शस्त्र निरर्थक

अथानंतर लवणांकुश जिस ओर राम लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़ते हैं । विशाल गर्जना करने वाले राम ने कृतान्तवक्त्र सेनापति से कहा, हे कृतान्तवक्त्र! शत्रु की ओर शीघ्र ही रथ को बढ़ाओ । कृतान्तवक्त्र ने कहा कि, युद्ध में बाणों से घोड़े जर्जर हो गए हैं, मेरी भुजाएँ भी बाणों से कवच टूटने से घायल हो गई हैं । यह सुनकर राम ने कहा कि, इसी तरह मेरा धनुष भी शिथिल हो रहा है । मुशल रत्न भी कार्य से रहित हो गया है । सूर्यावर्त धनुष के कारण भुजाओं को पीड़ा पहुँच रही है । हलरत्न निष्फल हो गया है । शत्रुपक्ष को नष्ट करने में समर्थ इन अमोघ शस्त्रों की ऐसी दशा हो रही है । इधर अनंगलवण के विषय में जिस प्रकार राम के शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनांकुश के विषय में लक्ष्मण के शस्त्र भी निरर्थक हो रहे थे ।

लवणांकुश को तो राम लक्ष्मण के साथ अपने जाति सम्बन्ध का ज्ञान था, अत: वे उन्हें घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा बचाकर युद्ध करते थे; पर उधर राम लक्ष्मण को कुछ पता नहीं था इसलिए वे निरपेक्ष होकर युद्ध कर रहे थे । लक्ष्मण ने अंकुश के ऊपर भालों व बाणों की जोरदार वर्षा की । अंकुश ने उस वर्षा को दूर कर दिया । इसी तरह अनंगलवण ने भी राम के द्वारा छोड़े गए अस्त्रों को शीघ्र ही दूर कर दिया ।

इधर लवण ने वक्षस्थल के समीप राम को प्राप्त नामा शस्त्र से घायल कर दिया । उधर मदनांकुश ने भी लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया । लक्ष्मण को मूर्च्छित देख, विराधित ने घबड़ा कर रथ उलटा अयोध्या की ओर फेर दिया । चेतना प्राप्त होने पर जब लक्ष्मण ने रथ को दूसरी ओर जाते देखा तो क्रोध से लाल नेत्र करते हुए विराधित से बोला- विराधित तुमने यह क्या किया? शीघ्र ही रथ लौटाओ । क्या तुम नहीं जानते हो कि, वीर पुरुष का शत्रु के सन्मुख खड़े-खड़े मर जाना अच्छा है; परन्तु यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है । लक्ष्मण ने शीघ्र ही पुन: रथ लौटा दिया औरू पुन: भयंकर युद्ध शुरू हुआ ।

कोपवश लक्ष्मण ने संग्राम का अन्त करने की इच्छा से अंकुश को मारने के लिए अमोघ चक्ररत्न चला दिया; परन्तु वह चक्र अंकुश के समीप जाकर निष्प्रभ हो गया और पुन: लक्ष्मण के ही हस्ततल में आ गया । तीव्र क्रोध के कारण लक्ष्मण ने कई बार वह चक्र अंकुश के समीप फेंका; परन्तु वह बार-बार लक्ष्मण के पास लौट आ जाता था ।

अंकुश ने अपने धनुष दण्ड को चक्र की भांति घुमाया, जिसे देख रण में जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्य से व्याप्त हो गया । वह सब सोचने लगे कि, यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण ही है । उसी समय लक्ष्मण ने कहा कि, जान पड़ता है ये दोनों बलभद्र और नारायण ही हैं ।

सिद्धार्थ और नारद द्वारा राम लक्ष्मण को दोनों पुत्रों का परिचय

लक्ष्मण को लज्जित और निश्चेष्ट देख नारद की सम्मति से क्षुल्लक सिद्धार्थ ने लक्ष्मण के पास जाकर कहा कि, हे देव! नारायण तो तुम्हीं हो, जिनशासन में कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है? ये दोनों सीता के लवणांकुश नामक वे पुत्र हैं जिनके गर्भ रहते हुए वह वन में छोड़ दी गई थी ।

लवणांकुश का माहात्म्य जानकर शोक से कृश लक्ष्मण ने कवच और

शस्त्र छोड़ दिये । राम ने भी शस्त्रों को छोड़ दिया और पिछले दु:ख का स्मरण होने से पृथ्वीतल पर गिर गये । चंदनमिश्रित जल से सचेत होने पर राम पुत्रों के समीप चलें । स्नेह से भरे हुए दोनों पुत्रों ने रथ से उतरकर हाथ जोड़ सिर से पिता के चरणों में नमस्कार किया । स्नेह से द्रवीभूत होकर राम दोनों पुत्रों का आलिंगन करके विलाप करने लगे । वे कहने लगे कि, हाय पुत्रों! जब तुम सीता के गर्भ में स्थित थे तभी मुझ मन्दबुद्धि ने तुम दोनों निर्दोष बालकों को सीता के साथ भीषण वन में छोड़ दिया था । यदि उस समय यह वज्रजंघ नहीं आता तो तुम्हारा यह मुखरूपी चंद्रमा मैं कैसे देख पाता?

उस समय शोक से विह्वल हो रहे लक्ष्मण ने भी दोनों पुत्रों को स्नेह के साथ आलिंगन किया । शत्रुघ्न आदि सभी राजा हर्ष से आनंदविभोर हो गये । सीता भी अपने पुत्रों का माहात्म्य तथा समागम देख निश्चिंत हृदय से विमान द्वारा पुण्डरीकपुर वापिस लौट गई ।

पश्चात् भामण्डल, हनुमान, सुग्रीव और विराधित आदि सभी राजा उन दोनों कुमारों को देख हर्ष से आलिंगन करते हैं । अत्यन्त सुन्दर पुत्रों का समागम पाकर राम ने इस लाभ को तीन लोक के राज्य से भी अधिक सुन्दर माना । राम ने वज्रजंघ का खूब सम्मान किया और कहा कि, तुम मेरे लिए भामण्डल के समान हो ।

राम लक्ष्मण दोनों पुत्रों को लेकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए, अन्य राजा व सामंत अपने-अपने वाहन से धीरे-धीरे अयोध्या नगरी की ओर चलें । नगर के मनुष्यों और स्त्रियों में लवणांकुश को देखने के लिए धक्का-मुक्की हो रही थी । परम वैभव के साथ राम लक्ष्मण ने लवणांकुश व अन्य राजाओं के साथ महल में प्रवेश किया । नगरवासी कुमारों को देखकर प्रसन्न हो गये, खूब आदर सत्कार किया । अनेक दिन तक पिता पुत्रों के मिलन का समारोह होता रहा ।

सीता सब के समक्ष शपथ द्वारा निर्दोषता सिद्ध करें इस शर्त पर सीता को राम सभा में आमन्त्रण

किसी एक दिन हनुमान, सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओं ने श्रीराम से प्रार्थना की कि, हे देव! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देश में दु:ख से स्थित है, इसलिए उसे लाने की आज्ञा दी जाय । तब लम्बी और गहरी श्वास लेकर क्षण भर कुछ विचार कर श्रीराम ने कहा– यद्यपि सीता निर्दोष है, तथापि वह लोकापवाद को प्राप्त है अत: मैं उसका मुख किस प्रकार से देखूँ? पहले सीता पृथ्वीतल पर समस्त लोगों को विश्वास उत्पन्न करावे, उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्यथा नहीं । इसलिए इस संसार में देशव्यापी लोगों के साथ–साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधरों को बड़े प्रेम से निमंत्रित किया जाय । उन सबके समक्ष अच्छी तरह शपथ ग्रहण कर सीता निष्कलंक सिद्ध हो । 'एवमस्तु' ऐसा ही हो, इस प्रकार उन्होंने श्रीराम की बात स्वीकार कर ली । फलस्वरूप नाना देशों और समस्त दिशाओं से राजा लोग बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ महाकौतुक के साथ अयोध्या नगरी आ गये । आकाश से विद्याधर आ रहे थे और पृथ्वी पर भूमिगोचरी आ गये । इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत ऐसा जान पड़ता था मानो जगत चलने फिरने वाला ही हो ।

तदनंतर राम की आज्ञा से भामण्डल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े–बड़े बलवान राजा क्षण भर में आकाश मार्ग से पुण्डरीकपुर गये । वहाँ प्रवेश करते ही उन्होंने सीता की जय जयकार की, पुष्पाजंलि बिखेरी, हाथ जोड़ मस्तक से लगा चरणों में प्रणाम किया, मणिमय फर्श पर सीता के सामने बैठकर क्रमपूर्वक वार्तालाप किया । रोते हुए सीता अपनी आत्मनिंदा करती है । तब वे कहते हैं कि, हे देवि भगवति! इस समय शोक छोड़ो और अपने मन को प्रकृतिस्थ करो, श्रीराम ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है, सो प्रसन्न होकर इस पर चढ़ा जाय और अयोध्या की ओर चला जाय ।

इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियों के परिकर के साथ सीता

पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो गई और बड़े वैभव के साथ वेग से आकाशमार्ग से चली । जब उसे अयोध्या दिखी उसी समय सूर्यास्त हो गया । अत: उसने चिन्तातुर हो महेन्द्रोदय उद्यान में रात्रि व्यतीत की ।

सूर्योदय होने के पश्चात् सीता हस्तिनी पर बैठकर राम की राजसभा में पहुँचती है । सभी लोग सीता की वंदना, स्तुति करते हैं । और बार-बार सीता और राम को निहारते हैं । लक्ष्मण सहित सभी राजा सीता के प्रति सम्मानसूचक अर्घ्य समर्पण करते हैं ।

राम धीर गम्भीर थे; पर सीता को देखकर राम विचार करने लगे कि, मैंने तो इसे हिंसक जंतुओं से भरे वन में छुड़वा दिया था, फिर यह यहाँ तक कैसे आ गयी? यह तो महाशक्तिसम्पन्न है । राम की चेष्टा देखकर सीता विषाद करने लगी कि, हाय! विरहरूपी सागर अभी तक मैंने पार नहीं किया है । क्या करना चाहिए इस विषय का विचार करते हुए सीता पैर के अँगूठे से भूमि को कुरेदती हुई राम के समीप खड़ी थी । राम ने कहा कि, हे सीते! सामने क्यों खड़ी हो, दूर हटो, मैं तुम्हें देखने में समर्थ नहीं हूँ । सीता ने कहा कि, यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझ गर्भिणी को शान्तिपूर्वक कहीं जिनमंदिर में या आर्यिकाओं की वसतिका के पास छुड़वा देते ।

अत्यन्त दु:खी मनुष्यों को यह जिनशासन ही परम शरण है । हे राम! यहाँ अधिक कहने से क्या? इस दशा में भी आप प्रसन्न होओ और जो भी मुझे आज्ञा दो, मुझे स्वीकार है । इस प्रकार कहकर अत्यंत दु:खी होकर सीता रोने लगी ।

सती सीता की अग्निपरीक्षा

राम ने कहा कि, हे देवि! मैं तुम्हारे निर्दोष शील पातिव्रत्य धर्म और उत्कृष्ट विशुद्धता को जानता हूँ; किन्तु तुम लोगों के द्वारा भारी अपवाद को प्रकट हुई हो, अत: इस प्रजा को विश्वास दिलाओ, इनकी शंका दूर करो । तब

सीता ने हर्षयुक्त हो कहा कि, मैं दिव्य शपथों से लोगों को विश्वास दिलाती हूँ। उसने कहा कि, हे नाथ! मैं कालकूट विष को पी सकती हूँ, मैं तुला पर चढ़ सकती हूँ अथवा भयंकर जल या अग्नि ज्वाला में प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ। क्षणभर विचार कर राम ने कहा कि, अच्छा, अग्नि में प्रवेश करो। इसके उत्तर में सीता ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि, मैं अग्नि में प्रवेश करती हूँ। इसने मृत्यु स्वीकार ली यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया। हनुमान आदि राजा शोक के भार से पीड़ित हो गये। माता अग्नि में प्रवेश करना चाहती है। यह सुन लवणांकुश ने भी अग्नि में प्रवेश करने का मन में निश्चय कर लिया। तदनन्तर सिद्धार्थ क्षुल्लक ने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि, हे राम! सीता के शीलव्रत का देव भी पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते, फिर क्षुद्र प्राणियों की तो कथा ही क्या है? हे राम! मेरु पाताल में प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं; परन्तु सीता के शीलव्रत में कुछ चंचलता उत्पन्न नहीं की जा सकती है। मैं विद्याबल से समृद्ध हूँ और मैंने पाँचों मेरु पर्वतों पर स्थित शाश्वत अकृत्रिम चैत्यालयों में जो जिनप्रतिमा हैं उनकी वन्दना की है। हे राम! मैं जोर देकर कहता हूँ कि, यदि सीता के शील व्रत में थोड़ी भी कमी है तो मेरी वह दुर्लभ वन्दना निष्फलता को प्राप्त हो जाय। मैंने हजार वर्ष तक तप किया है, सो मैं उस तप की शपथ लेकर कहता हूँ कि लवणांकुश तुम्हारे ही पुत्र हैं। अत: हे राम! सीता अग्नि में प्रवेश नहीं करें। सभी विद्याधरों और भूमिगोचरियों ने उनकी बात का समर्थन किया। सब लोग बोले हे राम! प्रसन्न होवो, मन में अग्नि परीक्षा का विचार मत करों। सीता महासती हैं। और तीव्र शोक से रोने लगे। राम ने कहा कि, हे मानवों! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करने में तत्पर हैं तो पहले आप लोगों ने अपवाद क्यों कहा था। राम ने लोगों के कथन की अपेक्षा नहीं कर किंकरों को आज्ञा दी कि, यहाँ दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकोन पृथ्वी खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दन के सूखे और मोटे ईन्धन से परिपूर्ण करो। उसमें बिना किसी विलम्ब के ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो

कि, जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों। सेवकों ने जो आज्ञा कहकर सब काम पूर्ण कर दिया।

सर्वभूषण मुनिराज पर उपसर्ग तथा केवलज्ञान

जिस समय राम और सीता का संवाद शुरू था तथा किंकर लोग अग्नि प्रज्वलन का भयंकर कार्य कर रहे थे, उसी रात्रि में सर्वभूषण मुनिराज, महेन्द्रोदय उद्यान की भूमि में उत्तम ध्यान कर रहे थे। पूर्व वैर के कारण विद्युद्वक्त्रा नाम की राक्षसी ने उन पर घोर उपसर्ग किया।

विजयार्ध पर्वत की उत्तम श्रेणी में गुंजा नामक नगर में सिंहविक्रम नाम का राजा अपनी श्री नाम की रानी के साथ रहता था। उनके सर्वभूषण नाम का पुत्र था। सर्वभूषण की आठ सौ स्त्रियाँ थी उनमें किरणमण्डला प्रधान थी। एक बार किरणमण्डला ने अन्य रानियों के कहने पर अपने मामा के पुत्र हेमशिख का चित्रपट बनाया, जिसे देख राजा क्रोधित हो गया; परन्तु फिर अन्य पत्नियों के समझाने पर पुन: प्रसन्न हो गया। पति के साथ सोई हुई किरणमण्डला ने प्रमाद से हेमशिख का नाम बार-बार उच्चारण किया, जिसे सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और उसने वैराग्य धारण कर लिया। उधर किरणमण्डला भी साध्वी हो गई और मरकर विद्युद्वक्त्रा नाम की राक्षसी हो गई।

जब सर्वभूषण मुनिराज भिक्षा के लिए भ्रमण करते थे, तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित होकर अन्तराय करने में तत्पर हो जाती थी। कभी वह मत्त हाथी का बंधन तोड़ देती थी, तो कभी धूल की वर्षा करती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर उनके सामने आ जाती थी तो कभी उनके मार्ग में काँटे बिछा देती थी। कभी उनको आहार देने वाली स्त्री के गले का हार इनके गले में बाँध देती और कहती 'ये चोर हैं' इस प्रकार वह राक्षसी उन मुनिराज पर घोर उपसर्ग करती थी।

यही मुनिराज महेन्द्रोदय उद्यान में प्रतिमायोग से विराजमान थे, सो उस राक्षसी ने घोर उपसर्ग किया; परन्तु मुनिराज विचलित नहीं हुए और उनको

केवलज्ञान हो गया । केवलज्ञान की महिमा से सब सुर–असुर अयोध्या नगरी आ गये ।

देवों द्वारा अग्निकुण्ड़ का जलकुण्ड़ होना

तब अयोध्या में सीता की अग्निपरिक्षा उपसर्ग देख मेषकेतु नाम के देव ने अपने इन्द्र से कहा कि, इस सती सीता पर उपद्रव क्यों हो रहा है? यह उपसर्ग दूर करना चाहिए । इन्द्र ने कहा कि, मैं सर्वभूषण केवली की वन्दना को जा रहा हूँ, इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो, वह तुम करो । उपसर्ग दूर करो ।

इधर तृण और काष्ठ से भरी उस वापी को देख श्रीराम व्याकुलचित्त होकर इस प्रकार विचारने लगे कि, अब सीता को पुन: मैं कैसे देख सकूँगा? इसके साथ वन में रहना अच्छा है; परन्तु इसके बिना स्वर्ग में रहना भी शोभा नहीं देता है । यह भी महानिश्चिंत हृदया है कि, मरने के लिए उद्यत हो गई । इसे कैसे रोका जाय? लोगों के समक्ष इसे रोकने में लज्जा उत्पन्न हो रही है । उस समय बड़े जोर से हल्ला करने वाला यह सिद्धार्थ क्षुल्लक भी चुप बैठा है, अत: इसे रोकने का क्या बहाना करूँ? जिस समय रावण ने इसे हरा था उस समय यह मुझे नहीं चाहती है इस भाव से कुपित होकर उसने खड्ग से इसका शिर क्यों नहीं काट डाला । मर जाना अच्छा है पर दु:सह वियोग अच्छा नहीं है ।

वापी में अग्नि जलाई जाने लगी । दयावती सभी स्त्रियाँ रोने लगी । अत्यधिक उठते हुए धुँए से आकाश अन्धकार युक्त हो गया । तदनंतर जिसका मन अत्यन्त दृढ़ था ऐसी सीता ने उठकर कायोत्सर्ग किया, जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरों को नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधुओं को और मुनिसुव्रतनाथ भगवान को नमस्कार कर विनय से युक्त सीता ने कहा कि, मैंने राम के अलावा किसी अन्य मनुष्य को स्वप्न में भी मन, वचन, काया से धारण नहीं किया है, यह मेरा सत्य है । यदि मैं मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि मुझे क्षण भर में भस्म कर राख का ढ़ेर बना दे और यदि मैंने राम को ही मन में धारण किया है तो विशुद्धि से सहित मुझे यह अग्नि नहीं

जलावे। इतना कहकर सीता ने अग्नि में प्रवेश किया; परन्तु आश्चर्य की बात है महासती सीता के शील प्रभाव से वह अग्नि स्फटिक के समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गई। वहाँ कुछ समय पहले अग्नि थी इस बात की सूचना देने वाले काष्ठ अंगार कुछ नहीं दिखाई देते थे। वह वापी क्षणभर में तट पर स्थित मनुष्यों को डुबाने लगी। लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए इस विचार से दुखी हो विद्याधर आकाश में जा पहुँचे। जल जब कण्ठ का स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल होकर मंचों पर चढ़ गये, किन्तु थोड़ी देर में सारे मंच भी डूब गये, लोग भय से जल में तैरने लगे कि, हे देवि! हे महापतिव्रते! हमारी रक्षा करो, हम पर दया करो; परन्तु वह जल राम के चरणयुगल का स्पर्श कर क्षणभर में सौम्यदशा को प्राप्त हो गया। उस जल में कमल खिल गये, हंस बतख आदि पक्षियों से वह जल सुशोभित होने लगा। उस वापी के मध्य में एक विशाल, विमल, शुभ्र खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल सहस्त्रदल कमल प्रकट हुआ और उस कमल के मध्य में सिंहासन स्थित हुआ। 'डरो मत 'डरो मत' इस प्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सान्त्वना दे रही थी ऐसी सीता को सिंहासन पर बैठाया गया। आकाश में स्थित देवों ने पुष्पवृष्टि की। सभी लोग जय जयकार करने लगे। शंख, वीणा, तुरही आदि के मधुर शब्द गूँजने लगे।

लव-कुश माँ के स्नेह से, तैर कर, सीता के पास पहुँचे। विनय से युक्त दोनों पुत्र माँ के पास खड़े हो गए। सीता के अनुराग से राम भी उसके पास गए और बोले, हे देवि! प्रसन्न होओ। तुम कल्याणवती हो। मनुष्य और देवों द्वारा पूजित हो। ऐसा अपराध मैं फिर कभी नहीं करूँगा। हे साध्वी! मुझे क्षमा करो। तुम आठ हजार स्त्रियों की परमेश्वरी हो। मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो। हे प्रशंसनीये! मैं दोषरूपी सागर में निमग्न हूँ, विवेक रहित हूँ, प्रसन्न होओ और क्रोध का परित्याग करो।

पृथ्वीमति आर्यिका से सीता की दीक्षा

सीता ने कहा कि, हे राजन्! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह

विषाद को क्यों प्राप्त हो रहे हो? इसमें न तुम्हारा दोष है न देश के अन्य लोगों का। यह तो मेरे कर्मों का फल है। हे बलदेव! मैंने तुम्हारे प्रसाद से देवों के समान भोग भोगे हैं, इसलिए अब उनकी इच्छा नहीं है। अब तो मैं वह कार्य करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े। स्त्री पर्याय का छेदन हो।

अब मैं दु:खों का क्षय करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगी। यह कहकर सीता ने अपने हाथों से स्वयं केशों को उखाड़कर राम को दे दिये और स्वयं उद्यान में केवली के समवसरण में चली गई। कोमल मनोहर केशों को देखकर राम मूर्च्छा को प्राप्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इधर जब तक चन्दन आदि के द्वारा राम को सचेत किया जाता है तब तक सीता पृथ्वीमति आर्यिका के पास जाकर दीक्षित हो गई। पृथ्वी में नहीं समाई।

जब राम की मूर्च्छा दूर हुई, तब सीता उन्हें उधर दिखाई नहीं दी। तब वह गजराज पर आरूढ़ होकर महेन्द्रोदय उद्यान की ओर चल पड़े। वह मार्ग में ऐसा कहते हुए जाने लगे कि, प्रिय प्राणी की मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है; परन्तु विरह नहीं, इसलिए मैंने दृढ़चित्त होकर सीता को अग्नि प्रवेश की अनुमति दी थी। लेकिन फिर क्यों अविवेकी देवों ने सीता का यह अतिशय अग्निकुंड का जलकुंड क्यों किया? जिससे की सीता ने यह दीक्षा का उपक्रम किया। इस प्रकार राम अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे और लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना दे रहे थे।

सर्वभूषण केवली का दर्शन तथा उपदेश श्रवण

राम महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँचकर, हाथी से नीचे उतरकर सर्वभूषण केवली के समीप जाते हैं। भक्तिपूर्वक अंजलि जोड़कर प्रदक्षिणा देकर मन, वचन, काया से केवली को नमस्कार करते हैं। धर्मश्रवण के इच्छुक समस्त मनुष्य और देव अपने यथायोग्य स्थान पर बैठ जाते हैं। सर्वभूषण केवली भगवान वस्तुतत्त्व का निरूपण करते हैं। श्रीराम ने हाथ जोड़कर सर्वभूषण केवली से पूछा कि, हे भगवन्! क्या मैं भव्य हूँ? और किस उपाय से मुक्त होऊँगा? मैं अन्त:पुर से सहित इस पृथ्वी को छोड़ने में समर्थ हूँ; पर एक

लक्ष्मण के उपकार छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ ।

भगवान सर्वभूषण केवली ने कहा कि, हे राम! तुम्हारा शोक करना योग्य नहीं है । तुम्हें बलदेव का वैभव अवश्य भोगना चाहिए । तुम राज्यलक्ष्मी भोगकर अंत में जिनेश्वर दीक्षा को धारण करोगे तथा केवलज्ञानमय मोक्ष की प्राप्ति करोगे । इस प्रकार केवली भगवान का उपदेश सुनकर श्रीराम धैर्य, सुख और संतोष से युक्त हो गये ।

श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, रावण, विभीषण, सुग्रीव का पूर्वभव का संबंध

इसके बाद बुद्धिमान विभीषण ने सर्वभूषण केवली को नमस्कार करके पूछा कि– हे भगवन्! श्रीराम ने भवान्तर में ऐसा कौन सा पुण्य किया था, जिसके फलस्वरूप वे इस प्रकार के माहात्म्य को प्राप्त हुए हैं । चारों पुरुषार्थों के मर्मज्ञ अनेक शास्त्रों के पाठी हेय एवं उपादेय के ज्ञाता, मेरे अग्रज प्रबल पराक्रमी रावण ने किस कारण महासती सीता को दण्डक वन में एकाकी देखकर बलपूर्वक उसका हरण किया? फिर लक्ष्मण के हाथ से रावण की मृत्यु क्यों हुई? मुझे इन सब रहस्यों को जानने की तीव्र अभिलाषा है ।

केवली भगवान ने कहा कि, हे विभीषण! श्रीराम तथा लक्ष्मण अनेक जन्मों से परस्पर भ्राता रहे हैं । रावण के जीव से लक्ष्मण के जीव की अनेक जन्मों से शत्रुता चली आ रही थी । इसी कारण लक्ष्मण ने संग्राम में रावण का वध किया । यह सम्पूर्ण कथा ध्यान देकर सुनो । जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में 'एकक्षेत्र' नाम का नगर था । उसमें नयदत्त नाम का वणिक रहता था, जो कि साधारण धन का स्वामी था । उसको सुनंदा पत्नी से दो पुत्र थे– एक का नाम धनदत्त (जिसका जीव श्रीराम हुआ) दूसरे का नाम वसुदत्त (जो इस जन्म में लक्ष्मण हुआ है) उसी नगर में यज्ञबलि नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो कि तेरा (विभीषण) जीव था । उसी नगर में सागरदत्त नामक एक दूसरा वणिक अपनी स्त्री रत्नप्रभा सहित रहता था । उसकी कन्या का नाम गुणवती था, जो

इस पर्याय में सीता हुई है । गुणवती के छोटे भाई का नाम गुणवान था, जो इस जन्म में भामण्डल हुआ है । गुणवती जब युवावस्था में आई, तो उसके पिता ने उसे धनदत्त को देना निश्चित कर दिया; परंतु उसी नगरी में श्रीकांत नामक धनाढ्य युवक था । यह श्रीकांत रावण का जीव था । वह गुणवती को चाहता था । गुणवती की माता धन की अल्पता के कारण धनदत्त के ऊपर अवज्ञा का भाव रख श्रीकान्त को गुणवती देने के लिए उद्यत हुई । धनदत्त का छोटा भाई वसुदत्त यह बात जानकर यज्ञबलि के कहने से श्रीकान्त को मारने के लिए उद्यत हुआ । एक दिन रात्रि के घने अंधकार में वसुदत्त ने श्रीकान्त के घर में जाकर उस पर तलवार से प्रहार किया । बदले में श्रीकान्त ने भी वसुदत्त पर प्रहार किया । दोनों मरकर विन्ध्याचल की महाअटवी में मृग हुए । भाई के कुमरण और गुणवती के नहीं मिलने से धनदत्त बहुत दु:खी हुआ । वह घर से निकलकर अनेक देशों में भम्रण करता रहा । इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नहीं था ऐसी गुणवती धनदत्त की प्राप्ति नहीं होने से दु:खी हुई । वह अपने घर में सबके लिए भोजन परोसने का काम करती थी । गुणवती निर्ग्रंथ मुनियों से विद्वेष करती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी । वह जिनशासन का बिल्कुल ही श्रद्धान नहीं करती थी । आयु समाप्त होने पर आर्तध्यान से मर कर वह उसी अटवी में मृगी हुई जिसमें कि वे श्रीकान्त और वसुदत्त के जीव मृग हुए थे । पूर्व संस्कार से उसी मृगी के लिए दोनों लड़े और परस्पर में एक दूसरे को मारकर शूकर हुए । दोनों हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेड़िया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायों में एक दूसरे को मारकर मरे ।

अत्यन्त दु:खी धनदत्त एक दिन सूर्यास्त हो जाने पर मुनियों के आश्रम में पहुँचा । अधिक प्यासा होने के कारण मुनियों से धनदत्त ने पानी माँगा । एक मुनि ने कहा कि, रात्रि में पानी तो क्या अमृत पीना भी उचित नहीं है । मुनियों के कहने से धनदत्त अणुव्रती हो गया । तथा आयु का अन्त आने पर मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया । वहाँ से च्युत होकर महापुर नामक नगर के मेरु नामक सेठ की धारिणी नामकी सेठानी से पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ । उसी नगर

में छत्रच्छाय राजा और श्रीदत्ता रानी रहते थे। एक दिन पद्मरुचि घोड़े पर चढ़कर गोकुल की ओर आ रहा था। रास्ते में उसने मरणासन्न बूढ़ा बैल देखा। घोड़े से उतरकर पद्मरुचि ने बैल को पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। मंत्र सुनते सुनते बैल मर गया। णमोकार मंत्र के प्रभाव से बैल का जीव छत्रच्छाय राजा की श्रीदत्ता रानी से पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम वृषभध्वज रखा।

वृषभध्वज को एक दिन अपने पूर्वभव का स्मरण हो गया, किस प्रकार बैल ने मरते समय पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से यह पर्याय पाई है। वह सदैव पंचनमस्कार मंत्र का ध्यान करता था। एक बार वह घूमता हुआ उस स्थान पहुँचा जहाँ बैल का मरण हुआ था। वहाँ पर उसने एक सुन्दर चैत्यालय बनवाया। उसी मन्दिर के द्वार पर उसने अपने पूर्वभव अर्थात् बैल को णमोकार मंत्र सुनाते हुए एक मनुष्य का चित्रपट लगवा दिया। उसने मन्दिर के पहरेदारों से कहा कि जो भी इस चित्र को ध्यान से देखें तुरन्त मुझे सूचित करना।

एक दिन पद्मरुचि उसी मन्दिर में आया और उस चित्र को देखने लगा। पहरेदार ने राजकुमार वृषभध्वज को सूचित कर दिया। वृषभध्वज ने पद्मरुचि को पहचान लिया तथा उसके चरणों में नमस्कार किया। वृषभध्वज ने पद्मरुचि से कहा कि, मैं वही बैल का जीव हूँ जिसे आपने मरते समय णमोकार मंत्र सुनाया था। आपने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। मैं तुम्हारा दास रहूँगा, इस उपकार के बदले चाहो तो तुम मेरा समस्त राज्य ले लो। उन दोनों में परम प्रेम हो गया, दोनों को ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। दोनों ने श्रावक के व्रत लिये। दोनों ने अनेक जिनमन्दिर और जिनबिम्ब बनवाये।

मरण के समय समाधि की आराधना करके वृषभध्वज ईशान स्वर्ग में देव हुआ। पद्मरुचि भी समाधिपूर्वक मरण करके ईशान स्वर्ग में ही वैमानिक देव हुआ। स्वर्ग से च्युत होकर पद्मरुचि का जीव पश्चिम विदेह क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर नन्द्यावर्त नगर के राजा नन्दीश्वर की कनकाभा रानी से नयनानन्द नाम का पुत्र हुआ। नयनानन्द ने राजसुख भोगकर मुनि दीक्षा ली। अन्त में समाधिमरण कर के माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। स्वर्ग से च्युत होकर

पश्चिम विदेह की क्षेमपुरी नगरी के राजा विपुलवाहन और रानी पद्मावती के श्रीचन्द्र नाम का राजपुत्र हुआ। कई हजार वर्ष राजभोग किया । एक बार श्रीचन्द्र समाधिगुप्त मुनिराज के दर्शन के लिए गया । उनका उपदेश सुनकर वैराग्य को प्राप्त हो गया और अपने पुत्र धृतिकान्त को राज्य सौंपकर मुनि हो गया । कठिन तपस्या करके समाधिपूर्वक मरण करके ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र हुआ । वहाँ से चयकर श्रीराम हुआ । अब संक्षेप में वसुदत्तादि के भ्रमण का वर्णन करता हूँ ।

मृणालकुण्ड नगर में वज्रकम्बु राजा और हेमवती रानी के शम्बु नाम का राजपुत्र था। वज्रकम्बु राजा के श्रीभूति नाम का परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था । पुरोहित की पत्नी का नाम सरस्वती था । पहले जिस गुणवती का उल्लेख किया था, वह समीचीन धर्म से रहित हो तिर्यंच योनि में चिरकाल तक भ्रमण करती रही । निदान और अपवाद के कारण स्त्री पर्याय को प्राप्त करती रही । साधुओं के अवर्णवाद करने के कारण गंगा नदी के तट पर हथिनी हुई । वहाँ कीचड़ में फँसकर मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुई । मरते समय तरङ्गवेग विद्याधर ने उसे णमोकार मंत्र सुनाया । मंत्र के प्रभाव से मरकर श्रीभूति पुरोहित की कन्या वेदवती हुई ।

एक बार मण्डलिक ग्राम में सुदर्शन नाम के मुनिराज आये, तो लोग उनके दर्शन करने गये । जब दर्शन कर सब लोग चले गये तब सुदर्शन मुनिराज के पास एक सुदर्शना नाम की आर्यिका, जो कि मुनिराज की बहन थी, बैठी रही और मुनिराज उसे उपदेश देते रहे । वेदवती ने देखा और लोगों से कहा कि, आप लोग ऐसे साधु के अवश्य दर्शन करो । मैंने उन साधु को एकान्त में एक सुन्दर स्त्री के साथ बैठा देखा है । वेदवती की बात किन्हीं लोगों ने मानी और किन्हीं ने नहीं मानी । कुछ लोगों ने मुनिराज का अनादर किया । मुनिराज ने प्रतिज्ञा ली कि, जब तक यह अपवाद दूर नहीं होगा तब तक आहार के लिए नहीं निकलूँगा । इस अपवाद से वेदवती का मुख फूल गया, तब उसने नगरदेवता की प्रेरणा पाकर मुनिराज से क्षमा माँगी और लोगों को भी विश्वास दिलाया । पिता के समझाने पर वेदवती श्राविका हो गई । शम्बु राजकुमार

वेदवती के रूप पर मोहित होकर उसे पाने के लिए उत्कण्ठित था; परन्तु श्रीभूति पुरोहित की प्रतिज्ञा थी कि, यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष सम्पत्ति में कुबेर के समान हो, तथापि उसके लिए कन्या नहीं दूँगा । इसलिए शम्बु ने रात्रि में सोते हुए पुरोहित को मार डाला । पुरोहित मरकर जिनधर्म के प्रसाद से देव हुआ । काम के वशीभूत शम्बु ने वेदवती से बलात् संभोग किया । अत्यन्त कुपित वेदवती ने शम्बु से कहा कि, अरे पापी! नीच पुरुष! तूने मेरे पिता को मारकर बलात् मेरे साथ कामसेवन किया है, इसलिए आगामी भव में मैं तेरे वध के लिए उत्पन्न होऊँगी ।

वेदवती ने हरिकान्ता आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले अत्यन्त कठोर तपस्या की । आयु के अन्त में मरकर वह ब्रह्मस्वर्ग में गई । वेदवती से रहित शम्बु उन्मत्त अवस्था को प्राप्त हो गया । वह जिनवचनों और मुनियों का विरोधी था । इसलिए चिरकाल तक नरक और तिर्यंच गति में भ्रमण करता रहा ।

पाप कर्म का कुछ उपशम होने से शम्बु का जीव कुशध्वज ब्राह्मण की स्त्री सावित्री से प्रभासकुन्द नाम का पुत्र हुआ । उसने विचित्रसेन मुनिराज के समीप दीक्षा धारण कर ली । प्रभासकुन्द ने निर्विकार होकर कठिन तपश्चरण किया । वह एक बार सम्मेदशिखरजी की वन्दना को गया था, वहाँ आकाश में कनकप्रभ नामक विद्याधर की विभूति देखकर उसने निदान किया कि, यदि मेरे तप का माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ । प्रभासकुन्द अत्यन्त कठोर तप करके सानत्कुमार स्वर्ग में देव हुआ । वहाँ से च्युत होकर लंका नगरी में रत्नश्रवा व केकसी का पुत्र रावण हुआ ।

पहले जो वसुदत्त था, फिर श्रीभूति पुरोहित था स्वर्ग से च्युत होकर नारायण पद का धारी लक्ष्मण हुआ । पहले जो श्रीकान्त था वही शम्बु प्रभासकुन्द व अन्त में रावण हुआ । पहले जो गुणवती थी वही वेदवती हुई और अब राजा जनक की पुत्री सीता हुई । उस समय गुणवती का भाई गुणवान भामण्डल हुआ । जो पहले यज्ञवलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है । जो

वृषभध्वज था वह सुग्रीव हुआ और पद्मरुचि 'राम' हुआ । इसके बाद विभीषण ने सर्वभूषण केवली से बालि के पूर्वभव पूछे ।

सर्वभूषण केवली ने कहा कि, वृंदावन में एक कृष्ण मृग रहता था । आयु के अन्त समय में उस मृग ने मुनियों के स्वाध्याय के शब्द सुने । इसलिए मरकर ऐरावत क्षेत्र के दितिनामा नगर में विहित पुरुष की शिवमति स्त्री से मेघदत्त नाम का पुत्र हुआ । मेघदत्त अणुव्रतधारी था । वह जिनेन्द्र देव की पूजा और चैत्यालय की वन्दना करने में सदैव तत्पर रहता था । मरण कर ईशान स्वर्ग में देव हुआ । वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में विजयावती नगरी के समीप मत्तकोकिल ग्राम में कान्तशोक और रत्नाकिनी के सुप्रभ पुत्र हुआ । सुप्रभ ने संयत नामक मुनिराज से जिनदीक्षा धारण की और कई हजार वर्षों तक कठिन तपस्या की । नाना ऋद्धि प्राप्त होने पर भी सुप्रभ मुनिराज ने गर्व नहीं किया । उन महामुनि को उसी भव में मुक्ति प्राप्त हो जाती; परन्तु उनकी आयु अधिक नहीं थी इसलिए उपशान्त दशा से मरणकर सर्वार्थसिद्धि में गये । वहाँ के सुख भोगकर बालि नामक विद्याधर राजा हुए ।

श्रीकान्त व वसुदत्त ने वैर के कारण कई भव तक एक दूसरे का वध किया । पहले वेदवती की पर्याय में रावण का जीव शम्बु उससे सम्बन्ध रखना चाहता था । इसलिए रावण ने सीता का हरण किया । लक्ष्मण ने जो वसुदत्त का जीव था पूर्व बैर के कारण रावण जो श्रीकांत का जीव था उसे मारा । सीता रावण के क्षय में निमित्त हुई । सर्वभूषण केवली ने कहा कि, किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है । इसलिए आत्महित के इच्छुक भव्यजनों! किसी के साथ वैर का सम्बन्ध मत रखो ।

लक्ष्मण और रावण के सुदृढ़ वैर को जानकर समस्त सभा महादु:ख और भय से सिहर उठी तथा निर्वैर हो गई अर्थात् सभा के सब लोगों ने वैर भाव छोड़ दिया । मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मुनिराज को प्रणाम करके विभीषण की प्रशंसा करने लगे कि, आपके कारण ही हम लोग यह उत्तम ज्ञानवर्धक चरित्र को सुन सके हैं ।

भवावली– राम के पूर्व भव

श्रीराम के पूर्वजन्म– १) वणिक धनदत्त २) प्रथम स्वर्ग में देव ३) सेठ पद्मरुचि ४) द्वितीय स्वर्ग में देव ५) राजा नयनानन्द ६) चौथे स्वर्ग में देव ७) राजा श्रीचन्द ८) पाँचवे स्वर्ग में देव ९) श्रीराम (बलभद्र)

लक्ष्मण के पूर्वजन्म और भविष्य काल में होने वाली पर्याय

१) वसुदत्त (धनदत्त का भाई) २) मृग ३) शूकर ४) हाथी ५) भैंसा ६) बैल ७) वानर ८) चीता ९) भेड़िया १०) जल में, स्थल में कई बार जन्म लिया ११) श्रीभूति पुरोहित १२) तीसरे स्वर्ग में देव १३) पुनर्वसु विद्याधर अनंगशरा का अपहरण कर्ता १४) लक्ष्मण (नारायण) १५) तीसरे नरक में नारकी १६) मेरु पर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नगरी में ऋषिदास १७) देव पर्याय १८) मनुष्य पर्याय १९) हरिक्षेत्र में जन्म २०) देव पर्याय २१) जयप्रभ २२) लान्तव स्वर्ग में देव २३) मेघरथ (चक्रवर्ती का पुत्र) होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवों में भ्रमणकर पुष्कर द्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्र के शतपत्र नामक नगर में अपने योग्य समय में तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद को प्राप्त होकर निर्वाण प्राप्त करेगा ।

रावण के पूर्वजन्म व भविष्य काल में होने वाली पर्याय

१) श्रीकान्त वणिक २) मृग ३) शूकर ४) हाथी ५) भैंसा ६) बैल ७) वानर ८) चीता ९) भेड़िया १०) जल में, थल में कई बार जन्म लिया ११) शम्बु १२) प्रभासकुन्द १३) तीसरे स्वर्ग में देव १४) रावण (प्रतिनारायण) १५) तीसरे नरक में नारकी १६) मेरु पर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नगरी में अर्हद्दास (ऋषिदास का भाई) १७) स्वर्ग में देव १८) मनुष्य पर्याय १९) हरिक्षेत्र में जन्म २०) देव पर्याय २१) जयकान्त (जयप्रभ का भाई) २२) लान्तव स्वर्ग में देव २३) इन्द्ररथ (चक्रवर्ती का पुत्र होकर) तीर्थंकर प्रकृति का बंध करेगा । तदनन्तर अनुक्रम से अर्हन्त पद प्राप्त करेगा ।

सीता के पूर्वजन्म व भविष्य काल में होने वाली पर्याय

१) गुणवती २) मृगी ३) शूकरी ४) हथिनी ५) भैंसी ६) गाय ७) वानर ८) चीता ९) मेंढ़ी १०) जल में, थल में कई बार जन्म लिया ११) चित्तोत्सवा १२) वेदवती १३) पाँचवे स्वर्ग में देवी अमृतवती १४) सीता १५) सोलहवे स्वर्ग में स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र १६) भरतक्षेत्र में चक्ररथ चक्रवर्ती १७) वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र १८) इन्द्ररथ तीर्थंकर का प्रथम गणधर होकर निर्वाण प्राप्त होगा ।

उपदेशामृत का प्रभाव– कृतान्तवक्त्र की दीक्षा

सर्वभूषण केवलि के मुख से भव भ्रमण से उत्पन्न दुःख को सुनकर सेनापति कृतान्तवक्त्र ने श्रीराम से कहा कि, अब मैं मुनिपद धारण करूँगा । श्रीराम ने कहा तुम इतनी दुर्धर चर्या कैसे झेलोगे? तुमने सेनापति दशा में भी कभी किसी की वक्र दृष्टि सहन नहीं की, अब मुनि होकर दुष्ट मनुष्य के द्वारा किया गया तिरस्कार कैसे सहन करोगे? सेनापति कहता है कि, जब मैं आपके स्नेहरूपी रसायन को छोड़ने में समर्थ हूँ तब अन्य कार्य असह्य कैसे हो सकते हैं? राम कृतान्तवक्त्र की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि यदि तुम इस जन्म में निर्वाण को प्राप्त न कर और देव हो गये तो मोह में पड़े हुए मुझ को संबोधित करना भूलना नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा करो । जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा ऐसा कहकर और राम से अनुमति लेकर कृतान्तवक्त्र जिनदीक्षा ले लेता है ।

आर्यिका सीता माताजी से राम की क्षमा याचना

श्रीराम सर्वभूषण केवली को नमस्कार कर सीता के पास जाते हैं । वह शान्तिपूर्वक आर्यिकाओं के मध्य स्थित थी । अलंकाररहित सम्यक्चारित्रसहित सीता पुण्य की नदी थी । सीता को देख राम विचारने लगे कि, यह कोमलांगी महाव्रत के गुरुत्तर भार को कैसे सहन करेगी? जो मेरे साथ रहने पर भी मेघ गर्जना से भय को प्राप्त हो जाती थी अब भयंकर वन में किस प्रकार रहेगी? यह

सोचकर उनकी आँखों से आँसू झरने लगे;परन्तु केवली के वचनों का स्मरण कर उन्होंने अपने आँसूओं को रोक लिया। राम ने सीता के पास जाकर उसे भक्ति और स्नेह के साथ नमस्कार किया। लक्ष्मण ने भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राम ने कहा कि, हे शांते! हमने जो कुछ अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है; क्योंकि संसार दशा में आसक्त मनुष्यों से भूल-चूक पद-पद पर होती है। तुमने मेरे विषादयुक्त चित्त को भी आनन्दित कर दिया है। इस प्रकार सीता की वन्दना, स्तुति, प्रशंसा करके प्रसन्न चित्त हो राम, लक्ष्मण, लवण और अंकुश अयोध्या नगरी की ओर चले गये।

महासती सीता का तीन बार वनवास

महासती सीता को तीन बार वनवास भोगना पड़ा था। पहली बार सास-ससुर के कारण वनवास मिला था तब सीता अपने पति राम की अनुगामिनी बनकर राम- लक्ष्मण के साथ वन में गई थी उस समय पति और देवर का सहारा था फिर भी आखिर रावण हर कर ले गया।

दूसरी बार लोकापवाद के भय से पति द्वारा निर्जन वन में अकेली को छुड़वा दिया गया था। तब भी गर्भवती सीता को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे। कोई सहारा भी नहीं था, पर वन में भी वज्रजंघ राजा धर्मभाई बन कर सहारा देने वाला मिल गया था।

अब तीसरी बार स्वयं वैराग्य धारण कर सभी लैकिक सुविधाओं को त्याग कर सभी परिजनों को छोड़कर वन में गयी। दीक्षा धारण की। अब तो धर्म ही सहारा है। वस्तुत: सच्चा सहारा तो धर्म ही है।

सीता की तपस्या- सीता अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र

सीता तप से सूखकर ऐसी हो गई थी जैसे जली हुई माधवी लता हो। महा संवेग वैराग्यसहित खोटे भावों से रहित वह स्त्री पर्याय को सदा अत्यन्त निन्दनीय समझती थी। कठोर तप से शरीर में हड्डियाँ व नसें रह गई थी। चार दिन अथवा पन्द्रह दिन में पारणा करती थी। विहार के समय उसे

अपने पराये लोग भी नहीं पहचान पाते थे । इस प्रकार ६२ वर्ष तक उत्कृष्ट तप कर तथा तैंतीस दिन की उत्तम सल्लेखना धारण करके आरण अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुई । स्त्री पर्याय को छोड़ के देवों का स्वामी हो गया ।

लव कुश के गले में वरमाला तथा लक्ष्मण के आठ पुत्रों को वैराग्य

कांचन स्थान नामक नगर के कांचनरथ राजा और शतह्रदा रानी की दो पुत्रियाँ थी मन्दाकिनी और चंद्रभाग्या । दोनों कन्याओं के स्वयंवर के लिए राजा ने सभी भूमिगोचरी व विद्याधर राजाओं को बुलवाया । राम और लक्ष्मण ने भी परम सम्पदा से युक्त सभी राजकुमारों को वहाँ भेजा । उत्तम गुणों की धारक वह दोनों कन्यायें स्वयंवर स्थल में आ गयी । कंचुकी ने स्वंयवर सभा में जो राजा आये थे उन सबका देश, कुल, धन, तथा नाम दोनों कन्याओं के लिए वर्णन किया । तब बड़ी कन्या मन्दाकिनी ने अगंनलवण और छोटी कन्या चन्द्रभाग्या ने मदनांकुश के गले में वरमाला डाल दी । लक्ष्मण की आठ महादेवियों से आठ पुत्र उत्तम चित्त के धारक थे । आठ पुत्रों के सिवाय अन्य अढ़ाई सौ पुत्र लवण व अंकुश की ओर झपटने के लिए तत्पर हो गये; परन्तु उन आठ पुत्रों ने अपने अन्य भाईयों को समझाया कि, स्त्रियाँ स्वभाव से ही कुटिल होती हैं, अत: स्त्रियों के लिए आपस में लड़ना उचित नहीं है । आठ कुमार के वचनों से भाईयों का समूह उनके वशीभूत हो गया; परन्तु आठों कुमार वैराग्य को प्राप्त हुए और पिता लक्ष्मण से जिन दीक्षा धारण करने की आज्ञा माँगने गए । लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया । उन्होंने कहा, हे पूज्य पिताजी! आप ज्ञानवान होकर भी हमें अंधकूप में फेंक रहे हैं । तदनन्तर संसार व भोगों से विरक्त उन आठों कुमारों ने महेन्द्रोदय उद्यान में महाबल मुनिराज से निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली । तप करके वे आठों मुनिराज निर्वाण सुख को प्राप्त हुए।

भामण्ड़ल की वज्रपात मे मृत्यु

एक दिन भामण्डल विचार करते हैं कि, यदि मैं दिगम्बर मुनि की दीक्षा धारण करता हूँ तो यह रानियाँ जिनका चित्त मुझ में लग रहा है, मेरे विरह से

प्राणों को त्याग देंगी । अभी कुछ दिन और मुझे राज्य का भोग भोगना चाहिए । शत्रु राजाओं को वश करना चाहिए इसके बाद दीक्षा लेकर तप द्वारा कर्मों का क्षय करूँगा । 'यह कर चुका, यह करता हूँ, और यह करूँगा' इसी विचार में सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये ।

एक दिन वह महल के सातवें खण्ड पर बैठा था कि, उसके मस्तक पर वज्र गिरा, जिससे वह मृत्यु को प्राप्त हो गया । भामण्डल इतना दीर्घ सूत्री था कि, आत्मकल्याण में प्रवृत्त नहीं हुआ । जो मनुष्य समस्त परिग्रह का त्याग करके आत्म कल्याण नहीं करता है वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है ।

हनुमान की दीक्षा व मोक्ष

पूर्व पुण्य के प्रभाव से हनुमान कर्णकुण्डल नगर में देवों के समान उपभोग कर रहा था । विमान में आरूढ़ होकर अपनी हजारों स्त्रियों के साथ इच्छित स्थान पर क्रीड़ा करता था । जिनेन्द्र भक्ति में जिसका चित्त लग रहा था ऐसा हनुमान अंत:पुर के साथ मेरु पर्वत के जिनालयों का दर्शन करने चला । विमान से उतरकर उसने प्रदक्षिणा दी । अंत:पुर के साथ हाथ जोड़कर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया । उसकी स्त्रियों ने भगवान की पूजा की । हनुमान ने सुवर्णमय पद्मराग मणिमय तथा चन्द्रकांतमणिमय कमल तथा अन्य स्वाभाविक पुष्पों द्वारा, सुगन्धित से दिक्मण्डल व्याप्त करने वाली गन्ध द्वारा, जिसकी धूमशिखा ऊँची उठ रही थी पवित्र द्रव्यों से उत्पन्न धूप द्वारा, बड़ी -बड़ी शिखा वाले दीपक द्वारा, नाना प्रकार के नैवेद्यों से हनुमान ने जिनेंद्र देव की स्तुति की तथा वीणा गोद में रख मधुर संगीत किया । हनुमान ने विमान पर चढ़कर मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा दी । सब जिनमन्दिरों पर उत्तम फूल बरसा कर भरतक्षेत्र की ओर आकाश में चला । रात्रिकाल आने पर उसने 'सुरदुन्दुभि' नामक मनोहर पर्वत पर अपनी सेना ठहरा दी । विमान के शिखर पर बैठे हनुमान ने बहुत ऊँचे आकाश से गिरते हुए तथा एक क्षण में अंधकाररूप हो जाने वाले दैदीप्यमान

कान्ति के धारक ज्योतिर्बिम्ब को देखा । उसने विचार किया कि, यह मृत्यु देवसमूह के बीच में भी अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करती है । जिसका हृदय महा संवेग को प्राप्त था ऐसे हनुमान ने अपने पुत्रों को राज्य भार सौंप दिया । स्त्रियों को सान्त्वना दी । हनुमान ने महोद्यान में विराजित धर्मरत्न नामक मुनिराज से जिन दीक्षा ली । उनके साथ सात सौ पचास विद्याधर राजाओं ने भी जिन दीक्षा ग्रहण कर ली । अनेक राजस्त्रियों ने बन्धुमति आर्यिका के पास दीक्षा ली । श्रीशैल–हनुमान और विद्युतगति आदि नाम धारण करने वाले महामुनिराज ने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचरण का पालन कर तथा केवलज्ञान को प्राप्त कर निर्वाणगिरी से सिद्ध पद को प्राप्त किया ।

लक्ष्मण के आठ पुत्रों और हनुमान की दीक्षा का समाचार सुन श्रीराम हँसकर बोले कि, अरे! इन लोगों ने क्या भोग भोगा? जो दूरदर्शी मनुष्य विद्यमान भोगों को छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि, वे ग्रहों से आक्रान्त हैं अथवा वायु की बीमारी से पीड़ित हैं । लगता है ऐसे लोगों को औषधि करने वाले कुशल वैद्य नहीं मिले हैं तभी तो भोगों को छोड़ बैठे हैं । चारित्र मोहनीय कर्म के वशीभूत श्रीराम की बुद्धि उस समय जड़रूप हो गई थी । इस प्रकार महाभोगों में निमग्न तथा प्रेम से बँधे हुए उन राम–लक्ष्मण का काल चारित्ररूपी धर्म से निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ।

रत्नचूल और मृगचूल देवों द्वारा राम–लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा

एक बार सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में स्थित देवों को धर्म का उपदेश देता हुआ कहता है कि, सब बन्धनों में स्नेह का बन्धन अत्यन्त दृढ़ है । जो हाथ, पैर आदि अवयवों से बँधा है ऐसे प्राणी को मोक्ष हो सकता है; परन्तु स्नेहरूपी बंधन से बँधे प्राणी को मोक्ष नहीं हो सकता है । लक्ष्मण राम में सदा अनुरक्त रहता है, वह राम के दर्शन करते–करते कभी तृप्त ही नहीं होता है और अपने प्राण देकर भी राम का कार्य करना चाहता है । राम भी पल भर भी लक्ष्मण को नहीं देखता तो उसका मन बेचैन हो जाता है । वह लक्ष्मण को

छोड़ने में समर्थ नहीं है ।

अथानन्तर इन्द्र को नमस्कार करके सभी सुर–असुर अपने अपने स्थान को चले गए । और राम–लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा करने के लिए 'रत्नचूल' व 'मृगचूल' नाम के दो देव अयोध्या आ गये । कौतुहलवश उन्होंने निश्चय किया कि, जो राम के एक दिन के भी अदर्शन को सहन नहीं कर सकता है, ऐसा नारायण लक्ष्मण अपने अग्रज राम का मरण का समाचार पाकर देंखे क्या चेष्टा करता है? उन्होंने राम के भवन में दिव्य माया से अन्त:पुर की समस्त स्त्रियों के रूदन का शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि, द्वारपाल, मित्र, मंत्री, पुरोहित तथा आगे चलने वाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मण के पास गये और राम की मृत्यु का समाचार कहने लगे । उन्होंने कहा कि, हे नाथ! राम की मृत्यु हुई है । ये सुनते ही लक्ष्मण के नेत्र चंचल हो उठे । हाय, यह क्या हुआ? वे इस शब्द का आधा ही उच्चारण कर पाये थे, कि उनका मन शून्य हो गया, और वे रोने लगे । वज्र से ताड़ित हुए के समान वे स्वर्ण के खम्भे पर टिक गये, और सिंहासन पर बैठे बैठे ही मिट्टी के पुतले की तरह, निश्चेष्ट हो गये । भाई की मृत्युरूपी अग्नि से ताड़ित लक्ष्मण को निर्जीव देख, दोनों देव बहुत व्याकुल हुए और विषाद तथा आश्चर्य से भरे हुए दोनों देव, निष्प्रभ हो सौधर्म स्वर्ग चले गये; परन्तु वे दोनों देव रात दिन पश्चाताप की ज्वाला में झुलसते रहते थे ।

लक्ष्मण ने कौतुहलवश अपनी माया से यह कार्य किया है ऐसा जानकर उनकी स्त्रियाँ उन्हें प्रसन्न करने के लिए उद्यत हुई; परन्तु जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे, तो वे सब रानियाँ शोक से ऐसी संतप्त हो गई कि, उनकी सब सुन्दरता समाप्त हो गई । अन्त:पुरचारी प्रतिहारों के मुख से यह समाचार सुन, मंत्रियों से घिरे राम, घबड़ाहट के साथ वहाँ आये । जिसकी सुन्दर कांति निकल चुकी थी ऐसा लक्ष्मण का मुख देखा । वे विचारने लगे कि, ऐसा कौन सा कारण आ पड़ा है कि, जिससे आज लक्ष्मण मुझ से रूठा तथा विषादयुक्त हो, सिर को नीचा झुकाकर बैठा है । राम ने बड़े स्नेह से उनके मस्तक पर सूँघा और

बार–बार गले से लगाया ।

यद्यपि श्री राम सब ओर से मृतक के चिन्ह देख रहे थे, तथापि स्नेह से परिपूर्ण होने के कारण वे उन्हें जीवित ही समझ रहे थे । उनकी शरीर यष्टि झुक गई थी । गरदन टेढ़ी हो गई थी, भुजा ढ़ीली पड़ गई थी और शरीर, साँस लेना हस्त पादादिक का सिकोड़ना तथा नेत्रों का टिमकार करना आदि चेष्टाओं से रहित हो गया था । इस प्रकार लक्ष्मण को अपनी आत्मा से विमुख देख तीव्र भय से आक्रान्त राम पसीने से तर हो गये । बार–बार मूर्च्छित हो जाते थे । नेत्र आँसुओं से व्याप्त हो गये थे । वे कह रहे थे कि, इस शरीर में कहीं नख की खरोंच बराबर भी तो घाव नहीं दिखाई देता फिर इसकी ये दशा किसने कर दी । यद्यपि वे विद्वान थे, तथापि उन्होंने इस विषय के जानकार वैद्यों को बुलवाया । वैद्यों ने परीक्षा कर उत्तर दे दिया, तब निराश होकर मूर्च्छित हो गये । उनके शोक की कोई सीमा न रही ।

लव कुश की दीक्षा व मोक्ष

इसी बीच लक्ष्मण की मृत्यु का समाचार सुनकर परम विषाद को प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार विचार करने लगे कि, सारहीन इस मनुष्य पर्याय को धिक्कार हो । मृत्यु निमेष मात्र में ही इस पर आक्रमण कर देती है । जिसे देव व विद्याधर भी वश में नहीं कर सके वह नारायण भी काल के वशीभूत हो गया । ऐसा विचार कर वह दोनों लव–कुश प्रतिबोध को प्राप्त हुए । पुन: गर्भावास में न जाना पड़ें इससे भयभीत हुए वह दोनों पिता के चरण युगल को नमस्कार कर पालकी में बैठ कर महेन्द्रोदय उद्यान में चले गये । वहाँ अमृतस्वर मुनिराज से दीक्षा धारण करके पावागढ़ से मोक्ष गये । बड़भागी हो गये ।

लक्ष्मण की देह को कन्धे पर लेकर राम छह माह तक घूमते हैं

एक ओर पुत्रों का विरह और दूसरी ओर भाई की मृत्यु का दु:ख इस प्रकार राम शोकरूपी भँवर में घूम रहे थे । राम को लक्ष्मण राज्य से, पुत्र से,

स्त्री से और अपने जीवन से भी कहीं अधिक प्रिय थे । सुगन्धित नारायण का शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नहीं रहे थे । वे कभी लक्ष्मण की मृतक देह को हृदय से लगाते कभी मस्तक चूमते, कभी वस्त्राभूषण पहनाते, कभी लेकर बैठ जाते, कभी भोजन का ग्रास मुख में देने की चेष्टा करते, तथा कभी उस पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप करते थे । उनकी देह को अपने कंधे पर उठाकर वे इधर उधर भागते फिरते थे । इस प्रकार श्री राम अनुज लक्ष्मण को मधुर शब्दों से सम्बोधित कर उसे मनाने का प्रयत्न करते थे । सबने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया कि, लक्ष्मण अब जीवित नहीं रहे हैं; परन्तु श्रीराम किसी की भी बात नहीं मानते थे ।

लक्ष्मण के निधन का वृतान्त सुनकर विभीषण, विराधित, सुग्रीवादि सपरिवार अयोध्या आ गये । श्रीराम को नमस्कार कर वे उनके समीप पृथ्वी पर बैठ गये । विभीषण ने अनेक प्रकार से श्रीराम को समझाया । उन्होंने कहा– 'अनुज के निधन का शोक दुर्निवार है; परन्तु ज्ञानी कभी शोक नहीं करते । जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरता है ।' सुग्रीवादि समस्त राजाओं ने उनसे विनय की– हे पुरुषोत्तम! अब वासुदेव की देह का अग्नि संस्कार करो । यह वचन श्रीराम को अत्यंत अप्रियकर प्रतीत हुआ । क्रोधपूर्वक उन्होंने कहा– तुम अपने भ्राता, माता, पिता, पुत्र, पौत्र आदि समस्त कुटुम्बी जनों का अग्नि संस्कार करो । मेरे अनुज का अग्निसंस्कार क्यो हों? मेरा अनुज क्यों मरें? लक्ष्मण! उठो । इन दुष्टों के सम्पर्क से पृथक होकर किसी अन्य स्थान को चलें । यह कहकर लक्ष्मण की देह को कन्धे पर उठाकर राम वन की ओर चले गये । समस्त राजा भी उनके पीछे–पीछे चलने लगे ।

राम ने सेवकों द्वारा लक्ष्मण के लिए भोजन मंगवाया । लक्ष्मण के मुख में ग्रास रखा । पर मुख में ग्रास प्रविष्ट नहीं हुआ । तब राम ने कहा– हे भाई! भोजन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? स्वादिष्ट भोजन ले लो । राम ने लक्ष्मण के आगे वीणा आदि मधुर शब्द कराए ऐसे अनेक चेष्टाएँ करते रहे ।

सेनापति और जटायु के जीव देवों द्वारा राम का सजग होना

धीरे–धीरे लक्ष्मण के निधन, उनके शोक में श्रीराम के विह्वल होने तथा अनंगलवण एवं मदनांकुश के मुनि होने का समाचार सर्वत्र फैल गया, जिससे शत्रुओं का उत्साहवर्धन हो गया । शम्बूक के भाई सुन्द का पुत्र चारुरत्न, इन्द्रजित के पुत्र वज्रमाली को क्षुभित करता है । लक्ष्मण ने हमारे काका, बाबा को मारा है । अनेक द्वीप नाश किया है । अत: अयोध्या पर आक्रमण करना चाहिए । वे सब श्रीराम से प्रतिशोध लेने अयोध्या की ओर आते हैं । इसी समय स्वर्ग में कृतान्तवक्त्र सेनापति और जटायु पक्षी के जीव जो देव हुए थे उनके आसन कम्पायमान होते हैं । दोनों को अवधिज्ञान से ज्ञात होता है कि, राम इस समय संकट की स्थिति में हैं । कृतान्तवक्त्र के जीव ने जटायु के जीव से कहा– हे मित्र! मैंने जिन दीक्षा धारण करते समय राम को वचन दिया था कि, आपकी संकट अवस्था में मैं आपको उचित मार्गदर्शन करूँगा । तुम भी जटायु की पर्याय में उनके कृपा पात्र रहे हो, अतएव अब हमें शीघ्र अयोध्या चलना चाहिये । तुम शत्रुओं की सेना में प्रवेश कर उनके योद्धाओं की बुद्धि का हरण करो, मैं राम के समीप जाकर उन्हें धैर्य बँधाता हूँ । जटायु के जीव ने शत्रु की सेना को ऐसा मोहयुक्त किया कि, उन्हें अयोध्या पर विजय पाना असंभव प्रतीत होने लगा । फलत: समस्त सेना पलायन को उद्यत हुई; परन्तु उस देव की माया के कारण उन्हें पलायन का मार्ग नहीं दिख रहा था। कुछ काल पश्चात् देव ने उन्हें अपनी विक्रिया के बल दे दक्षिण दिशा की ओर का एक मार्ग दिखलाया । शत्रु दल अत्यंत भयभीत होकर उसी ओर दौड़ पडा ।

अब हम विभीषण को क्या उत्तर देंगे ऐसा विचार कर इन्द्रजित के पुत्र वज्रमाली ने सुन्द के पुत्र चारुरत्न के साथ रतिवेग मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली । तदनन्तर दोनों देव श्रीराम के समीप गये । भाई के शोक से मोहित हो राम बालक के समान चेष्टा कर रहे थे । सम्यक् प्रकार से समझाने के उद्देश से कृतान्तवक्त्र का जीव राम के समक्ष एक सूखे वृक्ष को सींचने लगा । एक ओर जटायु का जीव भी मरे हुए बैलों को हल में जोत उनके द्वारा शिला

पर बीज बोने का उपक्रम करने लगा । कुछ समय पश्चात् कृतान्तवक्त्र का जीव जल से भरी मटकी को मथने लगा और जटायु का जीव घानी में बालू डाल पेलने लगा । इस प्रकार और भी दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनों देवों ने राम के आगे किए ।

उन देवों की इन निरर्थक चेष्टाओं को देखकर राम ने उनसे कहा– अरे! तुम वज्र मूर्ख हो? जो सूखे पेड़ को सींचते हो, कोल्हू में रेत पेलते हो, मृत बैलों में हल जोतकर शिला पर बीज बोते हो तथा जल मथकर घी निकालना चाहते हो । भला, ऐसी निरर्थक चेष्टाओं से तुम्हें क्या लाभ हो सकता है? तब दोनों देवों ने राम को उलाहना देते हुए कहा– आप भी तो अपने भ्राता की मृत देह का कंधे पर उठाये फिरते हो, उसे नाना प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाते हो । भला, ऐसा करने से आप को क्या लाभ होगा? यह सुनकर राम को प्रचण्ड क्रोध उत्पन्न हुआ । लक्ष्मण की मृत देह को हृदय से लगाकर उन्होंने कहा– हे दुर्बुद्धि! मेरे प्रिय लक्ष्मण के प्रति, तुम ऐसे अमंगलसूचक वचन क्यों कहते हो? इतने में जटायु का जीव एक मृत मनुष्य के कलेवर कन्धे पर रखकर राम के समीप आया । तब राम ने उससे पूछा– अरे! तुमने इस मृत शरीर को अपने कंधे पर क्यों रखा है? क्या तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं? तब उसने कहा– आप विद्वान होकर भी लक्ष्मण के मृत शरीर का छह माह से लेकर चेष्टा कर रहे हो । जैसा राजा कार्य करता है वैसी प्रजा कार्य करती है । इन शब्दों से राम का मोह कम हो गया ।

देवों के वचन सुनकर, राम को गुरुओं के वचन का स्मरण हो आए । सहसा वे सजग हो गये । जिस प्रकार वन में मार्ग भूला हुआ मनुष्य एकाएक मार्ग पाकर प्रसन्न हो उठता है, उसी प्रकार राम प्रतिबोध को पाकर हर्षित हुए । तदनन्तर दोनों देवों ने लोगों को आश्चर्य उत्पन्न कराने वाली स्वर्ग की विभूति अंशत: दिखलाई । श्रीराम ने उन दोनों देवों से पूछा– हे सौम्यवदन! तुम कौन हो? किस कारण से मेरा इतना उपकार किया है? तब दोनों देवों ने राम को अपना पूर्व भव का परिचय दिया । और कहा कि, लक्ष्मण के मरण से आप

चिंताग्रस्त हैं, यह देखकर हम आप के पास आये हैं । अब हमें आपके द्वारा किये गए उपकारों के बदले प्रत्युपकार करने का अवसर दीजिये । राम ने प्रसन्न होकर देवों से कहा– आप दोनों मेरे परम मित्र हो ।

लक्ष्मण की मृत्यु के छह माह बाद दाह संस्कार

राम ने शोक का त्याग कर तथा सुग्रीवादि समस्त विद्याधर राजाओं ने और नगर वासियों ने लक्ष्मण की अंतिम क्रिया में सम्मिलित होकर सरयू नदी के तट पर लक्ष्मण की मृत्यु के छह माह बाद उसका दाह संस्कार किया ।

श्रीराम की दीक्षा

राजमहल में आकर राम ने शत्रुघ्न से कहा– हे शत्रुघ्न! अब मैं मुनिव्रत धारण कर तपश्चरण करना चाहता हूँ । अतएव तुम समस्त राज कार्य सम्हालो । शत्रुघ्न ने विनयपूर्वक कहा– हे तात! मैं भी आपके साथ मुनिव्रत धारण करूँगा । मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है ।

शत्रुघ्न को राज्य से उदासीन तथा मुनि व्रत धारण करने को उद्यत देख कर राम ने क्षणभर विचार किया और अंत में अनंगलवण के पुत्र को राज्य सौंप कर जिन दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय किया । विभीषण ने लंका का राज्य अपने पुत्र सुभूषण के लिए दिया तथा सुग्रीव ने अपना राज्य अंगद के पुत्र के लिए दिया ।

नगर के बाहर भगवान मुनिसुव्रत की वंश परम्परा को धारण करने वाले आकाशगामी सुव्रत नाम के मुनिराज पधारे थे । अत्यंत हर्ष के साथ श्रीराम मुनिराज के समीप गए । उन्हें हाथ जोड़कर सिर से नमस्कार किया और दीक्षा देने की प्रार्थना की । मुनिराज ने कहा, हे राजन्! तुमने बहुत अच्छा विचार किया है । तब महासंवेग को धारण करने वाले श्रीराम पर्यंकासन में विराजमान हो गये और अपनी सुकुमार अंगुलियों से सिर के बाल उखाड़कर फेंक दिए । उन्होंने पंच महाव्रतों को धारण कर लिया । देवों ने पञ्चाश्चर्य प्रकट कर दुन्दुभि बाजे बजाये । कृतान्तवक्त्र और जटायु के जीवों (दोनों देवों) ने भी महान

उत्सव किया ।

शत्रुघ्न भी समस्त परिग्रह त्यागकर निर्ग्रंथ मुनि हो गया । विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनखा, नल, विराधित आदि विद्याधर राजा भी दीक्षित हो गये । राम के दीक्षा लेने पर कुछ अधिक सोलह हजार राजा मुनि हो गये और सताईस हजार स्त्रियाँ श्रीमती आर्यिका के पास दीक्षित हो गई ।

गुरु की आज्ञा पाकर, श्रीराम मुनि एकाकी विहार करते हुए घोर तपश्चरण करने लगे । उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया । उस अवधिज्ञान के प्रभाव से वे समस्त जगत को निर्मल स्फटिक के समान ज्यों का त्यों देखने लगे । वे सोचने लगे कि, देखो, सौ वर्ष कुमार अवस्था में, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्था में और चालीस वर्ष दिग्विजय में व्यतीत हुए । जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगीपना प्राप्त कर व्यतीत किए, वह लक्ष्मण अन्त में नीचे गया । लक्ष्मण के मरण में उन दोनों देवों का कोई दोष नहीं है, यथार्थ में भाई की मृत्यु के बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था । जिसका चित्त मोह के आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके, वसुदत्त को आदि लेकर नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं । इस प्रकार व्रत और शील के पर्वत तथा उत्तम धैर्य को धारण करने वाले पद्ममुनिश्री (राममुनि) ने समस्त बीती बात जान ली । श्रीराम मुनिराज उत्तम लेश्या से युक्त, गंभीर, गुणों के सागर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करने में तत्पर रहते थे ।

श्रीराम मुनिराज की कठीन तपस्या

एक बार श्रीराम मुनि पाँच दिन का उपवास कर पारणा के लिए नन्दस्थली नगरी में गये । वे शांत स्वभाव, अप्रतिम सुंदरता के कारण तरुण सूर्य के समान जान पड़ते थे । श्रीराम मुनिराज को देखकर नगर के सभी लोग क्षोभ को प्राप्त हो गये । वे कहने लगे कि, अत्यन्त सुंदर लोकोत्तर आकार का महावृषभ के समान मुनिराज आ रहे हैं । नगर में प्रवेश करते ही नर-नारियों के समूह से नगर के लम्बे चौड़े मार्ग भर गए । हे स्वामिन्! यहाँ आइए, हे स्वामी!

यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज! प्रसन्नतापूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये । सकरी गलियों में बड़े वेग से आने वाले कितने ही लोगों ने हाथों में बर्तन लेकर खड़े हुए मनुष्यों को गिरा दिया । लोगों के भारी कोलाहल के कारण हाथियों ने भी बँधन के खम्भे तोड़ डाले । कितने ही घोड़ों ने मनुष्यों को व्याकुल कर दिया । दान देने में तत्पर मनुष्यों का शब्द सुनकर महल के भीतर स्थित प्रतिनन्दी नाम का राजा महल की छत पर चढ़ गया । वहाँ से उसने धवल कान्ति के धारक श्रीराम मुनिराज को देखा और अपने वीरों को आज्ञा दी कि, शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर उन उत्तम मुनिराज को यहाँ मेरे पास ले आओ । 'स्वामी की जो आज्ञा' ऐसा कहकर राजा के सेवक लोगों की भीड़ को चीरते हुए मुनिराज के पास गये और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे कि, हे भगवन्! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए, हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए । अन्य साधारण मनुष्यों के द्वारा निर्मित अपथ्य, विरस भोजन से आपको क्या लाभ है । भिक्षा देने के लिए उद्यत स्त्रियों को राजा के सिपाहियों ने दूर हटा दिया, जिससे उनके चित्त विषादयुक्त हो गये । अन्तराय जानकर मुनिराज नगरी से वापस लौट गये । जिससे लोगों को बहुत दु:ख हुआ ।

श्रीराम मुनिराज ने पाँच दिन का दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि, इस वन में ही मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उस आहार को मैं ग्रहण करूँगा, भिक्षा के लिए नगर में नहीं जाऊँगा । दैवयोग से प्रतिनंदी राजा को एक दुष्ट अश्व हरकर उसी वन में ले गया ।

राजा को ढूँढ़ते हुए रानी प्रभवा भी अनेक योद्धाओं सहित उसी वन में पहुँच जाती है । वहाँ जाकर वह देखती है कि, वह दुष्ट घोड़ा तालाब के कीचड़ में फँस गया है और राजा भी उसके ऊपर बैठा है । वह रानी राजा को उस कीचड़ से बचाकर बाहर निकालती है । कमलयुक्त सरोवर को देखकर रानी मुस्कुराते हुए राजा से बोली– राजन्! घोड़े ने अच्छा ही किया । जिससे नंदनवन के समान इस कमलयुक्त सरोवर को हम देख सके । दोनों सेवकों के साथ

सरोवर के किनारे पर ठहर गए । जलक्रीड़ा करके वे भोजन के लिए बैठने ही वाले थे तो इसी बीच में उपवास की समाप्ति को प्राप्त श्रीराम मुनिराज आहार चर्या के लिए उधर आए । उन्हें देख हर्ष से राजा-रानी ने उनका पड़गाहन किया और खीर का आहार दिया । श्रीराम मुनिराज अक्षीणऋद्धि के धारी थे इसलिए जो अन्न उन्हें दिया गया वह भी अक्षीण हो गया । देवों ने पञ्चाश्चर्य वृष्टि की । भक्ति से नम्रीभूत राजा प्रतिनंदी व रानी प्रभवा सुपात्र के लिए दान देकर हर्षित हुए ।

सीता के जीव प्रतीन्द्र का राम मुनिश्री पर अनुरागवश उपसर्ग

विहार करते हुए श्रीराम मुनिराज क्रम से उस कोटिशिला पर पहुँचे, जिसे पहले लक्ष्मण ने अपनी भुजाओं से उठाया था । श्रीराम मुनिराज उस शिला पर रात्रि के समय प्रतिमायोग से विराजमान हुए । सीता के जीव अच्युत स्वर्ग के प्रतीन्द्र ने उन्हें देखा । उसी समय उसने अपने पूर्व भव का क्रम से स्मरण किया । स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि, ये राजा राम हैं जो मनुष्य लोक में जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे । वह प्रतीन्द्र विचार करने लगा कि, अहो! कर्मों की विचित्रता तो देखो, ये बलभद्र और नारायण जगत को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले थे, पर अपने-अपने कर्मों के प्रभाव से एक लोक के उर्ध्व भाग में विराजमान होंगे और एक अधोलोक में उत्पन्न हुआ है । इनमें राम तो चरमशरीरी है और लक्ष्मण, नरक में दुखी हो रहा है । इस समय राम क्षपक श्रेणी में आरूढ़ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि, जिससे राम, ध्यान से विचलित हो जाय और मोक्ष नहीं जाकर स्वर्ग में ही उत्पन्न हो जाय । फिर मैं इनके साथ मेरु पर्वत और नन्दीश्वर द्वीप को जाऊँगा । उस समय की शोभा ही निराली होगी । विमान के शिखर पर आरूढ़ तथा परम विभूति से सहित हम दोनों एक दूसरे के लिए अपने सुख और दु:ख बतलायेंगे । फिर अधोलोक में पहुँचे हुए लक्ष्मण को प्रतिबुद्धता प्राप्त कराने के लिए राम के साथ जाऊँगा । इसी प्रकार का अन्य विचार कर सीता का जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवों के

साथ आरणाच्युत कल्प से उतरकर सौधर्म कल्प में आया । तदनन्तर सौधर्म कल्प से चलकर वह पृथ्वी के उस विस्तृत वन में उतरा जो कि नंदनवन के समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचन्द्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ।

इच्छानुसार रूप बदलने वाला वह स्वयंप्रभ देव सीता का वेष रख मदमाती चाल से श्रीराम मुनिराज के पास गया । वह बोली कि, हे राम! समस्त जगत में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्य से आपको देखा है । हे नाथ! वियोगरूपी तरंगों से व्याप्त स्नेहरूपी गंगा की धारा में पड़ी हुई मुझको आप इस समय डूबने से बचाइए । वह कभी श्रीराम मुनिराज के आगे खड़ी होती थी और कभी उनके दाएँ, बाएँ खड़ी हो जाती थी । जब उस प्रतीन्द्र ने नाना प्रकार की चेष्टाओं और मधुर वचनों से मुनिराज को अकम्प समझ लिया तब मोहरूपी पाप से ग्रस्त होकर व काम ज्वर से ग्रस्त होकर बोली– हे नाथ! अपने आपको पण्डिता मानने वाली मैं उस समय बिना विचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गई और तपस्विनी बनकर विहार करने लगी । तब विद्याधरों की कन्याएँ मुझे हरकर ले गई । वहाँ उन्होंने मुझे समझाया कि, ऐसी अवस्था में दीक्षा धारण करना व्यर्थ है । क्योंकि यथार्थ में दीक्षा तो अत्यन्त वृद्धा स्त्रियों को शोभा देती है । कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत? हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि! तुम्हारे आश्रय से हम बलदेव को वरेंगी । हम सब कन्याओं के बीच तुम प्रधान रानी होना । इसी बीच में नाना प्रकार के अलंकारों से भूषित हजारों कन्याएँ वहाँ आ गई । सीतेन्द्र की विक्रिया से उत्पन्न वे सब कन्याएँ राम के पास गई और नाना प्रकार के हाव–भाव तथा आलाप से मुनिराज को उनकी तपस्या से विचलित करने की कोशिश करने लगी; किन्तु श्रीराम मुनिराज क्षोभ को प्राप्त नहीं हुये । शुद्धोपयोगी क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर उन्होंने कर्मों को नष्ट कर दिया और माघ शुक्ल द्वादशी के दिन रात्रि के पिछले प्रहर में उनको केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

केवलज्ञान की उत्पत्ति की पूजा करने के लिए सब देव बड़े वैभव के

साथ वहाँ आ गये । स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र ने भी उनके केवलज्ञान की पूजा कर केवली श्रीराम की तीन प्रदक्षिणा दी । उसने श्रीराम केवली से कहा, हे भगवन्! मुझ दुर्बुद्धि के द्वारा किया गया दोष क्षमा कीजिए और मेरे भी कर्मों का क्षय कीजिए । इस प्रकार प्रार्थना कर वह स्वर्ग में अपने स्थान को चला गया ।

नरक में सीतेन्द्र द्वारा संबोधन

सीतेन्द्र, लक्ष्मण को स्मरणकर उसे सम्बोधने की इच्छा से तीसरी पृथ्वी बालुकाप्रभा में गया । वहाँ पहुँचकर उसने नारकियों की अत्यंत घृणित, कष्टकारी और पाप कर्म से उत्पन्न अवस्था देखी । लक्ष्मण के द्वारा मारा गया, चन्द्रनखा का पुत्र शम्बूक, असुरकुमार हुआ था । वह इस भूमि में हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था । वह कितने ही नारकियों को ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनों को सेवकों से मरवाता था और कितने ही नारकियों को परस्पर में लड़वाता था । नारकियों के दु:ख देखकर सीतेन्द्र को बहुत भारी दया उत्पन्न हुई । उसने अग्निकुण्ड से निकले और अन्य अनेक नारकियों के द्वारा सब ओर से घेरकर नाना तरह से दु:खी किये जाने वाले लक्ष्मण को देखा । वहीं उसने देखा कि लक्ष्मण विक्रिया कृत मगरमच्छों से व्याप्त वैतरणी नदी के भयंकर जल में छटपटा रहा है और असिपत्र वन में शस्त्र के आकार के पत्तों से छेदा जा रहा है । सीतेन्द्र ने वहीं रावण को भी देखा । जिसके नेत्र अत्यंत भयंकर थे । शम्बूक का जीव असुरकुमार देव उसे लक्ष्मण के विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था । इसी बीच में महातेजस्वी सीतेन्द्र दुष्ट समूह को डाँटे दिखाता हुआ पास में पहुँचा । उसने कहा– अरे! रे! पापी शम्बूक! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है? तुझ निर्दय चित्त को क्या अब भी शान्ति नहीं है? हे अधम देव! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो । नरक के इस दु:ख को सुनकर ही प्राणियों को भय उत्पन्न हो जाता है फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यों नहीं उत्पन्न होता है, तब शम्बूक के शांत हो जाने पर ज्यों ही सीतेन्द्र संबोधने के लिए तैयार हुआ त्यों ही अत्यंत क्रूर वे नारकी उस सीतेन्द्र के प्रभा से शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये । कितने ही नारकी

उसे देख रोने लगे। तब सान्त्वना देते हुए सीतेन्द्र ने कहा कि 'अहो नारकियों भागो मत! डरो मत! लौटकर आओ। तब बड़ी मुश्किल से वे नारकी चित्त की स्थिरता को प्राप्त हुए। शांत वातावरण होने पर सीतेन्द्र ने कहा कि, हे नारकियों! तुम इस दशा को पाकर भी आत्मा का हित क्यों नहीं चाहते हो? जो हिंसा, झूठ और परधन के हरण में तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरक में रहने वालों के प्रति जिनकी द्वेष बुद्धि है ऐसे लोग ही नरक में आते हैं। तब लक्ष्मण और रावण के जीव ने पूछा कि, आप कौन हैं? तब सीतेन्द्र ने अपना, राम-लक्ष्मण व रावण का सारा वृत्तान्त सुना दिया। वृत्तान्त सुनकर दोनों (लक्ष्मण और रावण) शांत चित्त हो गये और दीनतापूर्वक शोक करने लगे। हाय-हाय हम लोगों ने मोह के वशीभूत होकर आत्मा को बहुत कष्ट देने वाले धर्मविरुद्ध अनेक कार्य किए। हे देवेंद्र! तुम ही धन्य हो, जो विषयों की इच्छा छोड़ कर तथा जिनवाणीरूपी अमृत का पानकर देवों की ईशिता को प्राप्त हुए हो।

तदनन्तर अत्यंत करुणा को धारण करने वाले सीतेन्द्र ने कहा- 'डरो मत! आओ-आओ! मैं तुम दोनों को नरक से निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ। जैसे ही वह देवेन्द्र उन दोनों को स्वर्ग ले जाने को उद्यत हुआ; परन्तु वे पकड़ाई में न आये। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वहीं रह गये। सीतेन्द्र ने उन्हें उठाने के लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नहीं जा सके। तदनन्तर अत्यंत दुःखी होते हुए उन दोनों (लक्ष्मण और रावण) नारकियों ने कहा कि, हे देव! हम अपने द्वारा किये हुए कर्मों के आधीन हैं उनका देव लोग क्या कर सकते हैं? अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियम से भोगना पड़ता है इसलिए हे देव! तुम हम लोगों को दुःख से छुड़ाने में समर्थ नहीं हो। उन दोनों नारकियों ने कहा- हे सीतेन्द्र! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर से नरक को प्राप्त न हो, कृपा कर वह बात तुम हमें बताओ।

सीतेन्द्र ने कहा- महा उत्तम! अरिहंत जिनेन्द्र भगवान ने जीवादि पदार्थों को जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है, इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ़

श्रद्धान, आत्मश्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्मा का सबसे बड़ा हितकारी है। यदि आप लोग अपना भला करना चाहते हो तो इस दशा में स्थित होने पर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो।

इस प्रकार सीतेन्द्र के कहने पर अनादि भवों में क्लेश-दुःख उठाने वाले उन लोगों ने वह उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। उन्होंने कहा- हे देव! तुमने हम सबका बड़ा हित किया, जो यहाँ आकर हमको उत्तम सम्यग्दर्शन में लगाया है। हे महाभाग! सीतेन्द्र! जाओ, जाओ अपने आरणाच्युत कल्प में जाओ और शुद्ध धर्म का विशाल फल भोगकर मोक्ष को प्राप्त होओ। इस प्रकार उन सबके कहने पर यद्यपि वह सीतेन्द्र, शोकरहित हो गया था तथापि परम ऋद्धि को धारण करने वाला वह मन ही मन शोक करता जाता था। तदनन्तर महान पुण्य को धारण करने वाला वह धीर, वीर सुरेन्द्र, उन सबके लिए बोधिदायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थान पर चला गया।

नरक से निकलकर जिसकी आत्मा अत्यंत भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेन्द्र मन ही मन अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चार की शरण को प्राप्त हुआ। अनेकों बार उसने मेरु पर्वत की प्रदक्षिणाएँ दी। नरक गति के उस दुःख को देखकर, स्मरणकर तथा वहाँ के शब्द का ध्यान कर वह सीतेन्द्र विमान में भी काँप उठता था। परम अभ्युदय को धारण करने वाला सीतेन्द्र फिर से राम केवली की शरण में गया। वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया। तदनन्तर संसार सागर से पार होने की इच्छा से सीतेन्द्र ने श्रीराम केवली की स्तुति की। वह कहने लगा कि, हे भगवन्! आपने ध्यानरूपी अग्नि से संसाररूपी अटवी को दग्ध किया है। श्री मुनिसुव्रतनाथ के शासन की अच्छी तरह सेवा कर आप विशाल तप के द्वारा संसार सागर के अन्त को प्राप्त हुए हैं; परन्तु हे राम! क्या यह तुम्हें उचित है जो तुम मुझे अकेले छोड़कर, निर्मल और अविनाशी पद-मोक्ष को प्राप्त कर रहे हो?

श्रीराम केवली द्वारा सीतेन्द्र के भवों का कथन

श्रीराम केवली ने कहा कि, हे सुरेन्द्र! राग छोड़ो । क्योंकि वैराग्य में आरूढ़ मनुष्य की मुक्ति होती है और रागी मनुष्य का संसार में डूबना होता है । मनुष्य अपने ज्ञान, शील आदि गुणों में अनुरक्त होने के कारण ही संसार सागर को तैर सकता है ।

सीतेन्द्र ने श्रीराम केवली से पूछा हे नाथ! हे सर्वज्ञ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ हैं? लवण और अंकुश की कौन सी गति हुई है? केवली श्रीराम ने कहा– राजा दशरथ आनत स्वर्ग में देव हुए हैं । इनके अलावा सुमित्रा, कैकयी, सुप्रभा, कौशल्या, जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि जीव भी उसी आनत स्वर्ग में देव हुए हैं । लवण और अंकुश दोनों मुनि कर्मरूपी धूलि से रहित हो, अविनाशी पद–मुक्ति को प्राप्त करेंगे । केवली के इस प्रकार कहने पर सीतेन्द्र हर्ष से अत्यधिक संतुष्ट हुआ । तदनन्तर उसने स्नेहवश भाई–भामण्डल का स्मरणकर, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है? इसके बारे में केवली से पूछा ।

केवली श्रीराम ने कहा– अयोध्या नगरी में अति धनवान वज्राङ्क नाम का सेठ रहता था । उसके अनेक पुत्र थे । राम द्वारा सीता को त्यागने का वृत्तान्त सुन वह इस प्रकार की चिंता को प्राप्त हुआ कि 'अत्यंत सुकुमाराङ्गी सीता वन में किस अवस्था को प्राप्त हुई होगी?' इस चिन्ता से वह अत्यन्त दुःखी हुआ । तथा द्युति मुनिराज के पास दीक्षित हो गया । उसकी दीक्षा का हाल घर के लोगों को विदित नहीं था । उसके अशोक और तिलक नाम के दो विनयवान पुत्र थे, वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराजजी के पास अपने पिता के बारे में पूछने गये । वहीं पर पिताजी को मुनि अवस्था में देखकर स्नेह और वैराग्य के कारण अशोक और तिलक भी उन्हीं द्युति मुनिराज के पादमूल में दीक्षित हो गये । द्युति मुनिराज आयु का क्षय प्राप्तकर ऊर्ध्व ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए । यहाँ पिता और दोनों पुत्र मिलकर तीनों मुनि, गुरु के कहे अनुसार आचरण करते हुए जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करने के लिए ताम्रचूड़चुर की ओर चले । बीच में

पचास योजन प्रमाण बालू का समूह अर्थात् रेगिस्तान था इसलिए वे निश्चित स्थान तक नहीं पहुँच पाये, बीच में ही वर्षाकाल आ गया। उस रेगिस्तान में जिसका मिलना कठिन था ऐसे एक बड़े वृक्ष को देखकर तीनों मुनिराज वहाँ ठहर गये।

तदनन्तर अयोध्या को जाते समय जनक के पुत्र भामण्डल ने उन तीनों मुनिराज को देखा और देखते ही उस पुण्यात्मा के मन में विचार आया कि, ये मुनिराज रत्नत्रय की रक्षा के लिए इस निर्जन वन में ठहर गये हैं; परन्तु आहार कहाँ करेंगे? क्योंकि चातुर्मास में मुनि कहीं गमन नहीं करते तब इस निर्जन वन में इन्हें कौन आहार देगा? तब उसने अपने विद्या बल से बिल्कुल पास में एक नगर बसाया जो सब प्रकार की सामग्री से सहित था। उसने अपने स्वाभाविक रूप में स्थित हो, चार मासपर्यंत रानी सुन्दरमालिनी सहित वहाँ रह कर तीनों मुनियों को भक्तिपूर्वक निरन्तराय आहार दिया। चातुर्मास पूर्ण होने पर जब तीनों मुनिराज वहाँ से विहार कर गये तब भी भामण्डल अपने परिजनों के साथ वहाँ रहने लगा और उस निर्जन वन में जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथ्वी पर उत्कृष्ट संयम धारण करने वाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको आहार देने लगा। एक दिन भामण्डल अपनी पत्नी सुन्दरमालिनी के साथ उद्यान में गया और वहीं शय्या पर सो गया, तब अचानक वज्रपात होने से उसकी मृत्यु हो गई। मुनिराज को आहार दान से उत्पन्न पुण्य के प्रभाव से मेरु पर्वत के दक्षिण में विद्यमान देवकुरु में वे दोनों तीन पल्य की आयु के युगलिया हुए हैं। तथा उत्तम पात्र दान के फलस्वरूप निरन्तर सुख भोग करते हुए रहते हैं।

भामण्ड़ल का समस्त वृत्तान्त सुनकर सीतेन्द्र ने फिर पूछा, हे नाथ! लक्ष्मण नरक से निकलकर किस गति को प्राप्त होगा? रावण का जीव कौन सी गति को प्राप्त होगा? और मैं स्वर्ग से चय कर कहाँ जन्म लूँगा?

केवली श्रीराम भगवान ने कहा– हे प्रतीन्द्र! सुनो, रावण और लक्ष्मण तीसरे नरक से निकलकर मेरु पर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नगरी में सुनन्द नामक सम्यग्दृष्टि की रोहिणी नामक स्त्री के गर्भ से लक्ष्मण का जीव अरहदास

और रावण का जीव ऋषिदास नामक पुत्र होगा । दोनों भाई श्रावक के व्रत पालन कर, समाधिमरण कर स्वर्ग में देव होंगे । स्वर्ग के सुख भोगकर, आयु पूर्ण होने पर उसी मनुष्य गति में पुन: उत्पन्न होंगे । मुनियों को आहार दान देने से, हरिक्षेत्र में दो पल्य की आयु वाले होंगे । वहाँ से आयु पूर्ण कर स्वर्ग जायेंगे । स्वर्ग से चय कर पुन: उसी नगरी अर्थात् विजयावती नगरी में राजा कुमारकीर्ति की रानी लक्ष्मी के गर्भ से प्रचण्ड शूर, वीर जयकान्त और जयप्रभ नामक पुत्र होंगे । तदनंतर घोर तप के प्रभाव से सातवें लान्तव स्वर्ग जायेंगे ।

जब तू सोलहवे स्वर्ग आरणाच्युत कल्प से च्युत हो इस भरत क्षेत्र के रत्नस्थलपुर नगर में चौदह रत्नों का स्वामी तथा षट्खण्ड पृथ्वी का अधिपति चक्ररथ नाम का चक्रवर्ती होगा तब लक्ष्मण तथा रावण के जीव सातवे स्वर्ग से चयकर तेरे पुत्र होंगे । रावण की जीव इन्द्ररथ तथा लक्ष्मण की जीव मेघरथ होगा । दोनों धर्मात्मा तथा परस्पर में स्नेही होंगे । रावण का जीव इन्द्ररथ अनेक उत्तम जन्म धारण करता हुआ आगे दुर्लभ तीर्थंकर प्रकृति का बंध करेगा, तदनंतर वह पुण्यात्मा अनुक्रम से तीनों लोकों के जीवों से पूजा प्राप्तकर, मोहादि शत्रुओं का नाश कर अर्हंत पद को प्राप्त करेगा । तू चक्रवर्ती पद त्याग कर मुनि व्रत धारण करेगा, समाधिमरण कर वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र होगा । फिर वहाँ से चय कर रावण के जीव तीर्थंकर का प्रथम गणधर होकर निर्वाण पद प्राप्त करेगा । लक्ष्मण का जीव मेघरथ कई उत्तम जन्म धारण कर स्वर्ग जायेगा । वहाँ से चय कर पुष्कर द्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्र के शतपत्र नगर में चक्रवर्ती पद प्राप्त कर फिर वह तीर्थंकर होगा और निर्वाण पद प्राप्त करेगा और मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही आयु पूर्ण कर लोक शिखर जाऊँगा । मोक्ष-शाश्वत सुख को प्राप्त करूँगा । केवली श्रीराम के वचन सुनकर सीतेन्द्र अत्यंत हर्षित हुआ एवं उन्हें बारम्बार प्रणाम कर निर्वाण क्षेत्र, नन्दीश्वर द्वीप तथा अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना कर, पूर्व जन्म के भाई-भामण्डल के जीव से मिलने भोगभूमि में गया एवं उसे कल्याण का उपदेश देकर अपने स्थान सोलहवे आरणाच्युत स्वर्ग को लौट गया ।

श्रीराम का मोक्ष गमन

पच्चीस वर्ष मुनि व्रत पालन कर श्रीराम केवली लब्धि से विभूषित हुए। आयु की अवधि पर्यंत केवली अवस्था में अनेक जीवों को उपदेश देकर, वे शाश्वत सुख प्राप्तकर श्री सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी से सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं। श्रीराम की कुल आयु सत्रह हजार वर्ष की थी। राम और लक्ष्मण की ऊँचाई सोलह धनुष की थी।

श्री गौतम गणधरजी कहते हैं कि हे राजन्! बलभद्र श्रीराम का चरित्र जो भाव सहित पढ़ते पढ़ाते अथवा सुनते-सुनाते हैं, उनके पुण्य की निरन्तर वृद्धि होती है तथा उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह पवित्र ग्रन्थ जीवों को समाधि उत्पन्न कराने का कारण तथा जन्म-जन्मान्तरों के समस्त पापों को दूर करने वाला है। श्री वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने के बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जाने पर श्रीराम मुनि का यह चरित्र लिखा गया है।

पूर्वाचार्य प्रणीत श्री रविषेणाचार्य 'पद्मपुराण' के आधार से यह 'जैन रामायण' कृति को संक्षिप्त रूप से सन २०२१ धर्मनगर क्षेत्र (महाराष्ट्र) वर्षायोग चातुर्मास में कथन करने का प्रयास किया है; कारण बड़े-बड़े पुराण-शास्त्र सामान्य जनता पढ़ नहीं पाते। अत: सामान्य जनता को सहज सुलभता से समझ में आ जाये, इसी उद्देश्य से यह कृति प्रकाशित हुई है। 'जैन रामायण' संक्षिप्त में पढ़कर, बड़े पुराण शास्त्र पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाये। इस कृति में न्यूनाधिक हो तो विद्वत्गण संशोधन करके पढ़ें।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाण-देव य, मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु ॥

इति भद्रं भूयात्। जैनं जयतु शासनम्।

***